प्रकाशक का वक्तव्य

श्री. पांडुरंग सदाशिव साने ऊर्फ साने गुरुजी ने "श्यामची आई" नाम की पुस्तक लिख कर उसकी पहली आवृत्ति प्रकाशित की; और थोड़े ही दिनो मे सर्वत्र एक-स्वर से उसकी प्रशंसा की जाने लगी। साथ ही वह लोगो को बहुत पसद भी हुई। इस पुस्तक मे साने गुरुजी ने अपनी बाल्यावस्था (कुमारावस्था) की सात्त्विक-भावनाओ के क्रमागत विकास का अत्यत मार्मिक ढंग से और हृदय को हिलादेने वाली सहृदयता-पूर्ण वाणी मे चित्रण किया है। इस (मूल मराठी) पुस्तक के लिए बम्बई विश्व-विद्यालय* एवं नागपूर विद्यापीठ † से मान्यता (स्वीकृति) मिल चुकी है। साथ ही मध्य-प्रदेश मे तो पाठ्य-पुस्तक के रूप मे भी इस के लिए सिफारिश की गई है।

श्री. सानेजी ने अब इस पुस्तक के सर्वाधिकार 'अनाथ विद्यार्थी गृह' पूना (संस्था) को बेच दिये है। इस लिए अब इसकी आगे की आवृत्तिया एव अन्य भाषाओ मे इसका अनुवाद कर के प्रकाशित करने का अधिकार भी अब अ. वि. गृह (पूना) को ही प्राप्त है।

विद्यार्थियो के लिए संस्कृति-विकास की दृष्टि से यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी; और इसी लिए भविष्य मे इस प्रकार की पुस्तको के प्रकाशन का कार्य विशेष परिमाण मे करने का इस संस्था ने संकल्प कर लिया है। इस लिए लेखको से निवेदन है कि वे विद्यार्थियो के लिए उपयोगी उक्त प्रकार की पाठ्य-पुस्तके लिख कर संस्था-द्वारा ही प्रकाशित कराएँ।

---

* बम्बई-स्वीकृति—न. S-86 (e)-643-c ता. २७-५-१९३७ लडको को इनाम देने और लाइब्रेरियो के लिए।

† नागपूर-स्वीकृति—नं. १८०५ ता. २७।८।३६ सामान्य पठन के लिए टेक्स्ट। नं १८०८ ता. २७।८।३६ स्कूलो की लाइब्रेरियो के लिए।

इस पुस्तक को हिन्दी भाषा—राष्ट्रभाषा में प्रकाशित करने का उद्देश्य भी यही है कि हिन्दी भाषा-भाषी समाज इसके द्वारा मूल महाराष्ट्र अर्थात् कोंकण-प्रदेश की पारिवारिक एवं पुराण-प्रिय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर उस (समाज) से भली-भांति परिचित हो सके। क्योंकि इस समय देश में राष्ट्रीय-भावना को पुष्ट करने का एक-मात्र साधन यही हो सकता है कि प्रत्येक भारतीय यथा-संभव निकटवर्ती एवं दूरस्थ प्रान्तों की संस्कृति का अध्ययन कर उनके साथ तादात्म्य करने के लिए यत्नशील हो।

इस प्रकार भारतीय-संस्कृति के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन; जितना प्रत्यक्ष उस प्रदेश में जा कर रहने से शीघ्रता-पूर्वक और पूर्णत्व से हो सकता है, उतना अन्य साधनों से नहीं। फिर भी यह कार्य सर्व-साधारण के लिए सुगम न होने से; उन्हें केवल उस (संस्कृति) का परिचय कराने अथवा उसकी झलक दिखा कर एक वास्तविक-चित्र अपने सामने खड़ा कर सकने के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। और हमारा विश्वास है कि मराठी की तरह यह पुस्तक भी राष्ट्रभाषा में प्रकाशित होने से समग्र भारत में लोकप्रिय हुए बिना नहीं रहेगी।

स. वि. गृह, पूना.
ता. १०।११।३९

वि. गं. केतकर

अनुवादक का निवेदन

श्री. साने गुरुजी जैसे मराठी भाषा के सर्वमान्य ग्रंथकार की सर्व-प्रिय एवं सर्वश्रेष्ठ कृति-रूप इस पुस्तक के साथ; मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अनधिकारी की ओर से कुछ लिखा जाना धृष्टता मात्र ही हो सकता है। अतएव मैं संक्षेप में केवल इतना ही निवेदन करना चाहता हूं कि; यदि यथार्थ में हिन्दी भाषा-भाषी समाज ने इस पुस्तक को समुचित अपनाया, और इस "श्यामू की माँ" को अपने घर में प्रविष्ट होने दे कर अपने बाल-बच्चों को इसकी शिक्षा सुनने और समझने का अवसर दिया, तो वह आदर्श पारिवारिक-भावना, सच्ची भारतीय संस्कृति एवं भावी आदर्श नागरिक-जीवन निर्माण कर सकने में अवश्य सफल होगा और इस प्रकार नई पीढ़ी को बनाने का पवित्र कार्य सम्पादन कर सकेगा।

पुस्तक क्या है, माता की ममता और उसके सात्त्विक एवं आत्मीय-प्रेम का करुण-रस पूर्ण जीता-जागता चित्र है। और इसे लिख कर श्री. साने गुरुजी ने देश तथा समाज पर अनंत उपकार किया है। सहृदय-व्यक्तियों को मातृश्राद्ध करने का—माता की स्मृति में अश्रुजल से तर्पण करने; अथवा अविरल अश्रु-धारा से उसके चरणों का अभिषेक कर के मन का समस्त विकार धो डालने, और इस मानवीय अंतःकरण को विमल बना कर मातृ-मंदिर का स्वरूप प्रदान करने के लिए, उन्होंने एक महान् पवित्र और अद्भुत साधन सुलभ कर दिया है। उनकी इस अमर-रचना के लिए समाज को उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

बाल्यावस्था में अब तक निरन्तर महाराष्ट्र-समाज के निकट संपर्क में रहने से; इन पंक्तियों के लेखक पर भी उस समाज की विशेष संस्कृति का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। और इसी लिए यदि गर्वोक्ति न हो तो वह यह कहने का दुस्साहस कर सकता है कि; उसने अत्यंत स्वाभाविक-रूप में इस पुस्तक-द्वारा उस समाज के अंतरंग-स्वरूप को हृदयंगम करने में सफलता पाई है। उसका विश्वास है कि कोई भी सहृदय भारतीय इस

पुस्तक को पढ कर; मूल-लेखक के कथनानुसार दस-बीस बार माता की स्मृति में अश्रु बहाये विना, द्रवित हुए विना नही रह सकता। क्योकि अनुवाद करते समय उसे प्रत्येक घटना के वर्णन पर, किम्बहुना प्रतिदिन दो-चार बार अवश्य अश्रु-विमोचन करना पडा है। श्याम की ही तरह उसे भी अपनी ममता-मयी माता के अभाव मे जीवन शून्य प्रतीत होता रहा है, और इस पुस्तक को हिन्दी-समाज के सम्मुख उपस्थित करने का सौभाग्य प्रदान करने के लिए वह 'अनाथ विद्यार्थी गृह' के सचालकों को हार्दिक धन्यवाद देता है, कि जिनकी कृपा से उसे इस कृति-द्वारा सच्चा मातृश्राद्ध कर सकने का सुयोग मिल सका।

अनुवाद में मूल-पुस्तक की सरसता कोई कुशल लेखक ही ला सकता है। उसमे भी फिर श्री साने गुरुजी जैसे सहृदय व्यक्ति की आतरिक भावनाओ को यथातथ्य हिन्दी-भाषा मे अकित कर सकना तो और भी कठिन—महान् दुष्कर कार्य है। फिर भी श्री. पं. शकररावजी दाते ने, जोकि इस अकिंचन के प्रति एक अत्यन्त आत्मीय-भाव रखते है—यह सेवा मुझ ही से लेना उचित समझ कर इसका शीघ्र अनुवाद कर देने की अनुमति प्रदान की। तदनुसार मैं इस कार्य मे गत् अप्रैल मास मे संलग्न हो गया था; किन्तु कई आकस्मिक कारणो से बीच मे ही आधा कार्य छोड़ कर मुझे रुक जाना पडा; और पूरे छह मास पश्चात् आज यह वस्तु आप के सम्मुख रख सकने का अवसर आ सका। इस प्रमाद के लिए मैं अपने को अक्षम्य अपराधी समझता हू। क्योकि ऐसी उत्तम वस्तु केवल मेरी ही शिथिलता के कारण इतने विलब से हिंदी भाषा-भाषी भारतीय-समाज के सम्मुख आ सकी है।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि "श्यामची आई" का यह हिंदी अनुवाद अवश्य त्रुटिपूर्ण होगा; फिर भी विवेकशील पाठक इसकी मूल-भावना को, मातृभक्ति के उज्ज्वल स्वरूप को ग्रहण कर, असार भाग को त्याग देने की दृष्टि से ही इसे पढने की कृपा करेगे।

अन्त मे अ. वि. गृह के संचालको को उनकी इस राष्ट्रभाषा-सेवा के लिए हार्दिक धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं।

विजयादशमी १९९५
'कल्पवृक्ष' कार्यालय, उज्जैन

गोपीवल्लभ उपाध्याय

अनुक्रमणिका

श्याम की माँ

१ आरंभ

मनुष्य का बड़प्पन प्राय उसके माता-पिता पर ही अवलबित होता है; और उसके भावी-जीवन की बुराई-भलाई के आधार भी प्राय माता-पिता ही होते है। इसी प्रकार उसके अच्छे बुरेपन की नीव भी बचपन में ही रची जाती है। पलने मे झूलते या माता की गोद में खेलते हुए ही उसके भावी जीवन-विकास के बीज बोये जाते है। मैं बड़प्पन का अर्थ इस रूप में नही करता कि, अपना नाम कुछ समय तक ससार के इनेगिने व्यक्तियो की जीभ पर खेलता रहे। क्योकि हिमालय की उपत्यकाओ या खाड्यो मे ऐसे अनेक प्रचण्ड एव गगनचुम्बी वृक्ष हो सकते है, जिनका नाम तक ससार मे कोई नही जानता। अथवा सघन वन के किसी कोने मे भी कोई ऐसा सुगन्धित पुष्प खिला हो, जिसपर किसी की दृष्टि तक न पड़ सकी हो! इसी प्रकार समुद्र के उदर मे भी ऐसे सुन्दर, गोल और आवदार मोती हो सकते हैं, जिनकी भनक भी ससार के कान पर न पडी हो; एव पृथ्वी के गर्भ मे भी तारे की तरह चमकनेवाले ऐसे तेजस्वी हीरे हो सकते है, जिनका मानवजाति को अवतक दर्शन भी न हुआ हो। अथवा ऊपर आकाश मे भी ऐसे अनन्त तारे हो सकते है, जो बड़े से बड़े दूरवीन द्वारा भी अवतक नही देखे जा सके हो। अर्थात् मैं बड़प्पन का अर्थ संसार मे प्रसिद्ध हो जाने के रूप म नही करता। मेरी समझ से तो बड़ा वही है, जो यह अनुभव करता है कि 'मैं निर्दोष हो रहा हू—धीरे-धीरे उन्नति कर रहा हू'। इस प्रकार बडा बनने की प्रवृत्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे उसके माता-पिता ही उत्पन्न करते हैं। माता-पिता की ओर से मिली हुई यह एक ईश्वरीय देन ही होती है। माता-पिता ही जाने या अनजाने मे बच्चे को छोटा या बड़ा बनाते रहते है।

मनुष्य का जन्म होने के पहले ही उसकी शिक्षा आरभ हो जाती है। किम्बहुना माता के उदर मे जीव के गर्भ-रूप से आने के पहले ही उसकी शिक्षा की तैयारी शुरू हो जाती है। गर्भधारणा के पहले माता-पिता ने अपने जीवन मे जो अथवा जैसे विचार किये होगे, अथवा जिन भावनाओ को स्थान दिया होगा या जो कर्म किये होगे, उन्ही सब पर से नवजात बालक की शिक्षा की पुस्तके तैयार होती जायँगी। किन्तु इसका यह आशय कदापि नही है कि बच्चे को केवल उसके माता-पिता ही सबकुछ सिखलाते है। क्योकि आसपास की सारी दुनिया और सजीव या निर्जीव सृष्टि भी उसे बहुत कुछ शिक्षा देती रहती है। किन्तु उस आसपास की सृष्टि से क्या सीखा जाय और कैसे सीखा जाय, यह माता-पिता ही बतलाते है। अर्थात् बच्चे की शिक्षा मे अधिक से अधिक भाग उसके माता-पिता का ही होता है; और उसमे भी माता का भाग अधिक होता है। क्योकि मूलत माता के उदर मे ही जीव रहता और माता से एकरूप होकर ही वह जन्म लेता है। मानो, वह, उसीका होकर ससार मे आता है। जन्म लेने के बाद भी माता के ही पास बचपन मे उसका अधिक समय व्यतीत होता है। वह माता के पास रहकर ही हँसता-रोता या खाता-पीता और खेलता-कूदता है। वह माता की ही गोद या छाया मे सोता-सुलाता है। अर्थात् माता के पास ही उसका अधिकतर उठना-बैठना होता है। इसी लिए उसे सच्ची शिक्षा देनेवाली माता ही होती है।

माता देह-दान के ही साथ साथ मन भी देती है। जन्म देनेवाली भी वही और ज्ञान देनेवाली भी वही होती है। बचपन मे बालक पर जो सस्कार पडते है, वे दृढतम हो जाते है। क्योकि उस अवस्था मे बच्चे का मन एकदम खाली (निर्विकार) रहता है। जिस प्रकार किसी भिखारी या चार दिन के भूखे को जो कुछ भी मिल जाय, उसे तत्काल ही उस पर टूट पडने की इच्छा होती है, उसी प्रकार बच्चे का मन भी अपने आसपास जो कुछ होता है, उसमें के अच्छे-बुरे की परख किये बिना ही पेटार्थी (भुखमरे) की तरह वह अन्धाधुन्द सग्रह करता चला जाता है। यहा तक कि यदि बिल्कुल छोटे दो-चार महिने के बच्चे को भी बाहर आँगन मे लिटाया जाय, तो आसपास के हरे-पीले वृक्षो का उसके मन ही

नही वरन् शरीर पर भी इतना प्रभाव पड़ता है, कि उसके मल (दस्त) का रग तक हरा हो जाता है; यह जानकार स्त्रियो का कहना है। साराश, बाल्यावस्था मे मन अत्यधिक संस्कार-ग्राही होता है। वह मिट्टी के लौदे या मोम के गोले की तरह मृदु एव कोमल होने से उसे जो भी आकार देना चाहे; दिया जा सकता है।'

जैसे माता यदि तैल की कोई वस्तु खा ले; तो वच्चे को खांसी होने का भय रहता है और वह यदि गन्ने या आम का रस पी ले, तो वच्चे को सर्दी लग जाती है। उसी प्रकार यदि माता वालक के सामने वस्तुओ की तोड़-फोड़ करे या किसी से गाली-गलौज अथवा मारपीट या झगड़ा-झंझट करे; तो इससे भी वच्चे के मन को खासी हो सकती है—उसके चित्त पर वुरा प्रभाव पड सकता है। किन्तु इस वात को माताएँ भूल जाती है। माता का वोलचाल, उसका हँसना या क्रुद्ध होना, आदि वच्चे के आसपास होने-वाली उस (माता) की समस्त क्रियाएँ वच्चे के मन, वुद्धि और हृदय के लिए दूध के समान होती है। दूध पिलाते समय यदि माता के नेत्र क्रोध या ईर्ष्या के कारण लाल हो रहे हो; तो अवश्य वच्चे का मन भी क्रोधी होगा।

इस प्रकार वच्चे की शिक्षा माता-पिता एवं सगे-सम्वन्धियो तथा आसपास की सजीव-निर्जीव सृष्टि पर अवलंवित होती है। इस लिए वालक के सामने वहुत सावधानी से वरतना चाहिए। उसके आसपास का वाता-वरण एकदम स्वच्छ (निर्मल) रखना चाहिए। सूर्य-चंद्रमा को पता हो या न हो, किन्तु उनकी किरणो से कमल अवश्य खिलते है। ठीक इन सूर्य-चद्र की किरणो के समान ही मनुष्य का व्यवहार भी है। माता-पिता के सम्पूर्ण कार्यकलाप यदि निर्मल, सतेज और तमोहीन होगे, तो वच्चो के मन भी कमल की तरह रसपूर्ण, सुगन्धित, रमणीय और पवित्र वन सकेगे। अन्यथा वे कृमियुक्त, रोगी, निस्तेज और गधहीन, रस-रहित एव अपवित्र हुए विना नही रह सकते।

वच्चे का जीवन विगाड़ने जैसा दूसरा पाप नही हो सकता। जैसे कि निर्मल झरने के पानी को गँदला कर देना घोर पाप माना जाता है। वच्चों के आसपास रहनेवालो को यह वात याद रखनी चाहिए। वेद मे वसिष्ठ ऋपि

वरुण देवता से कहते है कि " हे वरुण देव ! यदि मेरे हाथो से कोई वुरा काम हुआ हो तो उसके लिए मेरे वडे-वूढे माता-पितादि को उत्तरदायी समझे। "

'अस्ति ज्यायान् कनीयस उपरि'

कनिष्ठ (छोटे) के पास ज्येष्ठ (वड़ा) होता है । इस लिए ज्येष्ठ को अपनी जिम्मेदारी समझ कर वरतना चाहिए । माता-पिता, अड़ौसी-पड़ौसी और गुरु एव वड़े-वूढो को सदैव ही छोटे वच्चे के विकास का प्रश्न आँखो के सामने रखकर सव व्यवहार करना चाहिए।

श्यामू को उसके सौभाग्य से उदार एवं महान् माता मिली थी। वह प्रतिदिन अपनी माता को हृदय से धन्यवाद देता था । कभी-कभी दोचार अश्रु-विदुओ से वह उसका तर्पण भी करता था। आश्रमवासी मित्र श्यामू से उसकी जीवन-कथा पूछने का अनेक वार प्रयत्न करते, किन्तु वह किसी को उत्तर नहीं देता था। आश्रम के अन्य सव साथी अपने-अपने जीवन के अच्छे-वुरे अनुभव एक-दूसरे को सुनाया करते थे। इस कारण अपने साथियो की जीवन-कथाएँ सुनते हुए अचानक ही कभी-कभी श्यामू की आँखे भर आती। उस समय संभव है उसे अपने जीवन की भी उसी प्रकार की स्मृतियाँ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती हो ! किन्तु फिर भी उसके साथी लोग वारम्वार यही कहते सुने जाते कि " श्याम ! तू औरो की तो सव वाते सुन लेता है, परतु अपने विषय मे क्यो कुछ नही कहता ? "

एक दिन इसी प्रकार आग्रह किया जा रहा था। अत मे श्यामू ने भरे हुए स्वर में कहा " मुझे अपन पूर्व-जीवन की स्मृतियाँ अत्यत दुख और शोकमयी जान पड़ती है । पिछले जीवन की अच्छी वातो के ही साथ-साथ वुरी वातो का भी स्मरण हो आता है। पुण्य के साथ ही पाप भी याद आ जाते है। मैं अपने एक-एक दुर्गुण को गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ता जा रहा हू। और वे शैतान फिर मेरी गर्दन पर सवार न हो जायँ; इस लिए मैं पूरा-पूरा प्रयत्न करता हूं । मेरी हार्दिक इच्छा है कि जीवन निर्दोष और निर्मल हो जाय । यही मेरा ध्येय है और यही मेरा स्वप्न। तो फिर क्यो व्यर्थ के लिए तुम लोग मुझे अपने पिछले जीवन की सारी वाते सुनाने को लाचार करते हो ? "

कब होगा जीवन मेरा यह दिव्य तारिका-सा निर्मल।
यही कामना मुझे रात दिन व्यग्र कर रही है प्रतिपल ॥
[केव्हा होइल जीवन माझे निर्मल ताऱ्यापरी। हुर हुर हीच एक अंतरी।]

" किन्तु हमे तो तुम अपने जीवन की अच्छी बाते ही सुनाओ। क्योकि अच्छी बातो के चिंतन से मनुष्य अच्छा बनता है, यह बात तुम्हीने उस दिन कही थी। " छोटे-से गोविंद ने आग्रह किया।

इस पर माधव कहने लगा " किंतु यदि हमे अच्छी ही बातों का स्मरण हो और वे ही कही जायँ; तो इस बात का अभिमान होने लगेगा कि हम निर्दोष है।"

यह सुन श्यामू ने गभीर होकर कहा "' मनुष्य को अपने पतन या गिरावट की बात कहते हुए जिस प्रकार शर्म लगती है, उसी प्रकार उसे यह बतलाने मे भी लज्जा होती है कि मै कैसे उन्नत हुआ और अब-भी ऊंचा उठ रहा हूं। मेरी तो परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना रहती है कि आत्मश्लाघा का एक शब्द भी मेरे मुँह से न निकलने पावे।"

इस पर नारायण ने हँसते हुए कहा " किन्तु कभी इस बात का भी तो अहकार हो सकता है कि 'मै निरभिमानी हूं। मै आत्मश्लाघा करना नही चाहता ' इस कथन मे ही आत्मश्लाघा की भावना आ जाती है।"

श्यामू ने कहा " इस ससार मे जितनी भी सावधानी रखी जाय, थोडी ही है। पग-पग पर माया-मोह के फन्दे लगे हुए है। लुढकने के लिए बड़ी बड़ी खाइया और करारे मौजूद है। फिर भी जहातक बन सके सावधानी रखी जाय। प्रयत्न किया जाय और ठीक तरह उद्योग करते हुए आत्म-वंचना का अवसर न आने दिया जाय। अहकार का रूप अत्यंत सूक्ष्म होता है; इस लिए उससे सदैव सावधान रहना चाहिए। "

यह सुन श्याम के प्रेमी मित्र राम ने कहा " तो क्या हम एक-दूसरे के लिए पराये है ? तू और हम क्या अभीतक एकरूप नही हुए ? अपने इस आश्रम मे किसी के लिए अब छिपाव रखने जैसी कोई बात ही नहीं रह गई है। हम सब तो अब एक ही है। जो कुछ है उसके मालिक भी हम सब है। ऐसी दशा मे तू अपनी अनुभव-सम्पत्ति को छिपाकर क्यों

रखता है? तुझसे हमे कोई वाद-विवाद भी तो नही करना है? हमे अपनी बात सुनाने मे काहे की ठसक हो सकती है? इसमे किस बात का गर्व हो सकता है? हम तो यह जानने के लिए उत्सुक है कि तेरे जीवन में यह माधुर्य, सरलता, कोमलता, प्रेम और मृदु-हास्य, सेवावृत्ति एवं निरहकारता और किसी भी काम मे लज्जा अनुभव न करने की भावना आदि बाते कहा से आ गई! हम भी बीमारो की सेवा करते है और तू भी करता है। किन्तु तू उनके लिए माता की तरह बन जाता है, जब कि हम वैसे क्यो नही बन पाते? तू केवल अपनी मधुर-मुसकान से ही दूसरो को अपना कर लेता है, किन्तु हम किसी के पास चार-चार घटे बैठकर बाते करते रहने पर भी उसका मन अपनी ओर आकर्षित क्यो नही कर सकते! हमे बतला कि तूने यह जादू कहा और किससे सीखा? तेरे जीवन मे यह सुगन्ध किसने मिला दी, यह कस्तूरी किसने उँडेल दी? श्याम! तुझे विदर्भ (बरार) ी एक दतकथा मालूम है?..."एक बार उस प्रदेश मे एक धनिक व्यापारी का विशाल भवन बन रहा था कि उधर से एक नैपाली कस्तूरी बेचनेवाला जा निकला। उस धनिक ने नैपाली से कस्तूरी का भाव पूछा। किन्तु उसने तिरस्कारपूर्वक जवाब दिया 'तुम दक्खन के दरिद्री क्या कस्तूरी लोगे? पूना जाने पर भले ही कुछ माल बिक जाय!' यह गर्वोक्ति सुन व्यापारी को एकदम क्रोध आ गया और उसने उसी क्षण नैपाली से कहा कि 'तेरे पास जितनी भी कस्तूरी है, वह सब तौल कर यहाँ रख दे; मै अभी उसे इस मिट्टी-गारे-मे मिला देता हू। और तब तू उत्तर भारत मे जाकर कहना कि दक्षिण के लोग कस्तूरी की दीवारे बनवाते है!' और सच मुच ही उस व्यापारी ने वह सब कस्तूरी खरीद कर गारे में मिलवा दी। कहते है कि उस मकान की दीवारो से आज भी कस्तूरी की सुगंध निकलती है। इसी लिए श्यामू, तू हमे यह तो बतला कि, जब तेरे जीवन की दीवारे चुनी जा रही थी, तब उसमे यह कस्तूरी किसने उँडेल दी! हमारे जीवन मे तो न बास है न स्वास, न रूप न गन्ध! भला, यह तो बतला, कि तेरे जीवन को इस प्रकार सुगन्धित किसने कर दिया! उसे इस रंग मे किसने रँग दिया!"

अब तो श्यामू से न रहा गया और उसने गंभीरता से किन्तु गद्गद्

होकर कहा " मित्रो, यह सव मेरी माता का दिया हुआ उपहार है। मुझ मे जो कुछ अच्छाई है, वह सव मेरी माता की है। माता ही मेरी गुरु है और वही कल्पतरु। उसने मुझे क्या नही दिया! उसीसे तो मुझे सव कुछ मिला है! प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखना और प्रेम-पूर्वक वोलना भी मुझे उसीने सिखाया। केवल मनुष्यप्राणी ही नही, वरन् पशु-पक्षी एव फूल-पत्तियो तथा लता-वृक्षादि के साथ प्रेम करना भी उसीने सिखलाया। चोकर का चूरमा वना कर कैसे खाया जाता है और दरिद्रावस्था मे भी स्वत्व और सत्व कैसे कायम रखा जा सकता है, यह भी मुझे माता ने ही सिखलाया है। किन्तु माता ने मुझे जो कुछ सिखाया उसका खर्वांश (अल्पांश) भी मै प्रकट न कर सका। अभी तक मेरी मनोभूमि मे उसकी शिक्षा का वीज ही फूट रहा है। उसमे से पुष्ट और तेजस्वी अकुर कव निकलता है यह देखना है। मेरी माता ने ही मेरे जीवन मे सुगन्ध का सचार किया है। इसी लिए मै मन ही मन कहता रहता हू कि—

मम मानस में करके निवास। मां, तू संचारित कर सुवास॥

[मदंतरंगी करुनी निवास । सुवास देई मम जीवनास]

वही इस जीवन को सुगन्ध-युक्त वनाकर इस पर रग चढ़ानेवाली है। मैं सचमुच कुछ भी नही हू। सव कुछ उसीका है; उसी महान् माता का। मेरे लिए सव कुछ एकमात्र वह दयामयी माता ही है।"

इस प्रकार माता की महिमा सुनाते हुए श्यामू का गला भर आया, उसके नेत्रो से अविरल अश्रुधारा वह चली। भावावेश के कारण उसके नेत्र, हाथ और हाथो की उंगलियाँ काँपने लगी। कुछ देर तक सव शात रहे, सर्वत्र ही नक्षत्रमाला जैसी पूर्ण शाति फैली हुई थी। इसके वाद भावना की वाढ कुछ कम हुई और तव श्यामू ने कहा " मित्रो, मेरे पास तुम्हे सुनाने लायक कोई वात नही है। अतएव मै केवल इतना ही वतलाऊगा कि मेरी माता कैसी थी! माता का गुणगान करके ही मै अपनी जिव्हा को पवित्र करूंगा। मुझे माता की जो-जो वाते याद आती जायँगी, वे सव सुनाऊंगा। उसीकी स्मृति ताजी करूगा और प्रतिदिन मै एक-एक घटना सुनाता जाऊगा! यह ठीक होगा नँ?"

सब ने एक साथ कहा " हा, बिल्कुल ठीक होगा ! "

राम ने कहा " हमने तो ईश्वर से एक ही आँख मागी थी, पर उसने दो देने की कृपा की ! "

गोविन्द ने कहा " अरे, अब तो प्रतिदिन सुधारस पान करने को मिलेगा, और नित्य ही हम पावन-गगा मे गोते लगा सकेगे ! "

---

२ सावित्री-व्रत

आश्रम की प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद सभी साथी लोग मडलाकार बैठे हुए थे। उन सब की दृष्टि श्यामू के मुखचद्र की ओर लगी हुई थी। वह भ्रातृ-सघ एक अपूर्व दृश्य उपस्थित कर रहा था। रेगिस्तान मे पानी की झिरी (हाथो से खुदी हुई कुइया) प्राय. अधिक पवित्र एव परम उपकारक जान पडती है। अँधेरे मे प्रकाश की एक किरण भी बडी आशा बँधानेवाली होती है। आजकल के प्रेमरहित जीवन मे जब कि सब अपनी-अपनी निबेडने मे लगे हुए है, इस प्रकार का भ्रातृ-सघ महान् आशाप्रद हो सकता है। उस भ्रातृ-सघ के प्रेम का प्रतिरूप कदाचित् ही कही देखने को मिल सकेगा। वह आश्रम भी एक प्रकार से उस गाँव के जीवन—मर्यादित-जीवन—को स्वच्छ रखनेवाली सजीव और पवित्र झिरी के ही समान था।

उस समय गॉव मे सर्वत्र शाति का साम्राज्य था। आकाश भी शात था। केवल कुछ बैलो के गले की घटी का मधुर शब्द दूर से सुनाई देता था। हवा अलबत्ता मनमाने ढग से चल रही थी और वह त्रिभुवन-रूपी मदिर की अविराम प्रदक्षिणा करती हुई अपनी प्रार्थना अखण्ड-रूप से गुनगुना रही थी।

श्यामू ने इस प्रकार सुनाना आरभ किया.

मेरी माता का नैहर विशेष धनाढच न होते हुए भी सुखी था। वहाँ खाने-पीने की कोई कमी नही थी। वह उसी गाँव मे था। मेरे

नाना वड़े कर्मनिष्ठ एव धर्मात्मा व्यक्ति थे। मेरी माता अपने सव भाई-वहनो मे वडी थी और उसपर मेरे नाना-नानी का विशेप प्रेम था। नैहर मे उसे सव लोग 'प्रेमा' कहते थे, और सचमुच ही वह प्रेम-मयी सव के साथ प्रेम का व्यवहार भी करती थी। कोई उसे 'वाई' या 'वहन' भी कहते और वह यथार्थ मे उनके लिए वहन जैसी ही थी। वह 'जीजी' या माता के रूप में ही थी। नैहर के नौकर-चाकर या धान-कूटने-वाली स्त्रिया वडी अवस्था मे भी जव उसे 'वाई' या 'जीजी' के नाम से पुकारती, तव उसे ये शव्द कितने मीठे लगते थे, यह वतला सकना असभव है। इन नामो से पुकारने मे जो आन्तरिक स्नेह था, उसे हृदय ही अनुभव कर सकता था।

मेरी माता के दो छोटे भाई और एक वहन भी थी। मेरी नानी अत्यत नियमित जीवन वितानेवाली कार्यदक्ष महिला थी। उसके घर के वर्तन आईने की तरह चमकते थे। मेरी माता का विवाह वचपन ही मे हो गया था। सुसरालवाले श्रीमान् लोग थे, और वे सव गाँव मे सरदार माने जाते थे, अथवा कम से कम वे तो अपने को सरदार ही समझते थे। माता के शरीर पर सोने-मोती के आभूपण शोभा देते थे। गले मे हार, कंठी, सतलडी आदि सव कुछ थे। वह सुख-सम्पन्न घर या हरे-भरे गोकुल मे विचरती थी। सुसराल मे उसका नाम यशोदा रखा गया था।* सुसराल मे रहते हुए ही वह छोटी से वड़ी हुई थी। वहाँ उसके लिए किसी भी वात की कमी नही थी। खाने-पीने और पहनने-आढने के लिए सव कुछ अच्छा ही था। सयुक्त-परिवार होने से घर मे काम-काज भी पूरा था। किन्तु उत्साह-युक्त परिस्थिति एव सहानुभूति के वातावरण मे दिनरात काम करते रहने पर भी मनुष्य को उकताहट नही होती; वल्कि और अधिक काम करने मे उसे धन्यता के साथ-साथ आनन्द ही प्राप्त होता है।

मित्रो! मेरे पिता पूरे १७-१८ वर्प के भी न हो पाये थे कि दैवयोग से उनपर गृहस्थी का सव भार आ पड़ा। क्योकि मेरे दादाजी वृद्धावस्था के कारण थक चुके थे; अतएव पिताजी को ही सारा कारोवार

* कन्या का विवाह हो जाने पर सुसराल में उसका दूसरा नाम रखने की प्रथा महाराष्ट्र मे ह।—अनु०।

देखना पड़ता था। लेन-देन का काम भी वही करते थे। हम अपने पिता को 'भाईजी' (भाऊ) कहते और दूसरे सब उन्हे 'भैयाजी' कहकर पुकारते थे। आसपास के गाँव के लोग हमें 'खोत' के नाम से संबोधन करते थे।

माधव ने पूछा "क्यो भैया श्याम, खोत किसे कहते है?"

श्यामू ने कहा "खोत का मतलब है गाँव की निश्चित मालगुजारी वसूल करके सरकार के पास भेजनेवाले विना वेतन के दलाल!"

इस पर राम ने पूछा "तो क्या खुद उनको कुछ भी नही मिलता?"

"अवश्य मिलता है। सरकारी लगान का लगभग चौथा हिस्सा खोत (मालगुजार) का होता है। वह गाँव की फसल की देखरेख करता और पैदावार का अन्दाज वाँवता है। इसे 'उपज का आँक वाँवना' कहते है। ऐसे मालगुजार लोग कभी-कभी किसी खेत मे अच्छी पैदावार न होने पर भी उसे अच्छी मान लेते है! और यदि किसी किसान ने सरकारी लगान चुकाने मे लाचारी दिखाई, तो सरकारी मदद लेकर उसके घर-द्वार पर जप्ती वैठा देते है। क्योंकि निश्चित समय पर यदि किसानो से लगान का रुपया वसूल न भी हो सका हो, तो खोत (मालगुजार) को अपने पास से सरकारी रुपया जमा कराना पड़ता है।"

यह सुन माधव ने कहा "वरार और मध्य-प्रदेश मे ये लोग माल-गुजार कहलाते है, और दक्षिण में खोत। क्यो यही वात है न?"

यह सुन गोविंद ने उत्कंठा से कहा "अरे, वस चुप रहो! रहने दो तुम्हारी विद्वत्ता! हा, श्याम भैया तुम अपनी कहानी शुरू करो।"

श्यामू ने फिर कहना आरभ किया:

हम लोग वडवली गाँव के मालगुजार थे। उस गाँव मे हमारा एक वहुत वडा वाग था; जहा नहर में खूब पानी वहता था। वाव वनाकर दूर से पानी लाया गया था और वह ऊचाई पर से जलप्रपात जैसा नीचे गिरता था। वगीचे मे केला, सुपारी, अनन्नास आदि के पेड लगाये गये थे। अनेक प्रकार की कटहलो के वृक्ष भी थे। इसी प्रकार कलमी, टुफले आदि कटहल की कई विशेषताएँ उसमे थी। तुम लोग कभी कोकण-प्रदेश में आओगे, तव वहाँ तुम्हे ये सव वाते प्रत्यक्ष दिखलाई जायँगी। वह

वगीचा ही हमारा सम्पूर्ण वैभव या भाग्य-चिन्ह समझा जाता था। किन्तु मित्रो! यथार्थ में वह वाग हमारे लिए वैभव नही, वरन् पाप-रूप था। पाप क्षणभर के लिए हँसता और हमेशा के लिए रोता है। वह थोड़ी देर के लिए सिर उठाता और हमेशा के लिए मिट्टी मे मिल जाता है। पाप के लिए थोडीसी देर का मान और उतना ही स्थान रहता है। संसार मे केवल सद्गुण ही शुक्र के तारे की तरह शात, स्थिर और सदैव चमकते रहते है।

मालगुजार जिसे भी चाहे काम के लिए बुला सकता है, और वुलाने पर उसे जाना ही चाहिए, नही तो उसके कोप-भाजन वनना पड़ता है। भले ही गाँव की गरीव एव मेहनती स्त्रियाँ अपने लिए वैंगन, मिर्ची, लौकी, तुरई, कद्दू, शकरकन्द या तरवूज आदि की वेले क्यारियां वनाकर लगावे; परंतु इन सव पर मालगुजार की वरावर नजर रहेगी। किन्तु यथार्थ मे यदि देखा जाय तो दूसरे के परिश्रम पर जीवित रहने से वढकर कोई पाप नही हो सकता। दूसरे को सताकर या दिनरात मेहनत लेकर भी तुच्छ समझने और अपने-आप गद्दी-तकिये पर लोटते रहने जैसा अक्षम्य अपराध और नही हो सकता। मेरी माता के शरीर पर जो आभूषण थे, वे कहाँ से आये होगे? वह आवदार मोतियो की नथ! गाँव की गरीव स्त्रियों के नेत्रो से वरसनेवाले मोती के समान आँसुओ से ही तो वनी हुई थी! उन गरीव लोगो के सोने जैसे बच्चो के मुख पर की हँसी, उनके शरीर के तेज और बल का अपहरण कर के ही तो मेरी माता के लिए सोने के आभूषण वनाये गये थे! ईश्वर को इस 'सत्य' का मेरी माता को परिचय करा देना अभीष्ट था और वह इस प्रकार उसे जागृत या सचेत कर देना चाहता था।

मेरे पिताभी यद्यपि स्वभावत दुष्ट-प्रकृति के नही थे, किन्तु फिर भी उन्होने अपने पूर्वजो की प्रथा को कायम रक्खा था। क्योकि उन्हे माल-गुजारो के मनमाने अधिकारो पर अभिमान होता था। किसीने यदि उनकी वात नही सुनी, तो वे समझने लगते थे कि यह कुर्मी (किसान) मगरूर हो गया है। किसी भी मामूली-समाज के व्यक्ति को आधे नाम से तुच्छता-पूर्वक संवोधन करना तो उनके लिए हमेशा की रीति ही थी! क्योकि ऐसा करते समय उनका ध्यान इस ओर कभी जाता ही न था कि इनको तुच्छ मानकर हम खुद इतरा रहे हैं; सत्तान्ध हो रहे है।

पिताजी के हाथ मे नया-नया ही सब कारोबार आया था। अभी उन्हे विशेष अनुभव भी नही हुआ था। मालगुजार होने के जोश में कभी-कभी वे ऐसी बाते कह जाते, जो अनेक व्यक्तियो के जी दुखा देती थी। कुछ पूर्वजो के भी पाप थे ही। मनुष्य मर जाता है, किन्तु पाप-पुण्य कभी नही मरते। इसी प्रकार संसार मे कुछ भी व्यर्थ नही जाता। जो बोया जायगा वही उगेगा और जो लगाया जायगा वही फले-फूलेगा।

एक बार की बात है। वह अमावस की रात थी। पिताजी बडवली गाँव के लिए घर से चलकर सवेरे आठ बजे वहाँ जा पहुँचे थे। चलने से पूर्व घर के लोगो ने उन्हे मना किया कि आज अमावस है और साथ ही शनिवार भी, इस लिए आज गाँव को मत जाओ! किन्तु पिताजी ने कहा 'अरे, कहा की अमावस और कैसा शनिवार! जो कुछ होना है वह होगा ही। प्रत्येक दिन पवित्र और शुभ ही है। प्रत्येक दिन देवता के ही घर से आता है'। इसके बाद वे गाँव को चल दिये। दिनभर वहा रहे और दिन डूब जाने पर शाम को घर आने के लिए गाँव से चले।

उन्हे गाँव से चलते समय घरोपा (अपनायत) रखनेवाली एक बुढिया ने कहा 'भैय्या! यह शाम का वक्त दैत्यो का होता है। इस समय घर मत जाओ। आज अमावस की काली रात है। गाँव से निकलते ही अधेरा हो जायगा और नाले तक पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी। इस लिए अब रात भर यही रह जाओ। सवेरे जलदी से उठकर ठडे वक्त चल जाना।' किन्तु पिताजी ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए यही कहा 'अरी बुढिया, यह तो पैरोतले का रास्ता है। रात भी हो गई तो क्या हुआ? मै अभी फुर्ती से जाता हूं और दूध दुहने के समय तक घर जा पहुँचूगा।'

पिताजी गाँव से चलदिये। साथ मे नौकर भी था। एक ओर उस बुढिया के शब्द 'मत जाओ' कहते थे और दूसरी ओर फलनेवाले पाप उकसा रहे थे कि 'चल! यहा मत ठहर!' अत को गाँव के लोगो ने जब उन्हे बिदा किया तो एक व्यक्ति भीषण स्वर मे हँसा। कुछ लोगो ने एक दूसरे की ओर देखा। किन्तु पिताजी नौकर को साथ लिये हुए चल ही दिये। अँधेरा बढने लगा और आकाश में परमेश्वर के, सतो और सतियो के आँसू चमकने लगे।

बडवली गाँव से लगभग डेढ़ कोस दूर एक नाला था। वर्सात मे उसे पार करना कठिन होता था। वह एक गहरी घाटी मे वहता था। उसके दोनो ओर सघन झाड़ी थी और उसमे कभी वाघ-भेड़िये भी दिखाई दे जाते थे। इस कारण अनजान आदमी को तो दिन-धौले भी उसमे से निकलते हुए डर लगता था। किन्तु पिताजी निडर होकर चले जा रहे थे। वे भय का नाम तक न जानते थे। भूत-प्रेत या जीव-जंतु किसी का भी उन्हे भय नही था।

चलते-चलते पिताजी उस घॉटी के पास पहुँचे ही थे कि एकदम किसीने सीटी बजाई। पिताजी कुछ चौंके। पाप तो भीरु होता ही है। तत्काल ही शरीर पर गेरु (लाल-मिट्टी) लगाये हुए कुछ मांग (एक अछूत जाति के पुरुप) झाड़ी मे से निकल पड़े। इसके वाद जैसे ही पिताजी की पीठ पर लाठी का वार हुआ कि वे एकदम नीचे वैठ गये। यह काड देखते ही नौकर वहा से भाग निकला। पिताजी को नीचे गिरा दिया गया और एक माग के हाथ मे छुरा चमकने लगा। लपक कर वह पिताजी की छाती पर चढ वैठा। वह गर्दन कटने का विकट प्रसग था। इधर करौंदी की झाड़ी में झिल्ली झन्कार मचा रही थी। उधर पास ही की एक वाँवी मे से विकराल भुजग फूत्कार करता हुआ सन्नाटे से निकल गया। किन्तु उस 'मांग' का उधर ध्यान तक नही था। इतने ही मे एक वुढिया चिल्लाई 'अरे, बेचारे वामन को मार डाला! खोत (माल-गुजार) को मार डाला रे दौडो!' इन शब्दो को सुनकर वह 'माग' कुछ सहमा!

इधर पिताजी अत्यंत करुणामय वाणी मे उस घातक से विनय करने लगे 'अरे भाई! मुझे क्यो मारता है। मैंने तेरा क्या विगाड़ा है! ले यह अगूठी और यह छल्ले-जोड़ तथा ये सौ रुपये। वस, अव तो मुझे छोड!'

किन्तु उस वुढिया की आवाज सुनकर कोई आता हुआ दिखाई दिया। किसी के आने की आहट पाते ही घातक वह अगूठी और छल्ले-जोड तथा सौ रुपये नकद लेकर चम्पत हो गया। वे लोग असल मे घातक नही थे और नः उनका यह धन्धा ही था। वे तो केवल दरिद्रता

के कारण ही इस घोर-कर्म मे प्रवृत्त हुए थे। किन्तु इस क्रूर-कर्म की जड मे भी दया थी—प्रेम था। अपने बाल-बच्चो के प्रेम के कारण और उनके पेट की भूख मिटाने के लिए ही वे लोग यह हत्याकाण्ड करना चाहते थे। कुछ लोग कहते है कि ससार मे कलह और स्पर्धा ही सत्य-रूप मे है। किन्तु उस कलह की जड या स्पर्धा की भाग-दौड के मूल मे भी प्रेम तो होता ही है। अतर केवल इतना ही है कि वह प्रेम सकुचित होता है। सृष्टि का अतिम-स्वरूप प्रेम है युद्ध नही, सहयोग है द्वेप या ईर्ष्या-भाव नही।

अस्तु। पिताजी का साथ छोडकर भागा हुआ नौकर सीधा हमारे 'पालगढ नामक गाँव मे आया और उसने घबराते-घबराते हमारे घर आकर सब हाल सुनाया। यह खबर सुनते ही घर के सब लोग और गाँव के अनेक व्यक्ति तत्काल उस नाले की ओर दौड पडे। हमारे गाँव मे पुलिस का थाना था, इस लिए वहा भी खबर कर दी गई।

भीतर घर मे यह समाचार पहुँचते ही कोहराम् मच गया। सब के चेहरो का पानी उड गया। घर मे दीपक जल रहे थे, किन्तु फिर भी सबके मुँह पर मुर्दनी छाई हुई थी। किसका खाना और कैसा पीना! वहा तो प्राणो पर सकट था। उस समय हममे से किसीका भी जन्म नही हुआ था; किन्तु माता सबकुछ समझने लगी थी। स्त्रियाँ जल्दी ही दुनियादारी समझने लगती है। मेरी माता ने यह सब कथा हमे सुनाई थी। वह घर मे देवता के पास पहुँची। सकट का एकमात्र साथी वही तो था। वहा जाकर माता ने अचल पसारते हुए कहा 'हे दीनबन्धु नारायण! तुम्ही मेरे रक्षक हो! तुम्हीं को मेरी चिता है! माते जगदम्बे! मैं तेरी ही तो पुत्री हूँ, मुझे अपनी गोद मे ले! मेरे कुकुम-सौभाग्य-सिन्दूर की रक्षा कर! मेरा चूडा अखड बनाये रख। मेरा सौभाग्य . नही। माते! उनपर घातक का प्रहार न होने देना। ओह! मै अब क्या करू? कौनसा व्रत लू! हे भगवान, मुझपर दया करो! तुम तो करुणा के सागर हो! वे कुशलपूर्वक घर आवे और मै जी भरकर उनके दर्शन कर सकू। तुम्हारे आशीर्वाद से हम आजीवन आनन्द-पूर्वक रहे; यही, केवल यही भिक्षा मागती हू। इसके सिवाय मुझे और कुछ नही चाहिए। न इन आभूषणो की आवश्यकता है और न बहुमूल्य

मेरे ही शरीर का तो तू एक अश है। मेरा ही तो तू प्रतिरूप है। इस लिए तू जो प्रदक्षिणा करेगा, वह मेरी ही होगी। मै दुर्बल, अशक्त और बीमार हू; यह बात भगवान अच्छी तरह जानता है।"

"परतु वहाँ पूजा करनेवाली स्त्रियाँ तो मुझे प्रदक्षिणा करते देख-कर हँसेगी! नही, मै कभी वहाँ नही जाऊगा। स्कूल मे जानेवाले लड़के मुझे वहाँ देखकर चिढाते हुए कहेगे 'यह देखो, छोकरी आई! इस लिए मुझे तो शर्म लगती है। बस, मै नही जाऊगा वहाँ! साथ ही एक दिन के लिए मेरी गैरहाजिरी होने पर गुरुजी भी तो नाराज होगे।" इस प्रकार मै अपनी लाचारी के अनेक कारण वतलाने लगा।

माता की मलिन मुखमुद्रा एकदम खिन्न हो गई। उसने फिर कहा, "श्यामू! माँ का वताया हुआ काम करने में किस वात की शर्म? यह देवता की पूजा है नँ? यदि पूजा करते देख कर कोई हँसा भी तो वही मूर्ख सिद्ध होगा। देवता का काम करने मे कभी शर्माना नही चाहिए। हाँ, पाप करते समय अवश्य मनुष्य को लज्जित होना चाहिए। श्यामू! उस दिन चूल्हे के पीछे रखा हुआ नारियल की गिरी (गोले) का टुकडा उठाकर तू खा गया और मैंने अपनी आँखो से देख भी लिया, किन्तु कुछ नही कहा। सोचा, जाने भी दो, अभी यह वच्चा है। उस दिन तुझे शर्म नही आई और आज देवता के काम मे तुझे लज्जा होती है, क्यो? फिर तू 'भक्ति-विजय' ग्रथ क्यो पढता है? वह 'पाडव-प्रताप' क्यो सुनाया करता है! तेरा प्यारा कृष्ण तो अर्जुन का सारथी वनता है, धर्मराज के यज्ञ मे जूँठन तक उठाता है और मेरी ऐसी हालत देखकर भी वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करने मे तुझे शर्म लागती है? अच्छी वात है, तू नही जाना चाहता तो मत जा! मै खुद ही वहा जाऊगी और वट की प्रदक्षिणा करूगी! अधिक से अधिक यही तो होगा कि मै चक्कर खाकर गिर पडूगी; मर भी जाऊगी तो एक वार इस कष्ट से तो छूट जाऊगी। भगवान के घर तो चली जाऊं-गी। परतु श्याम! मै तुम्हारे लिए ही तो जी रही हू" यो कहते-कहते माता अचल से आँसू पोछने लगी।

माता के वे मर्मभेदी शब्द मेरे अत करण मे गहरे उतर गये। मेरा हृदय द्रवित हो उठा और सजल एव पवित्र हो गया। अहा! माता के

कैसे कल्याणकारी शब्द थे "ईश्वर के काम करने मे मत शर्माओ, पाप करने मे लज्जित होओ।" आज भी वे शब्द मेरे कानो मे गुज रहे है। इस समय ऐसे उपदेश की कितनी आवश्यकता है! देवता के काम मे, देश के काम मे और भारतमाता के काम मे हमे शर्म लगती है, किन्तु निकम्मी पुस्तके पढने, भ्रष्ट सिनेमा देखने, हुलास सूघने, बीड़ी-सिगरेट पीने, पान-सुपारी चबाने और चैनबाजी करने मे हमे शर्म नही आती। पुण्यकार्य अथवा सत्कर्म करने मे लज्जा आती है, और असत्कर्म करने मे हम गौरव अथवा सस्कृति का महत्त्व अनुभव करते है। यह अवस्था कितनी लज्जाजनक और निन्दनीय है!

मै तत् काल ही माता के चरणो मे गिर पडा और अपने अपराध की क्षमा मागते हुए बोला "माता, मै अवश्य वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करने जाऊगा। भले ही कोई मेरी हँसी उडावे या मुझे व्यग-वाणी सुनावे, किन्तु मै जाऊगा, अवश्य जाऊगा। पुण्डलीक भी तो माता-पिता की सेवा कर के ही बडा बना और देवता को बाँधकर घर ले आया था! इस लिए माँ, तेरा काम करके मुझे तेरा और देवता का प्यारा बनने अवसर दे। स्कूल मे यदि गुरुजी रुष्ट हुए और उन्होने मुझे पीट भी दिया तो चिन्ता नही! माँ, तुझे मेरी बातो पर क्रोध आ गया और बुरा लगा है, क्यो?"

माता ने कहा "नही बेटा, मै तुझ पर नाराज क्यो कर हो सकती हूं? श्याम! मुझे तुझ पर क्रोध नही आ सकता!"

मित्रो, उस दिन से जब कभी मै घर पर रहता और वट-सावित्री का समय आ जाता तो अवश्य ही मै वट की प्रदक्षिणा करने जाता था। अपनी माता के उस दिन के शब्द मै कभी भूल नही सकता कि "पाप करने मे शर्माओ, किन्तु अच्छे काम करने मे कभी लज्जित न होओ।"

---

३ बहन का व्याह

आश्रम मे सायकाल का भोजन हो चुका था। इस भोजन के बाद प्रार्थना का समय होने तक आश्रमवासी टहलने चले जाते थे। आश्रम के पास ही नदी भी थी। नदी का नाम था बहुला! उसके किनारे

पर महादेव का मदिर था। देवालय से लगा हुआ पीपल का एक वहुत वड़ा पुरातन वृक्ष था, जिसके चारो ओर पक्का चवूतरा वना हुआ था। और उसपर गाँव के लोग कभी-कभी आकर वैठते थे।

गोविन्द और श्यामू टहलने गये और वे दोनो टेकड़ी पर जाकर वैठे। छोटा गोविन्द अलगोजा वहुत मधुर वजाता था। उसने अपनी वाँस की वाँसुरी जेव से निकाल कर वजाना आरभ किया। कवि-हृदय श्यामू उसकी मधुर रागिनिया सुनने लगा। अचानक गोविन्द ठहर गया और उसने श्याम के मुँह की ओर देखा। श्याम के नेत्र वद थे और उसके मुखमडल पर मधुर किन्तु दिव्य तेज झलक रहा था।

गोविन्द ने कहा "भैया, चलो आश्रम को लौट चले। प्रार्थना का समय हो रहा है।" श्यामू ने आँखे खोलकर कहा "गोविन्द! वाँसुरी एक दिव्य वस्तु है। कृष्ण की मुरली (वसी) से पशुपक्षी तो क्या ककड़-पत्थर-तक पिघल जाते थे। तूने स्त्रियो को गाते सुना है न :—

वहती है प्रशान्त यमुना कलनाद लुब्ध होकर समीर।
तरुवर भी मुग्ध खड़े कैसे, फल-पत्र-पुष्प भी शांत धीर॥
गोपीजन वल्लभ के दर्शन-हित काम काज छोड़े सारे।
वृंदावन में वाजी वंसी, टुक ठहरो तो मोहन प्यारे॥*

"गोविन्द! वचपन मे कोकण प्रदेश मे रहते हुए छुट्टी के दिन वर्षा-ऋतु मे कभी-कभी ग्वालो के साथ मै भी जंगल मे जाया करता था। उस समय गौएँ तथा उनके वछडे चरते रहते और ग्वाले मस्त होकर अलगोजा वजाया करते थे। मेरे काका (चचा) वहुत ही मीठे स्वर के अलगोजे वनाते थे। वाँसुरी वाँस की एक छोटीसी नली होने पर भी उसमे कितनी अद्भुत शक्ति है, यह तो तू जानता ही है। आज कल व्राँस (पीतल) आदि की वनी हुई विदेशी कर्कश वाँसुरी लोग दो-दो रुपये देकर खरीदते है; किन्तु वेचारे

---

* यमुनावाई वाहे स्थिर नादें लुब्ध समीर रे।
हालवीना तरूवर पुष्प फळ पान रे॥
गोपीनाथा आल्यें आल्यें सारूनीया काम रे।
वृंदावनीं वाजवीशी वेणू जरा थांव रे॥

ग्रामीण लोगो के लिए तो यह बाँस की अमूल्य बाँसुरीही मधुर, सुदर और सुलभ हो सकती है। बाँसुरी हमारा राष्ट्रीय वाद्य है। भगवान श्रीकृष्णचंद्रने उसे प्रचलित किया और भारत के साढे सात लाख गाँवो मे वह आज भी घरघर बजाई जाती है। क्यो ठीक है नँ! अच्छा फिरसे एक बार वह गीत तू अपने अलगोजे पर अलाप तो देखू।"

"परन्तु वह देखो आश्रम की घंटी बज रही है। चलो, प्रार्थना के लिए चले।" गोविन्द ने कहा।

"अच्छा, चलो! किन्तु क्यो गोविन्द! क्या कल मै बहुत देरतक अपनी कथा कहता रहा? पर भाई, माता की थोड़ीसी पूर्वकथा भी तो कहनी चाहिए थी! आज मै शीघ्र ही समाप्त कर दूगा।" श्याम ने उत्तर दिया।

इसपर गोविंद ने कहा "नही भैया, कौन कहता है कि तुमने देर कर दी! केवल दस-बारह मिनट ही तो तुम बोले थे। व्यर्थ ही जान-बूझकर उन मधुर स्मृतियो को सक्षिप्त मत करो। उनमे बीच-बीच मे अनेक प्रकार के विचार-कल्पना एवं भाव उदित होते है, और उनसे हमे जब लाभ ही होता है तो उस समय को व्यर्थ गया हुआ कैसे कह सकते है?"

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनो मित्र आश्रम में आ पहुँचे। ऊपर छत पर प्रार्थना की तयारी हुई और सब आश्रमवासी आकर बैठ गये। गाँव से भी कुछ लोग आये थे। घटी बजी और प्रार्थना शुरू हुई।

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव"

इत्यादि श्लोको-द्वारा गीता-कथित स्थित-प्रज्ञ के लक्षण सुनाये गये। किन्तु अब तो यह प्रार्थना लगभग राष्ट्रीय-प्रार्थना की ही तरह प्रचार मे आ गई है।

प्रार्थना समाप्त होते ही श्यामू की कहानी सुनने को सब लोग अधीर हो उठे। अतएव उसने इस प्रकार कहना आरभ किया:

मेरी माता का प्रेम हम सब भाइयो की अपेक्षा हमारी बहन पर अधिक था। बहन भी मानो माता की प्रतिमूर्ति ही थी। हम उसे 'जीजी' कहते थे। मेरी जीजी क्षमा, दया और कष्ट एव सहनशीलता की मूर्ति थी। उसे पहली बार सुसराल मे बहुत कष्ट दिया गया, किन्तु

चुपचाप उसने वह सब सहन कर लिया, घर आकर कभी एक अक्षर तक न कहा। उसने अपने लड़के को कभी एक थप्पड तक नही लगाई। जब कभी उसे लड़के पर क्रोध आता, तो वह उठकर अलग चली जाती और अपना क्रोध शांत कर के आ जाती।

मेरी जीजी के विवाह के समय की बात है। उसके विवाह का योग कई दिनो तक न आ सका था। वह मगली लडकी थी, इस कारण बारम्बार रुकावट पडती थी। साथ ही ठहरौनी का प्रश्न भी बाधक हो रहा था। वैसे हमारे घर का नाम तो बहुत प्रसिद्ध था, किन्तु यथार्थ मे 'नाम बड़े और दर्शन थोड़े' वाली अवस्था थी। परिवार के कुछ लोग अवश्य यह चाहते थे कि पूर्वपरपरा की ही तरह ठाट-पाट से रहा जाय; परन्तु कर्ज बढता ही चला जाता था। मेरी जीजी को सत्रह जगह ले जाना पड़ा। कही लडकी पसद आ गई तो ठहरौनी बाधक हो गई, और कही ये दोनो बाते जमी तो किसी तीसरी बात की रुकावट आगई। सचमुच ठहरौनी (हुडा) एक प्रकार से लडकी की गर्दन पर रखी हुई शिला के समान ही होती है। इस ठहरौनी की चिंता के कारण बेचारी लडकी के शरीर की पूर्ण वृद्धि तक नही होने पाती। यह चिंता उसके शरीर मे भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। बारम्बार उसके कानो से माता-पिता के ये चितायुक्त शब्द टकराते रहते है कि "लडकी पहाड़ की तरह बढती जा रही है। भगवान जल्दी से इसे ठीक ठिकाने लगा दे तो गंगा नहाये। न जाने किसके घर के तिल चबाये है कि योग्य घर-वर का पता ही नही लगता।" इन शब्दो को सुनकर लडकियो को अपना जीवन भारवत् जान पडता है। किन्तु हमारे देश के युवक ही बड़े अविचारी है। उनका ध्यान ही इस बुराई की ओर नही जाता।

इस दहेज की कुप्रथा को मिटाने के लिए बीस वर्ष पूर्व बगाल मे कुमारी स्नेहलता ने शरीर पर मिट्टी का तैल डाल कर अपने को जीवित जला दिया था। उस समय अवश्य थोडी देर के लिए युवको मे हलचल मची थी। और उन्होंने आन्दोलन खडा कर के सभाओ मे प्रस्ताव भी पास किये थे। किन्तु वह आवेश दूर होते ही फिर सब बाते ठंडी पड़ गई। दहेज के साथ ही आगे की शिक्षा या विदेश जाने के लिए खर्चा, अंगूठी एवं

बहुमूल्य आभूषण, सोने की रिस्टवॉच, सायकल, मोटर आदि की माग भी अब खुल्लम् खुल्ला की जाती है। किन्तु यथार्थ मे यदि देखा जाय तो लड़के या लड़की के नाम पर रुपया मागना सर्वथा निंदनीय ही है। कहा तो हमारा वह महान् उदार धर्म, जो गौ तक को बेचने का निषेध करता हो; और कहा उसके अनुयायी अपने लडके-लड़कियाँ तक को बेचने मे नही लजाते! कितना अध पतन है! इससे बढकर दूसरा अधर्म और क्या हो सकता है? मुँह से धर्म की ठसक तो सब दिखाते है, किन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार मे प्रायः सभी बगले झाकने लगते है। जिन युवको के हृदय उदार होने चाहिए, वे भी आज मुर्दार बने हुए है। किन्तु जब तक इन निंदनीय प्रथाओ के विरुद्ध विद्रोह मचाने का साहस उनमे नही होगा, तब तक कुछ भी नही हो सकता। अपनी बहनो के जीवन को संकटापन्न बना देनेवाली रूढियो और कुप्रथाओ को छोड़ने का जिनमे साहस नही है, उन्हे स्वतत्रता प्यारी है, यह कैसे माना जा सकता है? ससार भी उन्हे कैसे स्वातंत्र्य-प्रिय कह सकता है? किन्तु छोडिये इन बातो को! मै भावना के प्रवाह मे कहा से कहा बह गया।

इसपर एक साथी ने कहा "नही भाई, तुम किधर भी क्यो न बह जाओ, हमे तो उसमे से भी उपदेशरूपी मधुर मधु की ही प्राप्ति होगी। ऊबट जगल मे जाने पर भी तुम फल-फूल ही दिखलाओगे। जब तक तुम बोलते रहते हो, तब तक पुगी (बीन) सुनकर डोलनवाले सर्प की तरह हमारा अतरात्मा डोलता रहता है।"

तत् काल ही गोविन्द ने इसका समर्थन करते हुए कहा "तुम्हारी तो प्रत्येक बात ही हमे मीठी लगती है भैय्या! तुम्हीने तो उस दिन शाहूनगर-वासी नाटक मडली के प्रसिद्ध नट गणपतराव की बात सुनाई थी कि 'हेम्लेट' नाटक का तो विज्ञापन किया गया और रगम-मच पर आकर गणपतराव ने 'सत तुकाराम' नाटक का प्रसग छेड दिया! किन्तु दर्शको ने कहा कि 'कोई हानि नही! गणपतराव का तो प्रत्येक वाक्य ही सुदर होता है।' ठीक यही बात तुम्हारे लिए भी कही जा सकती है। भले ही तुम कोई कहानी सुनाओ या प्रवचन दो, हमारे लिए तो दोनो ही आनदप्रद होगे।"

"हा, तो फिर जीजी के विवाह का क्या हुआ?" राम ने पूछा।

श्यामू ने कहा . देखा ! राम अपने मूल विषय पर ही मौजूद है। अच्छा तो सुनो —कई दिनो तक घूमने-फिरने के वाद जैसे-तैसे जीजी का विवाह निश्चित हुआ। विवाह रत्नागिरी मे होनेवाला था, इस लिए हम सव को पालगढ से रत्नागिरी जाना पडा। मै उस समय छह-सात वर्ष का था। ठीक तो याद नही है, किन्तु माता ही कभी-कभी उस घटना को सुनाया करती थी। मुझे वह तूफ़ानी समुद्र और वे वैलगाड़ियाँ आदि सव अच्छी तरह स्मरण है। उस दिन ग्राम-वासी और हमारे घर के मिला कर कोई पचास-साठ व्यक्ति वैलगाड़ियो में रवाना हुए और सीधे 'हर्णै' वदर-गाह पर आ पहुँचे। उन दिनो स्टीमरो-जहाजो की हालत वहुत खराव थी। साथ ही हर्णै वंदरगाह पर धक्का (समुद्र के पानी का धक्का सहनेवाली दीवार) नही था। इस लिए नौकाएँ कमर से भी अधिक गहरे पानी मे खड़ी रहती थी। वहां तक मल्लाहो के कन्धे पर चढकर जाना पड़ता और फिर उन नौकाओ मे वैठकर स्टीमर तक पहुँचते थे।

यद्यपि हर्णै वंदरगाह त्रासदायक था, किन्तु फिर भी वहां का दृश्य बड़ा सुन्दर था। इसका प्राचीन नाम 'सुवर्णदुर्ग' था। इस किले के विषय में आज भी औरते गाया करती है कि .—

> **हर्णैच्या किल्ल्यावरी। तोफा मारिल्या दुहेरी।**
> **चंद्र काढिला वाहेरी। इंग्रजांनीं।**

अर्थात् चद्रसेन राजा को अग्रेजो ने हर्णै के किले पर दुहेरी तोपें चला कर वाहर निकाल दिया। अस्तु। इस बंदरगाह पर समुद्र के किनारे ही नारियल के सघन वन है। सामने ही उत्ताल तरंगवाले समुद्र को देख-कर वे वृक्षमालाएँ प्रसन्नता से गर्दन मटकाती रहती है। समुद्र की गंभीर गर्जना छह-छह कोस तक सुनाई देती है। हर्णै वदरगाह पर 'दीपगृह' भी है। एक ऊंची टेकड़ी पर लाल रग की वत्ती घूमती रहती है। और इस प्रकार वह मुँह से कुछ कहे विना ही आने-जाने वाले जहाजो को खतरे की सूचना देती रहती है कि यहा चट्टाने है। संत-महात्मा भी इसी प्रकार ऊंची चट्टानपर खड़े होकर संसार को मौन-रूप से मार्ग-दर्शन करते रहते है। अर्थात् संत-महात्मा भी भवसागर के दीपस्तंभ ही है।

इस दीपस्तभ को देखते ही हमारे उन ग्रामवासी साथियों में से एक ने किसी महात्मा का वचन सुनाया·—

सतकृपेचे हे दीप । करिती साधकां निष्पाप ।

अर्थात् सत-महात्माओं का कृपा-रूपी दीपक साधकों को निष्पाप कर देता है। और यह बात यथार्थ ही थी। ग्रामीण-भक्त एवं श्रद्धालुओ (वारकरी) को कितने ही महात्माओं के पद, भजन आदि कठस्थ रहते है और पढी हुई जितनी बातें उनको याद रहती है, उतनी हमारे सुशिक्षितो को नही। उन्हे तो अगरेजी के कवियो से परिचय होता है और उन्हीके वचन याद रहते हैं। वे ज्ञानेश्वर या तुकाराम को नही जानते।

श्यामू ने कहा : वह लाल दिया रात को कितना सुन्दर दीखता है! यदि उस समय आकाश मे चन्द्रमा हो और समुद्र मे प्रेम का ज्वार आ रहा हो; तो उसके विशाल वक्षस्थल पर हमे सैकड़ो चद्रमा नाचते हुए दिखाई देंगे। उस समय ऐसा जान पडेगा मानो समुद्र अपने सुन्दर सुकुमार गौरवर्ण बाल-शिशु के सैकडो चित्र खीच रहा है।

यह सुन एक छोटेसे लडके ने पूछा "तो क्या चंद्रमा समुद्र का पुत्र है?"

"हा, समुद्रमथन के समय वह चौदह-रत्नो के साथ बाहर निकला था, ऐसा एक कथा मे उल्लेख मिलता है।" इस प्रकार नामदेव ने उत्तर दिया।

श्याम अपनी कथा सुनाने के आवेश में था ही; अत वह फिर कहने लगा· उस समय ऐसा भी प्रतीत होता था, मानो अपने पुत्र चद्रमा को पहनाने के लिए समुद्र अनेक प्रकार के आभूषण लिये हुए उछल रहा है, अथवा चंद्रमा ही सैकडो रूप धारण कर लहरो से खेलने के लिए नीचे उतर आया है। उस समय सर्वत्र आनद ही आनंद छाया रहता है। हवा चलती रहती है और नारियल डोलते एवं समुद्र मे लहरो की दीवारें उठ-उठ कर दूर तक किनारे पर फैल जाती है। दीपक चमकता, चन्द्रमा अपनी शुभ्र-चंद्रिका फैलाता और नावो मे यात्रियो का समूह चढ़ने लगता है। भीड़ के कारण हलचल-सी मच जाती है। उधर मल्लाह और खल्लासी लोगो की चिल्ल-पुकार मची रहती है।

किसी का सामान छूट जाता है तो किसी का बदल जाता है और किसी का खो जाता है। किसी का समुद्र की हवा से जी मिचलाता और किसी को उल्टी हो जाती है। और वह यदि किसी के शरीर पर हो गई तो वह गुस्से के मारे उबल उठता है। भारतवासियो की सारी अव्यवस्था, गड़बड़ और उदासीनता एवं सहानुभूति-शून्य वृत्ति का वहाँ प्रत्यक्ष परिचय मिल जाता है।

हम लोग भी नाव मे बैठे और वह चलने लगी। मल्लाह लोग पतवार चलाने लगे। छपाक्-छपाक् कर पानी-कटने का शब्द होने लगा। जोरो की हवा के कारण पानी के छींटे शरीर पर उड रहे थ, और खेवैया लोग "शाबास! जरा जोर से!" कहकर परस्पर उत्साह बढा रहे थे। नाव मे बहुत भीड होने से जगह की तगी थी। मेरी माता गोद मे बच्चे को लिए हुए एक ओर बैठी थी और साथ ही मेरी बुआ भी अपने बच्चे को गोद में सुला रही थी। क्योकि बुआ बीमार थी, अतएव उसके बच्चे को दूध नही मिल रहा था। वह ऊपर का दूध उसे पिलाती थी, किन्तु ऐसे दूध से बहुत छोटे बच्चो को सतोष नही होता। क्योकि माँ के दूध का स्वाद कुछ और ही होता है। वह निरा दूध ही नही होता, वरन् उसमे प्रेम और वात्सल्य-रूप अमृत भी होता है। इसी लिए वह दूध बच्चे को पुष्ट करता और तेजस्वी बनाता है। जिस देन (दान) मे प्रेम होता है, उससे देने और लेनेवाले, दोनो को सुख होता है।

किनारे पर की गाड़ियो के बैलो के गले मे बजनेवाली घटियो की आवाज दूर चले जाने पर भी सुनाई दे रही थी। क्रमश बंदरगाह पर के दिये धुँधले दिखाई देने लगे और जहाज भी कुछ दूर खड़ा दिखाई दिया। प्रथमत उसका ऊपर वाला लेम्प दिखाई पडा, किन्तु फिर भी वहां तक नाव के पहुँचने मे आधा घटा लग ही गया। रास्ते मे ही "अरे काटता क्यो है? उसमे ऐसा पीने को है ही क्या?" यो कह कर बुआ अपने बच्चे पर चिल्लाई, और इससे बच्चा जोरो से रोने लगा। वह किसी प्रकार भी चुप न हो सका। उधर नाव मे भीड इतनी थी कि इधर-उधर हिलने तक की गुंजायश नही थी। किन्तु जब आसपास लोगो की भीड होती है, उस समय यदि बच्चा रोने लगता है तो बेचारी माता को मृत्यु से भी

अधिक कष्ट होता है। क्योकि प्रत्येक माता यही चाहती है कि उसका बच्चा हँसे-खेले और सब लोग उसे प्यार करे; उसे उठावे, नचावे और प्रेम से चूमे। इसीमे माता के लिए परमानन्द होता है। यह सब देखकर उन्हे कृतार्थता प्रतीत होती है। किन्तु यदि बच्चा रोने लगे तो उसकी फजीहत हो जाती है। हँसते बच्चे को सभी गोद मे लेना चाहते है, किन्तु रोते हुए को कौन उठाना चाहेगा? यथार्थ मे रोते हुए को ही उठाने की विशेष आवश्यकता होती है; फिर भी लोग उसीसे घृणा करते है। सच ही है; ससार मे सभी सुख के साथी है, दुख का कोई नही। दीन-जनो का ससार मे कोई सहायक नही होता। पतितो की सुधि कोई नही लेता। जिसे सहानुभूति की अत्यंत आवश्यकता होती है, उसीको उसके लिए तरसना पड़ता है।

'दीन को दयालु दानी दूसरो न कोई।'

बच्चा रोने लगा कि चारो ओर से स्त्रियाँ बड़बड़ाने लगती है। कोई कहती है "अरे, यह कैसी माँ है जो रोते बच्चे को चुप भी नही कर सकती!" तो दूसरी सुनाने लगती है, "अरे, पर ये तो रोज ही इस तरह रोते है, इन्हे कोई चुप करे भी तो कैसे? सुनते-सुनते आदत-सी पड़ जाती है।" किन्तु इन वचनो को सुन बच्चे की माता को ऐसी मर्मवेदना होती है, कि यदि उस समय पृथ्वी फट जाय तो वह अपने बच्चे सहित उसमे समा जाय। क्योकि दुनिया के बाजार मे बकवादी तमाशबीन ही अधिक होते है। मेरी बुआ की भी उस समय यही दशा हुई। क्यो कि उसका बच्चा किसी भी प्रकार चुप नही होता था? किन्तु मेरी माता पास ही बैठी हुई थी। उसने अपने बच्चे को नौकर के हवाले किया और बुआ से कहा "ननँद, लाओ उसे मेरी गोद मे देदो। मै दूध पिलाकर उसे शात करती हू।" यो कहकर माता ने बड़े प्रेम से बुआ के बच्चे को गोद मे लिया और दूध पिलाया। बच्चे को पेटभर माता का दूध पीकर सतोष हुआ और वह कुछ ही देर मे हँसने खेलने लगा।

बहन के विवाह में माता अपने बच्चे को भले ही घड़ी भर रोने देती; किन्तु बुआ के बच्चे को पहले दूध पिलाकर शांत करती थी। बच्चो को और

चाहिए ही क्या ? माता का मीठा दूध पेटभर मिल जाने के वाद तो वे राजा ही वन जाते है ! इस प्रकार वुआ के बच्चे को रोता देखते ही मेरी माता तत्काल उसे गोद मे उठा लेती और दूध पिलाने लगती। उसने कभी इस विषय में अप्रसन्नता का एक शब्द तक मुँह से नही निकाला । वरन् इसमे उसे परम-धन्यता ही प्रतीत होती और वह इसीमे परम सुख एवं सतोष मानती।

मेरी माता कभी-कभी इस घटना को सुनाते हुए कहती, "बेटा श्याम ! अपने पास जो कुछ हो, वह दूसरो को दे कर उनके आँसू पोछना और हँसाना चाहिए, उन्हे सुखी और सतुष्ट करना चाहिए। इस आनंद से बढ़-कर ससार में दूसरा आनन्द नही हो सकता। अरे, अपने वच्चे को तो सभी खिलाते-पिलाते और प्यार करते है; किन्तु जो दूसरे के वच्चो का लाड़-प्यार करे और उतने ही प्रेम से करे, वही सच्चा और ससार मे श्रेष्ठ महा-पुरुष है।"

---

४ मूक पुष्प

"बलवत ! तूने रोटी खा ली या नही ? चलता है न आश्रम मे ?" शिवराम ने पूछा।

"माँ ! दे तो जल्दी से रोटी। कही उधर कहानी शुरू न हो जाय !" वलवता अपनी माता से जल्दी करने लगा।

"जा, नही देती ! रोज-रोज काहे की कहानी सुनता है । जव देखो तभी कहानी के लिए जल्दी मचाता रहता है। जा, भूखा ही चला जा ! नही तो आकर खा लेना रोटी !" इस प्रकार झल्लाकर उसकी माता ने उत्तर दिया।

यह सुन वलवता सचमुच भूखा ही चल दिया। उसे रोटी की अपेक्षा कहानी ही अधिक प्रिय जान पडी। उसके पेट को रोटी की चाह थी; किन्तु हृदय तो श्यामू की वातो से ही तृप्त हो सकता था।

बलवत और शिवराम जल्दी से चल दिये। मार्ग मे ठोकर लगने पर भी शिवराम को उसका भान नही हुआ। उनके कान तो आश्रम मे होने-वाले "बोलो वन्सीधर की जय। श्यामसुन्दर हरिहर की जय" की ओर लगे हुए थे। जब वे दोनो आश्रम मे पहुँचे तब प्रार्थना समाप्ति के श्लोक बोले जा रहे थे —

'अहिंसा सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन॥
सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी स्पर्श-भावना।
ये एकादश धारेगे, नम्रत्वे, व्रत निश्चये॥'

श्यामू ने कहना आरंभ किया.

आज मै फूलो की कहानी सुनाऊंगा। बचपन मे मुझे फूलो का बडा चाव था। फूलो-सरीखी पवित्र और सुदर वस्तु ससार मे दूसरी कोई भी नही हो सकती। पृथ्वी पर के फूलो और आकाशस्थ तारो ने मेरे जीवन पर अनेक प्रकार से प्रभाव डाला है। मेरे पिता को भी फूलो का बडा चाव था। पूजा के लिए उन्हे हमेशा यथेच्छ पुष्पो की आवश्यकता होती थी। गुलाब, चमेली, मोगरा, जसौधी, कनेर आदि अनेक प्रकार के फूलो के पोधे हमारे खेत पर थे। मेरे पिता गणेशजी के अनन्य भक्त थे, अतएव प्रति दिन वे हरी दूब की २१ जूडियाँ गणेशजी को चढाते थे। सूखी या कुम्हिलाई हुई अथवा छोटी रहजाने वाली दूब उन्होने कभी गणेशजी को नही चढाई। कितनी ही दूर क्यो न जाना पडे, किन्तु वे जब लाते तब हरीकच्छ, गुच्छेदार और लबी दूब के अकुर ही लाते थे। वे कहा करते "अरे, जब देवता को सीधी सादी दुर्वा ही चढानी है, तो वह भी क्यो अच्छी न लाई जाय?" अपने पिता की विरासत मे मैने फूलो की धुन् अवश्य पाई, किन्तु फूलो से प्रेम करना तो माता ने ही सिखाया।

मै फूल लेने सवेरे जल्दी से चल देता था। हमारे गाँव मे वकुल (मौरश्री) के अनेक वृक्ष थे। इसके पुष्प वडे ही सुन्दर और सुगन्धित होते है। उनमे मधु भी होता है। वे पुष्प छोटे-छोटे मोती जैसे जान पडते ह;

अथवा कोई यदि चाहे तो उन्हे छोटे-छोटे बटन भी कह सकता है। मैं टोकरियाँ भर-भरकर ये मौरश्री के पुष्प घर लाया करता था। सवेरे खूब फूल इकठ्ठे कर लेता और दस बजे पाठशाला से आते ही उनके हार बनाता था। पिताजी उन हारो (मालाओ) को मदिर मे ले जाकर देवमूर्ति के गले मे पहना देते थे। इस प्रकार सवेरे नित्य-प्रति मै बकुल के मोती जैसे पुष्प एकत्र करता और शाम को गुलबाँस के। किन्तु शाम को इन-गुलाबासी-फूलो के लिए पाठशाला से छूटते ही मै दौड़कर खेतपर पहुँच जाता था। कभी-कभी मै दूसरो के घर जाकर उनके पौधो पर से भी फूल चुन लाता था। क्योकि उन्हे इनकी विशेष आवश्यकता नही रहती थी। फूलो के प्रति प्रेम है ही किसे ? देवपूजा भी कौन करता है ? देहपूजा के ही तो सब अनुयायी हो रहे है। फूल तोडकर कोई तो उसे रेट भरे नाक में ठूसने लगता है और कोई पसीने भरे बालो मे खोस लेता है! किन्तु यथार्थ मे यदि पूजा के लिए फूल तोडने ही हो तो थोडे-से तोडना चाहिए; नही तो उन्हे पौधे की ही शोभा बढाने देना चाहिए। वहाँ भी वे देवता पर ही चढे हुए रहते है।

इस लिए अब मै किसी भी पौधे परसे फूल नही तोड सकता। क्योकि वह मुझे परमेश्वर की रसमयी सुन्दर मूर्ति-सा जान पड़ता है! किन्तु बाल्यावस्था मे भी मै केवल देवपूजा के लिए ही फूल तोडता था। गुलबाँस के फूलो के लिए लड़के-लडकियो मे झगड़े भी होते रहते थे। यह फूल बहुत ही सुन्दर और सुकुमार होता है। इसकी डंडी लंबी, पतली और कोमल होती है, तथा उसके सिरे पर छोटा-सा मणि या काले रग का गोल बीज होता है। ये फूल अनेक रगो मे फूलते है। इनके लाल, गुलाबी, पीले, केसरिया, सफेद और बसती आदि अनेक भेद होते है। गुलबाँस के मणि, काले मणि, बहुत ही सुन्दर दिखाई देते हैं। मेरी माता भी तुलसी के आँगन मे बैठकर इन फूलो की माला बनाया करती थी। खासकर गुलबाँस के फूलो की माला तो उन फूलो की लबी डडी को ही एक दूसरे मे गूँथकर बना ली जाती। उसमे सुई-धागे की जरूरत ही नही पड़ती थी। उन मालाओ के भी अनेक भेद होते है, और उन्हे तोड़े की माला या दुहेरी माला आदि अनेक रूपो मे स्त्रियाँ गूँथा करती है।

उस दिन रविवार था। वैसे तो प्रति दिन पाठशाला से छुट्टी मिलते ही हम सब फूल चुनने चले जाते और स्लेट-बस्ता आदि घर रखकर जो पहले दौडता हुआ वहाँ पहुँच जाता, उसी को अधिक फूल हाथ लग सकते थे; किन्तु रविवार को कौन कब जायगा इसका कुछ भी निश्चय नही था। इससे पहले वाले रविवार को लडको ने मेरे लिए एक भी फूल बाकी नही छोडा था। इसी लिए उस दिन मैने निश्चय कर लिया कि आज मै ही सब फूल चुन लाऊ। किन्तु इसके लिए जल्दी जाकर कलिया ही तोड लाने की योजना ठीक मालूम हुई। क्योकि गुलबाँस के फूल चार बजने पर खिलने लगते और शाम तक पूरी तरह खिल जाते है। किन्तु मैने फूल खिलन के पहले ही उन्हे तोड लाने का निश्चय कर लिया।

कडाके की धूप रहने पर भी मै घर से निकल पडा। एक बडा-सा तौलिया साथ ले लिया था। उस समय यही कोई तीन बजे होगे। सर्व प्रथम मैने अपने पडौसी मास्टर साहब और गोविन्द शास्त्री के पिछवाडे वाले गुलबाँस के पौधो की कलिया तोडी। इन कलियो को कोकण-प्रदेश मे 'घुबे' कहते है। मैने उन पौधो पर के सारे ही घुबे तोड लिये। इसके बाद घर आकर ताँबे के पात्र मे पानी भर कर उसमे वे सब कलिया डाल दी।

शाम को माता ने पूछा "क्यो श्यामू, आज फूल लेने नही गया? पिछले रविवार की तरह देर से जाने पर एक भी फूल न मिल सकेगा और तब तू रोता रह जायगा। माला के लिए न हुए तो हानि नही, परन्तु सध्या समय की धूप-आरती के लिए तो कुछ फूल ले आ!"

"परन्तु मै तो कभी से ले आया हू; क्या तू माला गूँथेगी?" मैने पूछा।

इसपर माता ने कहा "अच्छा, तो कहा रखे है फूल! यही ले आ। मै यहा तुलसी के पास बैठ जाती हू, जिससे घर मे व्यर्थ कूडा न होने पावे।"

मै वह ताम्रपात्र लेने गया। किन्तु उस समय तक भी कलियाँ अच्छी तरह खिली नही थी; यह देखकर मै एकदम निराश हो गया। फिर भी मैने पुष्प-पात्र मे रखकर उन्हे माता के सामने रख दिया।

"अरे, यह क्या? इनमे से तो पानी टपक रहा है! मालूम होता है सब कलियाँ ही तोड़ लाया था। तभी तो ये अच्छी तरह खिली नही।

श्यामू ! इन्हे पौधे पर अच्छी तरह खिलने तो देता ! ऐसा क्या पेटार्थी की तरह जल्दी से कलियो पर ही टूट पड़ा। " इस प्रकार माता मुझे समझा ही रही थी कि तव तक मास्टर साहव और शास्त्रीजी के घर के सव लडके-लड़की आ पहुँचे।

आते ही मनी ने कहा "तुम्हारा श्यामू सव फूल तोड लाया। हमारे लिए इसने एक भी फूल नही रहने दिया।"

और इसके वाद तत्काल ही वापू कहने लगा "क्यो रे श्याम ! चोर की तरह तू कव जाकर ये सव फूल तोड़ लाया ? "

इसपर मैंने कड़क् कर कहा "इसमे चोर की तरह क्या हुआ ? क्या मै हमेशा तुम्हारे यहा फूल लेने नही आता ? "

" परन्तु हमेशा तो हम सव साथ रहते है ! "

" तो क्या, पिछले रविवार को देर हो जाने पर तुम लोगो ने मेरे लिए एक भी फूल रहने दिया था ? "

यह सुन मनी ने कहां " पर, मै तो अपनी टोकरी मे से तुझे फूल दे ही रही थी, तू ही तो झुझलाकर चला गया। और यह कह गया कि 'तुम लोग मेरे लिए क्यो नही ठहरे ! अच्छी वात है, मै भी देख लूगा।' सो वह वदला तूने आज इस रूप मे चुकाया है, क्यो ? "

मेरी माता इन सव वातो को चुपचाप सुन रही थी। उसने शान्त-भाव से कहा " मनी, वापू ! यह लो तुम्हारे लिए फूल। अव फिर कभी श्याम ऐसा नही करेगा। क्यो श्यामू, नहीं करेगा नँ ? "

इस प्रकार उन्हे समझाकर माता ने सब फूल दे दिये।

इसपर भोले छोटू ने कहा "श्यामू भैया, रोज की तरह शाम को फूल लेने अवश्य आते रहना, समझे ! ऐसा न हो कि तुम रुठकर वैठ जाओ। वोलो अभी चलते हो क्या ? हम अभी 'ऑख मिचौनी धप्पामार' या 'इलायची डिव्वा आया, क्या क्या चीज लाया' इनमे से कोई खेल खेल खेलेगे ! वोलो, क्या कहते हो ? "

इस पर माता ने कहा "अरे, अव तो देर हो गई है। कल खेलना !" यह सुन सव वच्चे चले गये। किन्तु मेरा चेहरा एकदम उतर गया। माता ने कहा " श्यामू ! दूसरे के घर से विना पूछे इस प्रकार कभी फूल नही

लाना चाहिए। इसके लिए पहले घरवालो से पूछ लेना चाहिए। यदि पहले भी पहुँच जाय तो उनको पुकार लेना चाहिए। किन्तु सब से बुरी बात है इस प्रकार मूक (बिना खिले) पुष्प तोड़कर लाना! फूलो के लिए तू अधीर तो हो गया, परतु तेरे पल्ले क्या पडा? इसी लिए फिर कहती हूँ कि, फूलो को वृक्ष या पौधे पर अच्छी तरह खिलने देना चाहिए। बाहर के पानी मे कलियो को कितनी ही देर क्यो न रख जाय, तो भी वे अच्छी तरह नही खिलती। क्योकि जैसा मा के दूध से बच्चा पुष्ट होता है, वैसा ऊपरी दूध से नही हो सकता। घर के साधारण अन्न से शरीर जितना पुष्ट हो सकता है, उतना भोजनालय के घी-दूध से भी नही हो सकता। पौधे या वृक्ष भी एक प्रकार से फूलो की माता के समान ही होते है। वे कलियो को जीवन-रस पिलाते रहते है और उनके मुखचन्द्र को विकसित देखकर गद्‌गद हो जाते है। उन (वृक्षो) की गोद में रह कर ही कलियाँ अच्छी तरह खिलती है। इस लिए फूल अच्छी तरह खिल जाय तभी उनको देव-पूजा के लिए लाना चाहिए। अपने देवता को यदि दोचार फूल कम भी मिले तो हानि नही, क्योकि छोटू के घर भी तो वे देवता को ही चढाये जायँगे। कही भी जायँ, वे पहुँचते तो देवता के ही पास है नँ! यह नही सोचना चाहिए कि अपने ही घर के देवताओ के लिए सब फूल मिल जायँ! यह बात देवता को भी कभी पसद नही होगी। देव-पूजा मे तो सब को भाग लेने देना चाहिए। यदि भक्ति-भाव से उन्हे एक ही फूल चढाया जाय तो वे प्रसन्न हो सकते है। किन्तु वह फूल अच्छी तरह खिला हुआ होना चाहिए।

मित्रो! इस प्रकार असावधानी से तोडी हुई मूक (बद—कच्ची) कलियो के लिये माता को ही बुरा लग सकता है। जैसे माता अपने छोट बच्चो को गोद मे खिलाती और घर मे पाल-पोसकर बाद मे उन्हे ससार की सेवा के लिए दे डालती है; ठीक उसी तरह वृक्ष भी फूलो को जीवन-रस पिलाकर विकसित करते और रस एव गध-मय बनाकर विश्वभर की पूजा के लिए अर्पण करने को तैयार रहते है। किन्तु अधखिली या कच्ची कलियाँ तोड लेनें से वे पूरी तरह नही खिल पाती। इसी प्रकार अधूरे कामो का भी न तो विकास हो सकता है और न फल ही मिल सकता है।

ससार मे अधूरा कुछ भी ठीक नही कहा जा सकता। इस लिए जो कुछ भी किया जाय, वह ठीक तरह से और यथासाग पूरा किया जाय। देर हो जाय तो भी हानि नही। किन्तु कुछ भी उलटा-सीधा कर डालने से तो कुछ न करना ही अच्छा है। इसी लिए मेरी माता मुझ से कहा करती "श्याम! कच्ची (मूक) कलियो को कभी मत तोडना, समझे! उन्हे फूलने के लिए अवसर देना चाहिए, उन्हे फूलकर अपना उल्हास व्यक्त करने देना चाहिए।"

---

५ पुण्यात्मा यशवन्त

"उस दिन शनिवार था और एकादशी भी थी," इस प्रकार श्यामू ने अपनी कहानी का श्रीगणेश किया।

इसपर शिवराम ने कहा "जरा ठहरो भाई, बलवत को आ जाने दो। कल वह बेचारा रोटी न खाकर भूखा ही आ गया था।"

"लो, वह आही गया। आ, बलवत। इधर मेरे पास बैठ!" यो कहकर गोविन्द ने उसे अपने पास बैठाया।

श्याम ने फिर कहना आरभ किया वे वर्सात् के दिन थे। कोंकण-प्रदेश मे हमेशा ही मूसलधार वर्षा होती है। उस समय जहा-तहा पानी के नाले जोरो से बहने लग जाते है। ऐसी ही वर्षा मे एक दिन सिर पर पत्तो का छाता लगाये हमें सर्दी से काँपते हुए पाठशाला मे जाना पड़ा। उस समय तक कोकण-प्रदेश मे नये छातो का विशेष प्रचार नही हो पाया था। किन्तु इरली (पत्तो की बनी छतरी) बहुत सुन्दर होती थी। मेरा छोटा भाई कुछ अस्वस्थ-सा था, अतएव वह पढने नही गया। दादा और मैं, दोनो ही साथ-साथ स्कूल गये।

हम पढने चले तो गये; किन्तु इधर घर पर यशवत का दर्द एकदम बढ गया। वह पिछले दो दिन से नालगुद रोग (गुदासवधी रोग) से पीडित था, किन्तु वह बीमारी अब दूर हो चुकी थी। आज तो दूसरा ही

दर्द उठ खड़ा हुआ था । सवेरे ही से उसके पेट मे दर्द होने लगा और दो पहर को वह बहुत बढ गया । उसका पेट फूलने लगा और टट्टी-पेशाव दोनो ही बद हो गये ! गॉव मे डॉक्टर कहा से आता और एनिमा भी कैसे मिल सकता था ? इसी लिए घरू इलाज चल रहा था । हमारा नौकर गोविन्द पाठशाला मे हमे बुलाने के लिए आया, क्योकि घर पर यशवन्त हमे "भैया ! दादा !" पुकार-पुकार कर याद कर रहा था ।

जब पाठशाला से हम घर पहुँचे तो वहा बडी भीड़ हो रही थी । गाँव के कुछ वैद्य-हकीम भी आ गये थे । उनमे पीताम्बर दास और काशीनाथजी को मै पहचानता था । छोटा भाई दर्द के मारे इधर से उधर लोट रहा था । पेट फूलता जाने पर भी उसे जोरो की प्यास लग रही थी । किन्तु उसे पानी नही दिया जा रहा था । इसी लिए वह लुढकता हुआ पानी के बर्तन की ओर जाता, और घरवाले फिरे उसे पकडकर वहा से अलग ले जाते थे ।

उस समय वह कोई छह वर्ष का होगा । पिछले दिन ही माता उसपर क्रुद्ध हुई थी । क्योकि आगन मे चने की दाल सूखने के लिए फैलाई थी । इस लिए जब बकरी आकर दाल खाने लगी तो यशवत ने उसे भगाया । कन्तु बकरी ने दाल मे मुँह मारकर उसे बिखेर दिया था, इस लिए यशवन्त उसे समेट कर इकट्ठी कर रहा था । इतने ही में दादी ने उसे देखा और चिल्लाकर कहा "दाल खा रहा है रे चोर ! और फिर किसी को मालूम न होने देने के लिए समेटकर ठीक कर रहा है; क्यो ? बहुत होशियार हो गया है रे !"

"नही दादी, मै दाल नही खा रहा था । तू व्यर्थ ही मुझ पर दोष लगाती है ।" इस प्रकार रुआसा हो कर यशवन्त ने कहा ।

उस समय माता जोड़ो के दर्द (गठिया) से घर मे बीमार पडी थी । वह चल-फिर नही सकती थी, क्योकि बहुत ही निर्बल हो गई थी । हमेशा वह कोठरी मे पडी रहती थी । अत जब यशवन्त घर मे माँ के पास गया तो वह भी उस पर नाराज हुई, और बोली "क्योंरे ! तू चुरा कर दाल खा रहा था ? तुझे कितनी बार कहा कि किसी वस्तु को हाथ मत लगाया कर ! किन्तु तू नहीं मानता, क्यो ?"

"नहीं माँ, मैं ईश्वर की सौगन्ध खा कर कहता हू कि मैंने दाल नही खाई! क्यो व्यर्थ के लिए तुम सब लोग मुझ पर झूठा दोष लगाते हो।" यो कहता हुआ यशवत बाहर जाकर आम के पेड़ के नीचे बैठ रोने लगा।

पिछले दिन ही यह घटना हुई थी; किन्तु आज तो वह मृत्यु के द्वार पर पडा हुआ था। सत्य की परीक्षा मृत्यु के दरवार मे ही हुआ करती है। तब क्या यशवन्त भी वही अपने अपराध का निर्णय कराने जा रहा था? उसके दिल को ऐसी चोट लगी थी?

यशवन्त के बचने की कोई आशा नही रही। नौ बजे के लगभग तो उसका दर्द बहुत ही वढ गया। उसने अन्यन्त क्षीण स्वर मे कहा "माँ! कहां है माँ? मुझे माँ के पास ले चलो।"

यह सुनते ही माँ ने कहा "यही हू बेटा! तू मेरे पास ही तो है!"

निर्वल और रोगिणी माता ने मरणोन्मुख पुत्र यशवन्त का सिर अपनी गोद मे ले लिया। उसके नेत्रो मे आँसू आगये!

यशवन्त ने अत्यन्त क्षीण-स्वर मे कहा "माँ, मेरा सिर नीचे रख दे, तेरे पॉव दुखने लगेगे। तेरे सारे जोडो मे ही दर्द होता है।"

माता का हृदय भर आया और उसने आर्द्र-स्वर मे कहा "नही बेटा, मेरे जोडो मे कोई दर्द नहीं होता, मुझे कुछ नही हो सकता। बच्चे के कष्ट के सामने माँ का दर्द नही टिक सकता। बच्चे को अच्छा करने के लिए माता के शरीर मे न जाने कहां से शक्ति आ जाती है। मेरी जाव तो नही दुखती; किन्तु तेरे ही शरीर मे मेरी ये सूखी हड्डियाँ चुभती होगी। घबरा मत बेटा, तू अच्छा हो जायगा; तेरे पेट का दर्द मिट जायगा।"

माता की ओर अन्तिम प्रेम-भरी दृष्टि से देखते हुए उसका हाथ अपने हाथ मे ले कर यशवन्त ने कहा "माँ, तू तो वस मेरे ही पास बैठी रह। मेरे लिए और कुछ नही चाहिए। तेरा यहा वैठना ही वस है।"

यशवन्त का एक-एक शब्द माता के ही साथ-साथ हम सब के हृदयो को चीर रहा था। उसी समय माता को पिछले दिन की घटना का स्मरण हो आया। तत्काल ही उसकी आँखो मे आँसू झलकने लगे। हृदय भर आया

और उसने एकदम उस मरणोन्मुख बालक का मुँह चूम लिया। उस मलीन होते हुए मुख-कमल पर उसने अश्रुसिचन किया। उसी क्षण यशवन्त ने भी प्रेमपूर्ण नेत्रो को खोलकर अत्यत भक्ति और स्नेह-पूर्वक माता की ओर देखा।

इसके थोडी ही देर बाद हमारा यशवन्त 'राम–राम' कहता हुआ हमे छोडकर राम की शरणमे चला गया।

माता हमेशा कहा करती "यशवत पुण्यात्मा था, इसी लिए तो वह एकादशी के दिन भगवान के घर गया।" बचपन मे हम आकाश की ओर देखते हुए एक दूसरे से कहा करते,"देखो, वह छोटा-सा तारा यशवन्त का होगा!" क्योकि पिताजी हमे यह बतलाया करते थे कि आकाश मे पुण्यात्मा पुरुषो के तारे होते है। और यह बात हमे भी यथार्थ जान पडती थी।

आज यशवन्त भी नही रहा और माता भी नही। किन्तु उस मृत्यु के समय का उनका वह प्रेम अमर है। ऐसा अच्छा भैया पाकर और ऐसी महान् माता का पुत्र कहला कर मै आज भी अपने को धन्य समझता हू। मै उनके नख की भी बराबरी नही कर सकता। उनके सामने तो मै अत्यत पामर, तुच्छ जीव भी सिद्ध नही होता। किन्तु इतने पर भी यदि मुझ मे कोई अच्छाई या प्रेम का अश हो, तो उसका सारा श्रेय उस मातृनिष्ठ और सत्वनिष्ठ भैया एव बच्चो के शील-स्वभाव की रक्षा करनेवाली माता को ही मिल सकता है। ऐसी माता और ऐसा भाई पाने के लिए पूर्व सुकृत की आवश्यकता होती है। विपुलता और सुकृत की पूजी पास मे होनी चाहिए। जिस प्रकार सत्सगति प्राप्त होने मे पुण्य-शीलता आवश्यक होती है, उसी प्रकार महान् माता-पिता और श्रेष्ठ बधु-भगिनी की प्राप्ति भी पुण्य-बल मे ही हो सकती है। किन्तु मै नही समझता कि मेरी पूजी मे ऐसा कोई पुण्य-बल सचित था। मै तो इसे उस परमात्मा की कृपा का ही उपहार समझता हू।"

---

६ मथुरिया

आज श्याम की तबियत कुछ ठीक नहीं थी; इस लिए राम ने कहा " भैया, यदि आज कहानी नहीं भी सुनाई तो कोई हानि नहीं, तुम जरा चुपचाप लेटे रहो, तो अच्छा होगा। "

" अरे, माता का स्मरण तो मेरे लिए सकल दुःखहारी अमृत के तुल्य है। जिस प्रकार भक्त को अपने इष्ट-देव का स्मरण होते ही उसके समस्त क्लेश दूर हो जाते है, वैसे ही माता का स्मरण होने पर मेरे सब दुख-दर्द चले जाते है। आज मुझे माता की एक बहुत ही सुन्दर घटना का स्मरण हो आया है, बैठ जाओ सब। " यो कहकर श्याम ने शुरूआत की —

मित्रो! मनुष्य भले ही गरीब हो और प्रकट मे वह दरिद्री भी हो, तो भी उसे मन से तो श्रीमान् होना ही चाहिए। संसार के अधिक-तर दुःख हृदय की दरिद्रता के ही कारण उत्पन्न हुए है। भारतवर्ष की बाहरी सम्पत्ति भले ही दुनिया के लोग छीन ले, किन्तु भारतीय-हृदय की महान् और अटूट सम्पत्ति यदि बनी रहे, तो इतना ही हमारे लिए बहुत है।

हमारे यहा मथुरी नाम की एक धान कूटनेवाली औरत थी। कोकण के प्रत्येक घर मे बडे-बडे ऊँखल गडे रहते है और प्राय प्रत्येक घर मे धान भी भरा होता है। इसी धान को कूट-खाडकर चावल तैयार किया जाता है। इस काम को करनेवाली स्त्रियाँ 'धनकुट्टी' या " धान कूटने वाली " कहलाती है। प्रत्येक घर की धनकुट्टियाँ पहले से ही निश्चित रहती है। और वे वश-परम्परागत यह काम करती चली आती हैं। मानो यह उनकी अधिकार-वृत्ति या जागीर ही न हो। हमारे घर की भी मथुरी, गजरी और लक्ष्मी आदि दो-तीन धान कूटनेवाली औरते थी। मथुरी का लडका शिवराम भी हमारे ही घर काम करता था। वह छोटा-सा नौकर यही कोई दस-बारह वर्ष का होगा।

मथुरी गर्मी के दिनो मे हमे पके हुए काले करौंदे, आडू आदि लाकर दिया करती थी। पके हुए काले-स्याह करौदे गरीब कोकण-प्रदेश के लिए अगूर जैसे-ही हो सकते है। इसी प्रकार आडू भी बडा मधुर फल होता है

इसका रंग जर्दिया होता है और भीतर से मोटे बीज निकलते हैं। मथुरी के घर के आँगन में ही आडू का पेड था; और उसके फल बहुत मीठे होते थे। गरीब आदमी सदैव ही उपकृत—अहसानमन्द—होते हैं; और कभी फूल-पत्ते देकर तो कभी फल आदि भेंट करके वे कृतज्ञता प्रकट किया करते हैं। कृतज्ञता-बुद्धि या उपकार मानने जैसी महान् और श्रेष्ठ वृत्ति इस पृथ्वी पर दूसरी नही हो सकती।

"क्योरी गजरी, आज मथुरी धान कूटने नही आई? और तेरे साथ यह दूसरी कौन है?" माता ने पूछा। इसपर गजरी ने उत्तर दिया "उसे बुखार आगया है, इस लिए उसने इस चन्द्री को भेजा है।"

स्वत यदि काम पर न जा सके, तो अपने बदले दूसरे किसी को भेज कर उस काम मे रुकावट न पड़ने देने की कर्तव्य-बुद्धि उस गरीब मजदूरनी मे भी थी। "तो क्या उसे बहुत जोर का बुखार आया है?" माता ने फिर पूछा। इतने ही में मथुरी का लड़का शिवराम आगया और कहने लगा "अम्माजी, मेरी माँ को बुखार आगया है, जब वह अच्छी हो जायगी तब काम करने आवेगी। इस लिए तब तक उसकी जगह यह चन्द्री आकर काम करेगी!" माता ने कहा "अच्छी बात है"। उधर शिवराम अपना काम करने चल दिया। खाडनेवाली मजदूरनियो ने धान तौलकर ले लिया और माता कपड़े लेकर धोने के लिए कुए पर चली गई। दो-पहर को बारह–एक बजे तक हमारे घर सब लोग भोजन से निपटे; और इसके बाद शिवराम भी पूछकर घर जाने लगा। माता ने पूछा "तूने ढोरो को पानी पिला दिया? और गोबर आदि भी साफ कर दिया या नही? नही तो, पशु पैरो से रोदकर उसीमें बैठ जायँगे! सबके लिए घास भी डाल देना, समझा!"

इसपर शिवराम ने कहा "सब कुछ करदिया, अब मैं घर जाता हू।" माता ने कहा "ठहर शिवराम, जरा यहाँ खडा रह।" यो कहकर वह भीतर गई और केले के पत्ते पर गरम भात एव नीबू के अचार का एक टुकड़ा तथा छोटी-सी पतीली मे छाछ लाकर उसे देते हुए कहा "ले, यह तेरी माँ के लिए है। कहना, झटपट अच्छी हो जा।" इसके बाद माता घर में चली गई। शिवराम ने भी उस पत्ते-सहित भात को रूमाल मे बाध लिया और हात मे पतीली उठाकर वह घर चला गया।

सध्या हो चुकी थी। स्कूल की छुट्टी भी होगई थी। हम सब घर पर उस समय गिन्ती की मुहारनी (पहाड़ो की आवृत्ति) बोल रहे थे। माता ने गजरी से कहा "अरी, उस समई को भूसे से माजकर अच्छी तरह साफ चमकीली कर दे।" हमारे घर मे रात को देवता के सम्मुख अखड नदादीप जलता था। धान कूटने की जिस की पारी हो, उस दिन उसीको समई भी साफ करनी पड़ती थी। धान की भूसी से पोछने पर समई बिल्-कुल साफ हो जाती है। इधर गजरी समई साफ करने लगी, उधर माता ने चावल का तौल किया। इसके बाद टूटे हुए चावलो की कनी और सूप से फटकते हुए जो बारीक भूसा निकाला, वह उन मजदूरनियो को दिया गया और वे घर चल दी।

शिवराम ने वृक्षो को पानी सीचा और भैसो का दूध दुहा। माता ने गाय का दूध निकाला और इसके बाद शिवराम घर जाने को तैयार हुआ। इधर माता ने मुझे शाम को 'घास की चाय' लाने को कहा था; सो वह चाय और तुलसी के पास मिट्टी मे गडे हुए अद्रक का एक टुकड़ा निकाल कर उसने शिवराम को देते हुए कहा "शिवराम! ले, यह घास की चाय और अद्रक का टुकडा! घर ले जा कर इनका काढ़ा तैयार कर लेना। उसमे चार दाने धनिये के और एक पीपल का पत्ता भी डाल देना और गरम-गरम तेरी माँ को पिला देना। इसके बाद अच्छी तरह कम्बल उढ़ा-कर सुलाने से पसीना आकर उसका शरीर हल्का हो जायगा। अरे, जरा ठहर, दो टुकड़े मिश्री के भी लेता जा।" यो कहकर माता फिर घर मे गई और दो टुकडे मिश्री के ला दिये। शिवराम यह सब सामग्री लेकर घर चल दिया

घर पर मथुरी ने पूछा "शिवराम! यह सब किसने दिया?" उसने उत्तर मे कहा "श्याम भैया की माँ ने!"

मथुरी बोली "वह तो साक्षात देवी है, माँ लक्ष्मी का अवतार है। उन्हे सब की चिन्ता है।" इसके बाद उसने सोते समय वह काढा पिया; किन्तु फिर भी उसे पसीना नहीं आया और न उसका बुखार ही उतरा। सवेरे फिर यथा समय शिवराम काम पर आ पहुँचा। माता ने उससे पूछा 'क्योरे! कैसी है तेरी माँ की तबियत?"

वह बोला "सिर बहुत दुखता है, दिन-भर उसे बडी बेचैनी रही। बेचारी को रात-भर नीन्द नही आई और वह सिर को हाथ से थामे हुए बैठी है।"

"अच्छा, आज दो-पहर को तू जब घर जायगा, तो मै सोठ और साभर का सीग दूगी। उन्हे घिसकर अच्छी तरह लेप करने से जरूर सिर का दर्द मिट जायगा"। माता ने कहा।

इसके बाद सब लोग अपने-अपने काम मे जुट गये। शिवराम गौशाला झाड-बुहारकर गोबर के उपले थापने लगा। माता शाक-पत्रादि ठीक करने लगी।

दो-पहर को फिर शिवराम थोडा-सा गरम भात और नीबू के अचार का टुकडा लेकर घर चला। साथ ही उसे सौठ और साभर का सीग भी माता ने लाकर दे दिया था। कहते है कि साभर का सीग दवाई की तरह होता है। सोठ, बच और साभर का सीग तीनो को घिसकर चदन की तरह कपाल पर गाढा लेप करने से सिर-दर्द दूर हो जाता है। इसी प्रकार शरीर मे अन्य किसी जगह दर्द होने पर भी इसका लेप करते है।

कुछ दिन के बाद मथुरी अच्छी हो गई, किन्तु वह बहुत ही दुबली और कमजोर हो गई थी। फिर भी गरीब बेचारी काम पर आने लगी। वह कोई पद्रह-बीस दिन काम पर नही आ सकी थी। इस लिए उसे आते देखकर माता ने कहा "मथुरी! तू कितनी दुबली हो गई! अरी, तुझसे धान कैसे कूटा जायगा?"

मथुरी ने कहा "यो ही उठते-बैठते अपना काम पूरा करूगी, माँ! इतने दिन बिस्तर पर पडे-पडे खाया! कबतक ऐसे पडी रहती? बच गई, यही बहुत हुआ। अब चलने-फिरने लगी हू तो आठ-चार दिन मे फिर काम करने लायक मजबूत हो जाऊगी। तुम्हारे जैसी माता की माया-ममता रहने पर हमारे लिए किस बात की कमी है!"

माता ने कहा "अरी, यह सब परमेश्वर की ही कृपा है। तुम-हम कहा तक एक-दूसरी का साथ दे सकती है! खैर। देख, बच्चो के लिए भात तैयार हो चुका है, इस लिए उनके साथ तू भी दो-चार ग्रास

खा ले, जिससे शरीर में थोड़ी-सी शक्ति आ जाय। इसके बाद दो-पहर को भी यही पेटभर खाना, समझी!'

इस प्रकार माता की आज्ञानुसार उस दिन मथुरी ने भी हमारे साथ ही सवेरे का नाश्ता (अल्पाहार) किया। उस समय उसके मुँह पर कितनी कृतज्ञता प्रकट हो रही थी!

वह मथुरी अब बूढ़ी हो गई है। मैं जब कभी कोकण में घर जाता हूँ तो अवश्य ही मथुरी से मिलता हूँ। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, किन्तु फिर भी उसमें एक प्रकार की प्रसन्नता और वात्सल्य-भावना प्रत्यक्ष दिखलाई देती है। मैं जाकर जब उसे प्रणाम करता हूँ तो वह कहने लगती है "अरे, यह क्या करता है श्याम भैया!" उसे मेरी माता का स्मरण हो आता है और वह कहने लगती है "श्याम, यदि आज तेरी माँ होती तो, कभी तुझे इस तरह अकेला मस्त न रहने देती। तेरा विवाह करती और घर-गृहस्थी का ढंग जमाती। परन्तु बेचारी बीच में ही चली गई। सभी-पर उसका प्रेम था।"

ऐसी प्रेममयी दयालु माता मुझे प्राप्त हुई थी।

---

७ कीमती आँसू

"बचपन से ही मुझे दोनो समय स्नान करने की आदत है।" इन शब्दों के साथ श्यामू ने कहानी की शुरुआत की। शाम को मैं खेलने जाया करता था। लुका-छिपी, लंगड़-घुच्ची, पकड़ा-पाटी, इलायची डिब्बा, खो-खो, आँख-मिचौनी, थप्पामार, आदि अनेक प्रकार के खेल हम खेला करते। खेलकर आने के बाद मैं स्नान करता। माता मेरे लिए पानी गर्म रख देती। वह गगाल (स्नान के लिए, जल-पात्र) में पानी भर कर मेरे हाथ-पाँव तथा शरीर को मलकर साफ कर देती थी। इस प्रकार दोनों वक्त स्नान करने की रीति बहुत अच्छी होती है। रात को सोने से पहले स्नान हो जाने से शरीर स्वच्छ, निर्मल और

हल्का रहता है। सोने से पहले हम जो प्रार्थना करते हैं वह मन का स्नान है। इस प्रकार शरीर और मन दोनो स्वच्छ होने से कैसी गहरी नींद आती है, इसे अनुभवी ही जान सकते हैं।

एक दिन मैं सदैव की तरह खेलकर घर वापस आया। कुर्ता खोलकर मैंने चोटी मे तेल-भरी उगली लगाई और स्नान की शिला पर जा बैठा। स्नान के लिए आँगन में एक बहुत बडी शिला रखी गई थी, और वहा से स्नान का सब पानी तुरई (सब्जी) की बेलो मे चला जाता था। सायकाल के स्नान के लिए अधिक पानी की आवश्यकता नही होती। माता ने मेरे शरीर को मलकर बिल्कुल साफ कर दिया था। बचा हुआ पानी मैं अपने शरीर पर डालने लगा। पानी समाप्त होते ही मैंने माता को पुकारना आरभ किया।

"माँ, मेरा शरीर पोछ दे! पानी सब समाप्त हो गया। ठण्ड लग रही है। झटपट शरीर पोछ दे।" इस प्रकार मैं चिल्ला रहा था। उस समय तक टॉवेल या पंचे (अगोछे) आदि का हमारे गाव मे विशेष प्रचार नही हुआ था। घर के बडे-बूढे धोती का ही एक सिरा निचोड कर उससे बदन पोछ लेते थे। बच्चो के बदन पोछने के लिए एक-आध पुराना कपडा काम मे लाया जाता था। किन्तु सध्या-समय तो माता प्राय अपनी साडी के ही पल्ले से मेरा बदन पोछ दिया करती था।

मेरी आवाज सुनकर माता आई और उसने अपनी साडी के पल्ले से ही मेरा बदन पोछते हुए कहा "जाकर झट देवता पर के फूल हटा दे।" इसपर मैंने कहा "किन्तु मेरे पैर के तलवे तो अभी गीले ही है, उनपर मिट्टी नही लग जायगी? इस लिए पहले मेरे तलवे पोछ।"

यह सुन माता ने झल्लाकर कहा "पॉव के तलवे गीले होने से क्या बिगड़ गया! उन्हे मैं किस चीज से पोछू!"

"तेरा पल्ला इस शिला पर फैलाकर रख, तो उसपर मैं अपने पॉव रखकर पोछ लूगा और कूदकर घर में चला जाऊगा। मुझे गीले पैर मे मिट्टी लगने देना अच्छा नही लगता। फैला, झटपट तेरी साडी का पल्ला।" इस प्रकार मैं हठ करने लगा।

"श्यामू, तू बडा हठी है। एक-एक नई बात न जाने कहा से सीख

कर आता है। ला, रख पाँव और जा घर में!" यो कहकर माता ने अपना अचल पसार दिया; और मैंने उसपर अच्छी तरह पाँव रखकर तलवे पोछ लिये। इसके वाद मैं कूदकर घर मे चला गया। माता की साडी भीग जाने की मुझे कोई चिंता ही नही थी, और वह भी उसे उसी समय कैसे वदल सकती थी? किन्तु फिर भी अपने पुत्र की—पैर के तलवे में मिट्टी न लगने देने की—इच्छा-हठ-पूरी करने के लिए उसने अपनी साडी का पल्ला गीला कर लिया। वह वेचारी अपने पुत्र के लिए क्या न करती? कितना कष्ट न सहती और क्या न दे डालती?

मैं घर में जाकर देवता पर के फूल उठाकर नीचे रखने लगा। इतने मे माँ नीराजन (आरती) ले कर आई और कहने लगी "श्याम, तू पाँव के तले में मिट्टी न लगने देने की जितनी सावधानी रखता है, उतनी ही मन को मैल न लगने देने का भी तो ध्यान रख, और देवता से प्रार्थना कर कि वह तुझे शुद्ध बुद्धि दे।"

मित्रो! ये कितने महत्त्वपूर्ण शब्द है। हम अपने शरीर और कपडो को शुद्ध रखने लिए कितना प्रयत्न करते और कहा तक की चिंता रखते है! कपड़े धोने के लिए धोवी हैं, वूट-जूते साफ रखने के लिए, पालिश करने वाले हैं और शरीर पर लगाने के लिए खस एव चन्दन के सावुन मौजूद है। ये सारे ही प्रयत्न शरीर और कपड़े को मैल न लगने देने के लिए है, किन्तु मन को मैला न होने देने के लिए हम कहा तक सावधान रहते है? देवालय को कलई से पोतकर या रग लगा कर हम सुदर वनाते है, परतु बेचारे देवता की सुध भी नही लेते! क्या मन मैला हो जाने पर भी हम कभी दुखी होते या रोते हैं? अपने मन के मैला होने पर रोनेवाला भाग्यवान विरला ही होता है। वे श्रेष्ठ आँसू इस ससार मे नही दिखाई देते। अन्न-वस्त्र या नौकरी-चाकरी अथवा दुख-सकट, हानि, मृत्यु आदि के लिए तो सव रोते है और इन सब बातो के लिए, उनकी आँखो में आँसू के कुण्ड-से भरे रहते है, किन्तु कभी कोई इस वात के लिए भी विकल होता है कि 'मैं अभी तक शुद्ध—निष्पाप—नही हुआ?' अथवा यह सोचकर भी कितने आदमियो को दुःख होता है कि अभी तक हमारा मन दुर्वासनाओ के मैल मे डूवा हुआ है। मीरावाई ने कहा है:—

"अँसुवन जल सीच-सींच प्रेम बेलि बोई।"

अर्थात् आँसुओ के जल से सीच कर मैने प्रेम-ईश्वर-भक्ति की बेल को बढाया है। महासाध्वी मीरा का यह पद मै कितनी ही बार गुनगुनाता रहा हू, और उस समय प्राय मेरे अश्रु से परिपूर्ण हृदय मे भक्तिरूपी कमल उत्पन्न होता रहा है!

---

८ पवित्र पत्तल

कोकण के अधिकाश घरो मे पत्तल पर भोजन करने की प्रथा है। सादगी मे भी अत्यधिक सुन्दरता और स्वच्छता होती है। थालियो मे प्रति दो-तीन महिने मे कलई करवाइये, और धीरे-धीरे उसे अपने पेट मे पहुँचा दीजिये? कितनी गदगी है? मेरे पिता को भी पत्तल पर भोजन करना ही अधिक प्रिय था। इसमे स्त्रियो की झझट भी कम हो जाती है। अर्थात् उन्हे जूठी थालियाँ माजकर साफ नही करनी पडती। पिताजी सबेरे ही खेत पर चले जाते और इधर-उधर से घूमकर देखरेख करने के बाद दस बजे के लगभग वापस घर लौट आते थे। घर आते समय वे फूल-बेलपत्र एव पत्तल के लिए पत्ते भी ले आते थे। इसी प्रकार यदि कोई किसान लाकर दे देता, या खेत की मेन्ड पर लगी होती तो शाकभाजी भी ले आते थे। इसके बाद स्नान कर के वे सध्या-वन्दन के लिए बैठते। इधर तबतक हम पाठशाला से आकर पत्तल-दोने बनाने लग जाते थे। ताजे पत्तो की ताजी हरी पत्तल और उन्ही पत्तो के दोने! मै अच्छी पत्तल बनाना नही जानता था और दोने बनाना तो मुझे बिल्कुल आता ही न था। हमारे कोकण मे कहावत है—"पत्रावळी आधी द्रोणा। तो जावई शहाणा" अर्थात् पत्तल बनाने से पहले जिसे उससे भी कठिन दोने बनाना आ जाता है, वही जामाता चतुर कहलाता है। घर मे सभी पत्तले बनाते थे। कभी-कभी दादी कह देती कि हरएक को पाच-पाच पत्तले बनाना होगा और उसी हिसाब से वह पत्ते बाँट देती थी। कई प्रकार के पत्तो की

पत्तले बनाई जाती थी। वड, पलास, कुटन, वावड, भोकर (कोकण के वृक्ष-विशेष) के गोल पत्तो एव सफेद चपे के पत्ते तक की पत्तले बनाई जाती थी। श्राद्ध के लिए महुए के पत्ते की पत्तले भी कोई कोई विशेष रूप से काम मे लाते हैं। चातुर्मास (चौमासे) मे स्त्रिया आम या कटहल के पत्तो की पत्तल पर भोजन करने का भी व्रत लेती है। इस प्रकार कोकण मे पत्तल को धार्मिक-सस्कृति मे स्थान दिया गया है। वृक्षो और उनके उपयोगी पत्तो की यह कितनी महत्ता है! हा, तो एक दिन माता ने मुझे चेतावनी दी कि 'श्याम, तू पत्तल वनाना सीख ले, नही तो आज तुझे खाने को नही मिलेगा।'

इसपर मैंने गुस्से मे कह दिया "मुझे पत्तल बनाना नही आता और न मैं वनाऊगा ही।" मेरी वहन उन दिनो मायके मे आई हुई थी। वह वोली "श्याम! इधर आ, मै तुझे सिखलाती हू। अरे! इसमे कौन कठिन काम है!'

"मुझे नही सीखना है, जा!" यो कह कर मैंने उद्दडता से उस प्रेममयी वहन को उत्तर दे डाला। मेरी जीजी वहुत सुन्दर पत्तल वनाया करती थी। इसी प्रकार मेरे पिता भी गाँव-भर मे पत्तल-दोने वनाने के लिए प्रसिद्ध थे। हमारे गॉव मे रामभट्टजी नाम के एक व्यक्ति थे, उनके लिए तो यह कहावत ही प्रसिद्ध हो गई थी कि, जो भी पत्ता हाथ मे आ जाय उसी को लेकर वे सीक से टोचने लग जाते है। वे इस वात का विचार नही करते कि, हमेशा अच्छा ही पत्ता होना चाहिए, अथवा अमुक पत्ता यहा अच्छा नही लगेगा। कैसा ही पत्ता क्यो न हो, रामभट्टजी की पत्तल मे उसे अवश्य स्थान मिल जाता था। किसी के यहां, यज्ञोपवीत या विवाह अथवा अन्य किसी अवसर पर भोजनादि का आयोजन होता तो गाँव के लोग उन्ही के घर एकत्रित होकर पत्तले वनाया करते। इस प्रकार गपशप लडाते हुए परस्पर सहयोग से काम पूरा कर लिया जाता था। किन्तु अव तो यह प्रथा ही लुप्त होती जा रही है। इस प्रकार यह पत्तल वनाने की परम्परा मेरे लिए सीखना परम आवश्यक था, किन्तु मैं तो था हठीला, इस लिए उस दिन मैंने किसी से भी पत्तल वनाना नही सीखा।

किन्तु मेरा हठ देखकर माता ने भी मुझे भोजन नही परोसा। क्योकि-

उस दिन यह निश्चय हो चुका था कि 'हर एक आदमी अपनी-अपनी बनाई पत्तल लेकर बैठे!' इस लिए मेरी कोई पत्तल न होने से सब लोग हँसने लगे। किन्तु जीजी मेरे लिए अदला-बदली करने लगी। उसने कहा "कल बनावेगा पत्तल, क्यों श्याम! कल अवश्य मुझ से सीख लेना हो भैया!" इसके बाद वह माता से कहने लगी "माँ, वह कल सीख लेगा, आज इस पत्तल पर ही उसे परोस दे।" किन्तु मैं तो इतने पर भी एरड की तरह ही फूल रहा था। इस लिए गुस्से मे यों कहता हुआ बाहर चल दिया कि "जाओ, मैं पत्तल नही बनाऊंगा। मत परोसो मुझे भोजन! मेरे जूते को भी गरज नही पड़ी है! मैं योही भूखा रह जाऊगा।" किन्तु पेट में तो भूख जोरो से लग रही थी। फिर भी मैं इस प्रतीक्षा मे था कि देखू और भी कोई मुझे समझाने के लिए आता है या नही? अत मे मेरी वही अच्छी जीजी, फिर मेरे पास आई और कहने लगी "श्याम भैया! चल, भोजन कर ले! कल सुसराल चली जाने पर मैं फिर थोड़े ही तुझे समझाने आऊगी! उठ, चल! छोटी-सी तीन पत्ते की पत्तल बनाले और उसपर भात रखवाकर भोजन करने बैठ जा। कोकण मे तीन पत्ते की पत्तल ठिकोला, चार पत्तेवाली चौफुली और पलाश के बडे गोल पत्तो की बनी हुई गोल पत्तल घेरदार कहलाती है। यदि पत्ता अच्छा और बड़ा होता तो वही हमारे लिए पत्तल का काम दे देता और उस एक ही पत्ते पर हम बच्चे भोजन कर लेते थ। किन्तु पिताजी को ऐसी छोटी पत्तले पसद नही थी। वे तो हमेशा अच्छी, बड़ी और गोल घेरेदार पत्तल पर ही भोजन करते और कहा करते कि "जगल मे पत्तो की क्या कमी है; जितने चाहिए मिल सकते हैं। तब फिर क्यो इसमें काट-छाट की जाय? शास्त्र मे भी कहा है 'विस्तीर्णं पात्रे भोजनम्' अर्थात् भोजन के लिए बडा पात्र या पत्तल होना चाहिए।"

जीजी के उन मर्म-पूर्ण शब्दो से मैं पसीजा और सोचने लगा "सच है, बेचारी सुसराल चली जाने पर कहा रूठे हुए भाई को मनाने आवेगी! दो दिन के लिए तो आई है, इतने पर भी मैं अबतक उसके साथ ठीक तरह से नही बरता।" मुझे अपने हठ पर बहुत बुरा लगा और आँखो मे आँसू आ गये। किन्तु उसी क्षण जीजी ने लाकर मेरे हाथ

में दो पत्ते दिये और कहा " इस एक को नीचे पेंदे मे लगा दे । " मैंने हाथ मे एक सीक ली और उसका एक-एक टुकड़ा उन दोनो पत्तो के कोने पर लगा दिया । किन्तु वह सीक बहुत लचीली होने से टूटती नही थी, इस लिए जीजी ने दूसरी सीक देते हुए कहा " श्याम ! ले यह दूसरी सीक! यह अच्छी है । " इसके बाद जैसे-तैसे मैंने तीन पत्तो मे छोटी-मोटी सींके लगा कर पत्तल तैयार की और उसे लेकर घर मे गया । जाते ही मैंने माता से कहा " ले यह मेरी पत्तल! अब तो परोस मुझे ! "

इसपर माता ने पूछा " सो तो ठीक, परंतु तूने हाथ-पाँव भी धोये ? " मैंने कहा " कभी से धो लिये है । मै कोई गन्दा लड़का थोडे ही हू । "

" हा, गन्दा तो नही है, परतु सू-सू तो कर रहा है! जा, पहले नाक अच्छी तरह साफ कर के आ! तब तक मै पत्तल परोसती हू " माता ने कहा ।

मै बाहर जाकर नाक साफ कर आया और हाथ धो कर भोजन करने लगा। उस समय माता ने कहा " अच्छी तरह पेट भरकर खा ले ! व्यर्थ ही हठ करता है! देख, वह पड़ौसी वासुदेव, कितना छोटा है; परन्तु ऐसी सुन्दर पत्तल बनाता है कि देखते ही रहो। "

किन्तु मै गुस्से के आवेश मे जल्दी भोजन कर रहा था । मैंने वह पत्तल भी जल्दी मे बनाई थी, इस लिए उसकी एक सीक निकल कर भात के साथ मेरे गले मे अटक गई। मै घबराया और जैसे-तैसे उसे बाहर निकालते हुए गुस्से मे ही माता से कहा " सीक के टुकडे तक गले मे चले जाते है; फिर भी कहती है, तू ही पत्तल बना कर ला। मुझे बनाना नही आता, किन्तु फिर भी कहती है तुझे ही बनानी पड़ेगी! "

पर माता ने उसी प्रकार उत्तर दिया " हमारे गले मे तो नही जाती, तूने ला-पर्वाही से सीक लगाई होगी, उसीका यह दंड तुझे भोगना पड़ा । जबतक तू अच्छी पत्तल नही बनाने लगेगा, तबतक मै तेरी ही बनाई हुई पत्तल पर भोजन परोसूगी, दूसरी पर कदापि नही । "

फलत. दूसरे ही दिन से मैंने अच्छी पत्तल बनाने का निश्चय किया और यह देखने लगा कि जीजी किस प्रकार पत्तल बनाती है । दो पत्तों मे कभी

तह डालनी हो या मोडकर कोना बनाना हो, तो सीक किस प्रकार लगाती है। क्योकि कई पत्तलो मे मोडकर पत्ते लगाने पडते है। अत यदि किसी को अपने से कोई बात अधिक अच्छी तरह आती हो, तो अवश्य उसके पास जाकर वह बात सीख लेनी चाहिए। इसमे व्यर्थ अभिमान नही करना चाहिए। क्योकि प्रत्येक काम अच्छी तरह होना उचित है। मन मे हमेशा यही विचार रहना चाहिए कि, मै जो कुछ करूगा, वह अच्छा ही करूगा। भले ही वह पत्तल बनाने का काम हो या ग्रथ-लेखन का, अथवा झाडू लगाने का हो या दूकान सजाने का। मेरे पिता मे यह गुण विद्यमान था। वे जब धुले हुए कपडो को बास पर सूखने के लिए डालते तो उन्हे भी एक सीध मे व्यवस्थित-रूप से ही डालते थे। एक का सिरा ठीक दूसरे से मिला हुआ रहता था। हमारे गाँव मे एक गरीब गृहस्थ रहते थे। वे बेचारे एक धनिक के घर धुले हुए कपडे सूखने के लिए बाँस पर फैलाने का ही काम करते थे। इस काम मे भी वे इतने कुशल थे कि उनकी कला देखते ही बनती थी। मेरे पिताजी भी शाक-भाजी (सब्जी) की क्यारियो मे जब पानी सीचते तो बहुत ही पतली धार बना कर। वे बहुत ही सावधानी से टोटी पर हाथ रख-कर पानी सीचते थे। साराश, प्रत्येक काम मे व्यवस्थितता और सुन्दरता का ध्यान रखने की शिक्षा उनके आचरण से प्रत्यक्ष मिलती थी।

मेरी माता ने भी मुझे प्रत्येक बात मन लगाकर करना सिखाया और मुझ से प्रत्येक काम अच्छी तरह करवाया। वह कहा करती "देख, श्याम! अपनी बनाई हुई पत्तल किसी के भी सामने रखी जाय, यदि वह ठीक तरह से बनी हुई होगी, तो उसपर भोजन करनेवाले के गले मे कभी सीक उखड कर नही जा सकती! इस लिए पत्तल बनाते समय मन मे यह सोचते रहना चाहिए कि "इसपर कोई भी भोजन क्यो न करे, वह अच्छी तरह खा सकेगा। न तो उसके गले मे सीक अटकेगी और न दो पत्तो के बीच से अन्न ही नीचे गिरेगा"। इस प्रकार माता के उपदेश से मैने अच्छी पत्तल बनाना सीखा।

एक दिन माता ने जान बूझकर मेरे हाथ की बनाई हुई पत्तल पिताजी के सामने रक्खी। उसे देखकर पिताजी ने पूछा "क्योरी चन्द्रा! क्या यह पत्तल तूने बनाई है?" जीजी ने कहा "नही, पिताजी वह श्याम ने

वनाई है।" पिताजी बोले " इतनी अच्छी पत्तल वह कबसे बनाने लगा ?" इसपर माता ने कहा " उस दिन खाने को नही दिया और कह दिया था कि, जब तक अच्छी तरह पत्तल नही वनाने लगेगा तव तक तेरी पत्तल पर तुझी को परोसा जायगा। इस ताकीद के करण यह अव इतनी अच्छी पत्तले वनाना सीख गया है।"

यह सुन मैंने माता से कहा " परंतु अव उस पिछली वात को फिर से क्यो दोहराती है ? पिताजी, अब तो मुझे अच्छी पत्तल वनाना आता है नँ ?"

"नही, अभी वहुत अच्छी तो नही वन पाई है, और तुझे दोने वनाना भी अभी कहा आता है ?" पिताजी ने कहा।

"अव तो मैने दोने वनाना भी सीख लिया है। आज ही कुए पर मै जीजी का वनाया हुआ एक दोना ले गया और उसे देख कर बनाने लगा, तो थोड़ी देर के प्रयत्न से मुझे दोना वनाना भी आगया। भोजन हो जाने पर मै आपको वह दोना भी दिखाऊगा"। इस प्रकार उत्साह-पूर्वक मैंने उत्तर दिया।

अपनी वनाई हुई पत्तल की प्रशसा होने से मै फूल गया था, इस लिए भोजन से उठते ही मैने पिताजी को वह दोना दिखलाया। उसे देखकर पिताजी वोले "अच्छा वना है, परन्तु यहा तू भूल गया। आमने-सामने के कोने पर वरावर मोड़ होना चाहिए।" यो कहकर उन्होने मेरा वनाया हुआ दोना सुधार दिया; और वह सुधरा हुआ दोना मैंने माता को दिखाया।

माता ने प्रेमपूर्वक कहा "भला, अव तुझपर कौन नाराज हो सकता है ? व्यर्थ हठ करता है और कहता है, मुझे यह नही आ सकता, वह नही आ सकता! अरे, जिसे ईश्वर ने हाथपाँव दिये है, वह सव कुछ कर सकता है। और जिसको थोडी-सी वुद्धि दी हो, उसे सव कुछ आ सकता है! वस, केवल मन मे निश्चय करने की ही देर है। चन्द्रा! इसे एक जर्दालू लाकर दे! पत्तल सीखने का इनाम!" इसपर माता के कहे अनुसार जीजी ने घर के भंडरिये मे से निकाल कर एक जर्दालू दिया। अहा! वह कितना मीठा था! कदाचित् समुद्र-मंथन के पश्चात् देवताओ को अमृत भी उतना मीठा नहीं लगा होगा। मिठास किसी वस्तु में नही, वरन् उसकी प्राप्ति के लिए किये गये परिश्रम मे होती है। कर्म मे ही आनंद होता है।

---

९ क्षमा-प्रार्थना

बाहर चाँदी की तरह चाँदनी फैली हुई थी। मंदिर की छत पर सब लोग बैठे हुए थे। कुछ दूर नदी का प्रवाह भी चाँदी की तरह चमक रहा था। नदी विश्राम करना तो जानती ही नहीं, जानती है केवल दिनरात बहते रहना। उसकी प्रार्थना—कर्ममय प्रार्थना—चौबीसो घण्टे चलती रहती है। कर्म करते समय वह कभी गीत गुनगुनाती और कभी हँसती-खेलती है। कभी गंभीर होती और कभी क्रोध से लाल भी हो जाती है। नदी एक सुन्दर और गंभीर पहेली के समान है। श्याम उस नदी की ओर ही देख रहा था। प्राकृतिक सौन्दर्य उसे पागल बना देता था। कभी रम्य सूर्यास्त देख कर उसे एक प्रकार की समाधी-सी लग जाती; और उसी अवस्था में वह गुनगुनाने लगता:—

पर्दे की ओट रहकर, जादूगरी दिखाता।
रचता है रंगलीला, सब कुछ तुही सिखाता॥
इस विश्व-सृष्टि का भी तूही महा चितेरा।
कौशल दिखा रही है तव तूलिका घनेरा॥
कबतक उसे विलोकूं, आँखें न तृप्त होती।
सद्भावना हृदय की, उमड़ी है स्वत्व खोती॥
तेरी अपार माया, कवि कब तलक बखाने।
ब्रह्मा, सरस्वती, शिव, नारद भी हार मानें॥*

इस समय भी कदाचित् उसे इसी प्रकार की समाधि लगी थी। किन्तु राम ने उसके पास जाकर कहा "श्याम भैया! सब लोग आगये, प्रार्थना के लिए चलते हो नँ? सब तुम्हारी ही राह देख रहे हैं।" यह

---

* राहोनि गुप्त मार्गे। करितोसि जादुगारी।
रचितोसि रंगलीला। प्रभु तूं महान् चितारी॥
किति पाहु पाहुं पाहू। तृप्ती न रे बघून।
शत भावनांनि हृदय। येई उचंबळून॥

सुनते ही श्याम ने चौक कर कहा "हां-हां, चलो। मुझे इधर आकाश की ओर ताकने मे इस बात का ध्यान ही नही रहा।" इसके बाद वह आकर अपनी जगह पर बैठ गया। प्रार्थना यथा-नियम समाप्त होने पर कहानी आरम्भ हुई :—

मित्रो ! प्रत्येक बात मे संस्कृति की भावना रहती ही है। प्रत्येक जाति की एक खास संस्कृति होती है, और सब की मिलकर राष्ट्रीय-सस्कृति निर्माण होती है। प्रत्येक रीति-रिवाज मे जो संस्कृति की सुगन्ध समाई रहती है, उसे पहचानना चाहिए। अपने अच्छे रीति-रिवाजो की ओर हमे ध्यान देना चाहिए। कोई अनुचित प्रथा चल पड़ी हो तो उसे छोड़ना भी चाहिए। किन्तु सस्कृति की वृद्धि और रक्षा करने वाली प्रथाओ को कभी नष्ट न होने देना चाहिए। हमारे देश और समाज के प्रत्येक आचार मे कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य होती है।

हमारे घर नित्यप्रति दो पहर के भोजन के समय प्रत्येक के लिए एक-आध श्लोक सुनाने की प्रथा थी। भोजन के अन्त मे यदि श्लोक न सुनाया गया; तो पिताजी नाराज हो जाते थे। वेही हमे अच्छे-अच्छे श्लोक सिखाते भी थे। मोरोपन्त, वामन पण्डित आदि कवियो के सुन्दर श्लोक और पद्य-काव्यादि जो उन्हे याद थे; वे सब उन्होने हमे सिखाना आरंभ कर दिया था। इसी प्रकार अन्य कई स्तोत्र एवं भूपाली (रागिनी) मे गायी जानेवाली स्तुति, आरती, प्रभाती आदि भी वे हमें सिखलाते रहते थे। प्रातःकाल होते ही पिताजी आकर हमे जगाते, और वही हमारे बिस्तरे पर बैठकर श्लोकादि सिखाने लग जाते थे। हम भी वही रजाइयाँ ओढकर बैठ जाते। मेरे बचपन मे हमारे घर मे ब्लैंकिट का प्रवेश नही हुआ था। गद्दी, पिछौड़ी या माता की पुरानी साड़ी की चौतही बिछाई जाती और रजाई ओढ़ने मे काम आती थी। पिताजी हमे गणेश, गंगा आदि देवताओ की स्तुतियाँ सिखाया करते थे। "कानीं कुण्डलांची (की) प्रभा। चंद्र-सूर्य जैसे नभा" यह चरण मुझे आज भी मधुर एवं प्रिय लगता है। इसी प्रकार वे "वक्रतुंड महाकाय०, शाताकार०, वसुदेव सुतं देव०, कृष्णाय वासुदेवाय०" आदि सस्कृत श्लोक और "गंगा गोदा यमुना, कृष्णानुजा सुभद्रा, कुंकुममण्डित जनके, देवी म्हणे (कहे) अनार्या,

ये रथावरि झणी यदुराया (आओ रथ पर झट यदुराया), असा येता देखे (ऐसा आते देखे), मारावे मजला (मारे जो मुझको), अगवक्र अधरी धरी पावा (वाकी छवि अधरो धर वसी।) इत्यादि आर्याएँ स्तुति-रूप मे सिखाते थे। ये सब श्लोक हमे बचपन मे ही कण्ठस्थ हो गये थे। प्रतिदिन हमे एक-आध नया श्लोक वे अवश्य सिखाते; और उसे केवल कण्ठस्थ ही नही करा लेते, बरन् उसका अर्थ भी बतलाते थे। वे पूछते "सौमित्र कौन है ?" और यदि इसका अर्थ हम न वतला सकते; तो वे फिर पूछते "लक्ष्मण की माता कौन थी ?" हम कहते "सुमित्रा"। तब वे फिर पूछते "तो फिर सौमित्र कौन हुआ ?" इसपर हम अनुमान से कह देते "लक्ष्मण"। फिर तो हमे तत्काल ही शावाशी मिल जाती थी। इस प्रकार सौमित्र का अर्थ बतला देने पर वे राधेय, कौन्तेय, सौभद्र आदि का अर्थ पूछते। इस प्रकार ठीक शिक्षा-शास्त्रज्ञ की तरह हमे वे सब वाते सिखलाया करते थे। पिताजी की इस शिक्षा-पद्धति के कारण मैं सस्कृत के सैकडो शब्दो का अर्थ समझने लगा था।

इधर पिताजी प्रात काल शिक्षा देते और उधर सायकाल को हमे माता से शिक्षा मिलती। वह हमे दीपक की प्रार्थना सिखलाते हुए कहती-
दिव्या दिव्या दीपोत्कार। कानीं कुण्डलें मोतीहार। दिव्या देखून नमस्कार॥ (दीये दीये दीपाकार। कानों कुण्डल मोतीहार। दिया देखकर नमस्कार॥) अथवा "**तिळांचे तेल कापसाची वात। दिवा तेवे मध्यान रात॥ दिवा तेवे देवापाशीं। माझा नमस्कार सर्व देवांच्या पायांपाशीं॥ (तिल का तैल रुई की वाती। दिया जले तू आधी राती। दीपक जले देव के पास। वंदन कर हरिपद का दास॥)** पिता-माता की इस प्रेममयी शिक्षा के फल-स्वरूप हमे भी ये सब बाते सीखने की अभिरुचि रहती। इसी लिए यदि दो पहर को भोजन के समय पिताजी से सीखे बिना स्वयस्फूर्ति से याद किया हुआ कोई श्लोक हम सुनाते; तो वे हमे प्रसन्नता-पूर्वक शावाशी देते थे। इससे हमारा उत्साह बढता और हमे उत्तेजन मिलता था। गाँव में कही विवाह या जनेऊ के उपलक्ष मे कोई भोजन की ज्योनार होती; या किसी उत्सव की समाराधना की जाती; तो उसमें भी सब लड़के श्लोक सुनाते। जो अच्छा श्लोक सुनाता; उसकी सब लोग प्रशंसा करते। इस प्रकार

घर मे और वाहर सर्वत्र ही हमे श्लोक याद करने के लिए उत्तेजन मिलता रहता था। भोजन करते समय सुदर काव्य एव आनन्द-प्रद विचारो से युक्त श्लोकादि कानो पर पड़ने से यही प्रतीत होता; मानो, वह ऋषितर्पण ही हो रहा है।

गाँव में कहीं ज्योनार हुई कि हमारे घर निमन्त्रण आता ही था। उस समय यदि पिताजी भी हमारे साथ होते; तो वे गर्दन या आँखो से सकेत कर के हमे श्लोक सुनाने की आज्ञा देते, और हम तत्काल श्लोक वोलने लग जाते थे। क्योकि वैसा न करने पर घर जाते ही पिताजी की नाराजी का भय रहता था। यद्यपि मुझे अच्छे और वहुत-से श्लोक याद थे; किन्तु फिर भी भोजन की पक्ति मे वोलते हुए मुझे लज्जा प्रतीत होती थी। क्योकि प्रथम तो मेरी आवाज ही अधिक अच्छी नही थी, दूसरे मुझमे सभा-ढीट वृत्ति भी नही थी। वचपन से ही मैं समाज और उसके द्वारा होने वाली आलोचना से डरता था। मैं शर्मीला जीव हूं। आज भी मैं मानव-समाज में विशेष-रूप से घुल-मिल नही सका हूं। जरा-जरासी वातो से हक्का-वक्का हो जाता हू। इसी लिए श्लोक सुनाते समय यदि कोई हँस देता; या टीका-टिप्पणी करने लगता तो मुझे वहुत वुरा लगता था। किन्तु पिताजी के मौजूद रहने पर तो चुपचाप श्लोक सुनाना ही पड़ना, क्योकि उसके सिवाय कोई उपाय ही नही था।

उस दिन गंगाधरजी ओक के यहां समाराधना (व्राह्मण-भोजन) थी। उनसे हमारा अधिक घरोपा होने के कारण हमारे यहा भी निमन्त्रण आया। पिताजी उस दिन किसी दूसरे गॉव चले गये थे। अत. जो भी दूसरे के घर भोजन के लिए जाने मे मुझे वचपन से ही शर्म लगती है; किन्तु फिर भी उस दिन तो किसी न किसी को जाना ही चाहिए था। घर से किसी की हाजिरी वहां होनी आवश्यक थी, अन्यथा वह असभ्यता और अभिमान-युक्त ठसक समझी जाती। इससे उनके चित्त को चोट लगती। फलत पिताजी के घर न होने से मुझे भोजन के लिए जाना पड़ा।

दो पहर को स्नान कर के तैयार रहने की सूचना मिली, और इसके वाद मैं भोजन के लिए गया। वहा जाकर देखा कि रागोली की (सफेदे और गुलाल की) सुदर पक्तियाँ वनी हुई है; और उनमे केल के हरे-हरे पत्ते,

रखे हुए है। मै एक सिरेवाली पत्तल पर जाकर बैठ गया। अगरबत्तियो की सुगध चारो ओर महँक रही थी। गर्मी के दिन होने से पानी के लिए बड़े-बड़े पीतल के हाडो पर बाहर से गीले कपडे लपेटकर भीतर खस डाला गया था। प्रत्येक घर से निमत्रित व्यक्तियो के आने, या न आ सके हो तो उसके कारण की पूछताछ हुई। साथ ही जो आने वाला होते हुए भी नही आया था, उसके घर किसी लडके को हाथ में आचमनी सहित पचपात्र देकर बुलाने के लिए भेजा गया। इसके बाद सबके आ जाने पर पत्तलो पर जल-प्रोक्षण किया जाकर हरहर महादेव के घोष के साथ भोजन आरभ हुआ।

मै फुर्ती से भोजन कर ही रहा था कि श्लोक बोलने की शुरूआत हो गई। लडके एक के बाद एक श्लोक बोल रहे थे। किसी-किसी को शाबाशी भी मिलती जाती थी। स्त्रियाँ परोस रही थी। उनमे से यदि किसी का लडका उस पक्ति मे बैठा हुआ भोजन करता होता; तो वह उससे पूछती "क्यो रे, तूने श्लोक सुनाया? यदि न सुनाया हो तो अब सुनाना।" अर्थात् श्लोक सुनाना एक प्रकार का सदाचार और भूषणास्पद गुण माना जाता। चुप देखकर थोडी ही देर के बाद मुझ से भी श्लोक सुनाने का अनुरोध किया जाने लगा। एक बोला "क्यो शाम, तू श्लोक नही सुनाता? तुझे तो बहुत से अच्छे श्लोक आते है। वह 'चेतन्य सुमन०' वाला श्लोक सुना, अथवा 'डिडिम् डिम्मिन् डिम्मिन्०' वाला; या जो तुझे ठीक जान पडे वही सुना दे!" किन्तु मुझे श्लोक सुनाते हुए शर्म लगती और बोलने की हिम्मत नही होती थी। यह देखकर पास बैठे हुए गोविन्द भट्टजी ने कहा "अरे, तू तो छोकरी है बिल्कुल। तभी तो इतना शर्माता है!" किन्तु मैंने यह आक्षेप चुपचाप सुन लिया और दक्षिणा में मिले हुए पैसे को कढी मे डालकर चमकीला बनाने लगा। इस लिए दूसरे के कहने पर मैंने ध्यान ही नहीं दिया। एक लडका पक्ति मे बैठे हुए लोगो का भोजन समाप्त होने से पहले ही उठ खडा हुआ; इस लिए सब ने उसे बुरा-भला कहा। क्योकि बीच मे उठ जाना पक्ति का अपमान करना समझा जाता है।

भोजन समाप्त होने पर सब लोग उठे। मै पान या सुपारी खाता ही न था; क्योकि सुपारी खाने से पिताजी नाराज होते थे। विद्यार्थी के

लिए पान या सुपारी न खाने की प्रथा थी। मैं घर आ पहुँचा। उस दिन शनिवार होने से पाठशाला मे दो पहर की छुट्टी थी। माता ने पूछा "क्यो शाम, भोजन मे क्या पक्वान्न बना था? शाक-भाजी क्या-क्या वनाये गये थे?" इत्यादि। मैंने उसे सब बाते कह सुनाई। तब उसने पूछा "श्लोक भी सुनाया था या नही?" इसका मैं क्या उत्तर देता? एक झूँठ के लिए दूसरी झूँठ बोलनी ही पडती है। एक खराव कदम उठाने पर उसे दबाने के लिए दूसरा उठाना अनिवार्य हो ही जाता है। पाप ही पाप को बढाता रहता है उसकी जड़ पुष्ट करता रहता है। मैंने माता से झूँठ-मूँट कह दिया कि "श्लोक सुनाया था।"। इसपर उसने पूछा "कौनसा सुनाया था? वह लोगो को पसंद आया या नही?" इसपर फिर मैंने फिर झूँठ कह दिया कि "गणेशजी के बाल-स्वरूप वर्णन वाला श्लोक सुनाया था।" क्योकि मेरे पिताजी को वह श्लोक बहुत प्रिय था। और वह है भी मधुर एव भावपूर्ण। अच्छा सुनो, तुम्हे वह श्लोक सुनाता हूं। —

"नेत्री दोन हिरे प्रकाश पसरे अत्यत ते [1]साजिरे।
माथा [2]शेंदुर [3]पाझरे [4]वरि [5]बरे दूर्वाङकुराचे [6]तुरे॥
[7]माझें चित्त [8]विरे मनोरथ पुरे देखोनि[9] चिंता हरे।
गोसावीसुत वासुदेव कवि रे त्या[10] मोरयाला स्मरे॥

मैं माता से ये सब झूँठ बाते कह ही रहा था कि इतने मे पडौस के लडके आ पहुँचे। और लडको का यह स्वभाव होता ही है कि वे एक दूसरे के दोष दिखाकर, या उसके साथ छेड-छाड कर के अथवा झूठी-सच्ची चुगली खाकर घरवालो से उसे पिटवा देते है, और खुद तमाशा देखते है। बस, यही बात उस समय भी हुई। छोटू, वासुदेव और माधव आदि सबने आतेही कहा "यशोदा काकी! आज तुम्हारे श्याम ने श्लोक नही सुनाया। सब लोग इससे आग्रह करते रहे, परतु इसके मुँह से एक अक्षर तक न निकला।" इसके बाद वासुदेव बोला कि "मैंने तो श्याम का ही सिखाया

अर्थः—(१) शुभ्र (२) सिन्दूर (३) लगा हुआ (४) ऊपर (५) अच्छे (६) तुर्रे (७) मेरा (८) विराम पाता है (९) देखकर (१०) उस

हुआ 'सघन गगन छाई मेघमाला निराली' वाला श्लोक कहा और मुझे सब ने शाबाशी दी।" इसी प्रकार गोविंद ने भी अपनी कैफियत सुनाई और नृसिंह भट्टजी से शाबाशी पाने का हाल कहा।

यह सब हाल सुनकर माता ने कहा "क्यो रे श्याम! तूने मुझे धोखा दिया? झूँठ ही कह दिया कि मैंने श्लोक सुनाया था!" वासुदेव बोला "कब सुनाया था रे तूने?" इस पर छोटू ने कहा "अरे, इसने अपने मन मे ही कहा होगा! तब भला वह हमे कैसे सुनाई देता?" माधव बोला, "परंतु देवता ने तो सुना होगा!" इस प्रकार लडके मेरा मजाक करके वहां से चले गये। सचमुच ही यदि देखा जाय; तो लडके एक प्रकार से गाँव के न्यायाधीश का ही काम करते हैं। वे किसी की भी कोई बात छिपने नही देते। उन्हे चाहे तो हम गाँव-भर की बुराइयां चौराहे पर ले आनेवाले समाचार-पत्र या अखबार भी कह सकते हैं।

माता ने फिर कहा "श्याम! पहले तो तूने श्लोक न सुनाकर भूल की; और उसपर फिर झूँठ बोलकर तो तूने और भी भयकर भूल की। जा, अपने इस अपराध के लिए देवता के सामने प्रणाम कर; और प्रतिज्ञा ले कि आज से मैं इस तरह कभी झूँठ नही बोलूगा।" किन्तु फिर भी मैं खंभे की तरह चुपचाप खड़ा था। माता ने फिर जोर से कहा "जा, देवता को प्रणाम कर! नही तो फिर घर आने दे उन्हे; तेरी सब बातें सुनाकर खासी पिटाई कराती हू। बोल्! जाता है या नही?" किन्तु, फिर भी मैं अपनी जगह से नही हिला। मैंने सोचा माँ पिताजी से ये सब बाते नही कहेगी; और भूल जायगी। आज का उसका क्रोध कल कम हो जायगा। किन्तु माता ने फिर उसी नाराजगी के स्वर मे पूछा "क्यो! नही सुनना? अच्छा, तो अब मैं भी तुझ से नही बोलती!"

पिताजी रात को ही गाँव से लौट आये थे। प्रतिदिन की तरह वे प्रात काल हमे उठाने आये; और उन्होने जो भी स्तुति-स्तोत्र सिखलाये थे, वे सब हम उनके साथ बोलते गये। इसके बाद उन्होने मुझ से पूछा "श्याम, कल कौनसा श्लोक सुनाया था रे?" उस समय माता छाछ (मही) बिलो रही थी; और दीवार पर उसकी छाया डोलती हुई दीखती थी। खड़े होकर मही बिलोई जाती है। मथने की डोरी भी कुछ बड़ी थी और रवई

का फूल भी बडा ही था। माता ने एकदम मही विलोना बद कर के कहा "कल पक्ति में श्याम ने श्लोक नही सुनाया; और मुझ से झूँठ मूट-आकर कह दिया कि मैने श्लोक सुनाया था। किन्तु पड़ौस के लडकों ने आकर सच्चा हाल बताया। मै इससे कहती रही कि 'जा, देवता को प्रणाम कर और यह प्रतिज्ञा ले कि मै आज से झूठ नही बोलूगा।' किन्तु फिर भी इसने मेरी एक न सुनी। चुपचाप ही खडा रहा।"

यह सुनते ही पिताजी ने क्रुद्ध होकर कहा "क्यो रे, सच है यह सब? उठ! एकदम खडा हो; और सामने दीवार के पास जा कर बोल्! कल तूने पक्ति मे श्लोक सुनाया था या नही?" पिताजी का क्रोध देखकर मै घबरा गया और रोते हुए बोला "नहीं सुनाया था!"—"तब तू झूठ क्यो बोला? सौ बार तुझे सिखाया गया है कि झूठ नहीं बोलना चाहिए।" क्रोध के ही साथ-साथ पिताजी की आवाज भी ऊची होती जा रही थी। मैने कांपते हुए कहा "अब मैं कभी झूठ नही बोलूगा।" "और वह तुझे देवता को प्रणाम करने के लिए कहती रही; तो भी तूने नही सुना! माता पिता की आज्ञा मानने का उपदेश भूल गया, जान पड़ता है! बहुत इतरा गया है क्यों?" इन शब्दो को सुनते हुए मुझे यही प्रतीत होने लगा कि पिताजी अब मुझे पीटेंगे।

इसी लिए तत्काल ही रोता हुआ माता के पास गया और उसके पैरो पर अपना सिर रख दिया। मेरे गर्म-गर्म आँसू उसके चरणो पर गिरने लगे। मैने कहा "माँ, मै भूला! मुझे क्षमा कर!" उस समय माता बोल तक न सकी, वह तो वात्सल्यता की मूर्ति ही थी। पिघलते हुए हिमखण्ड की तरह मेरी स्थिति देखकर उसे बहुत बुरा लगा। किन्तु फिर भी अपनी भावनाओ को सम्हालते हुए उसने कहा "जा, देवता को प्रणाम कर, और उनसे निवेदन कर कि फिर कभी इस प्रकार झूठ बोलने की दुर्बुद्धि उत्पन्न न हो।" बस, तत्काल ही मै देवता के सामने जा खड़ा हुआ और रोते हुए प्रार्थना कर के मैने उन्हे साष्टाग प्रणाम किया। इसके बाद मै फिर पिताजी के सामने दीवार के पास जाकर खड़ा हो गया।

तब तक पिताजी का क्रोध ठण्डा पड़ चुका था। वे बोले "चल्, इधर आ!' मै उनके पास गया और उन्होने हाथ पकड़ कर मुझे पास

बैठाया। इसके बाद मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले "जा, अब पाठशाला का समय हो गया!" मैंने कहा "आज तो रविवार की छुट्टी है।" इसपर वे बोले "अच्छा, यदि सोना हो तो और कुछ देर सो ले! या चलता है मेरे साथ खेतपर? वहा से पत्तलो के लिए पत्ते ले आवेंगे।" मैंने उनके साथ चलना स्वीकार किया।

पिताजी का स्वभाव बड़ा ही उदार था। उन्होने एकदम ही सारा वातावरण बदल दिया। क्रोध के बादल हट गये और प्रेम का प्रकाश फैल गया। मानो कुछ हुआ ही नही! हम दोनो पिता-पुत्र खेत पर गये। मेरी माता यद्यपि दया और प्रेम की मूर्ति ही थी; तोभी कभी-कभी वह प्रसगानुसार कठोर भी हो जाती थी। किन्तु उसकी कठोरता मे ही सच्चा प्रेम होता था, सच्ची ममता होती थी। इस प्रकार कभी कठोर प्रेम से तो कभी मधुर-प्रेम द्वारा वह इस श्याम का—हम सब का—पालन-पोषण करती थी। कभी वह प्रेम से थपथपाती और कभी क्रोध से धप्पे लगाती। दोनो ही प्रकार से वह मुझे आकार प्रदान करती थी। इस बेडौल और शिथिल लौंदे को मनोहर आकृति मे बदल रही थी। सर्दी और गर्मी दोनों ही से विकास होता है। दिन और रात दोनो के कारण ही वृद्धि होती है। यदि लगातार प्रकाश हो तो भी नाश; और निरंतर सर्दी ही पड़ती रहे तो भी नाश। इसी लिए एक श्लोक मे कहा गया है:—

दिखाय माता अनुराग राग। विकासती बाल-मनोविभाग।
वृक्षादि फूले सहि ताप-शीत। यही सदा विश्व-विकास-रीत॥*

---

* करुनि माता अनुराग राग। विकासवी बाल-मनोविभाग।
फुलें तरु सेवुनि उष्णशीत। जगीं असे हीच विकास रीत॥

१० श्यामा गाय

"बलवंता आया कि नही ! आज मैंने दो पहर को उसे धमकाया था। वह एक गाय को पीट रहा था। गऊ दूसरे की होने पर भी वह देवता तो है ही। जा रे शिवराम; तू बलवंता को उसके घर से बुलाकर ले आ।" इस प्रकार श्याम ने कहा।

इसपर शिवराम ने उत्तर दिया कि, "वह बाहर बैठा हुआ सुन रहा है। उसे भीतर आने मे शर्म लगती है।"

यह सुन श्याम खुद उठकर बाहर गया और उसने बलवंता का हाथ पकड़ा। वह बहुत शर्माया और अपना हाथ छुडाने के लिए प्रयत्न करने लगा। किन्तु श्याम ने कहा "बलवंत, तू मुझे बहुत प्रिय है। इसी लिए तो मैंने तुझे धमकाया ! मुझ पर तुझे इतना गुस्सा आ गया ! अरे, मै तो तेरे लिए भाई की ही तरह हू। चल, आज मैं अपनी श्यामा गाय की कहानी सुनाऊगा।"

इस प्रकार श्याम के प्रेमपूर्वक समझाने से बलवंता चुपचाप प्रार्थना-मंदिर मे आगया। सब लोग श्याम की कहानी सुनने को उत्सुक हो रहे थे, इस लिए उसने कहना आरभ किया :

"हमारे घर एक श्यामा गाय थी। वह आज भी मुझे अपने सामने ही खड़ी दिखाई देती है। लोग उसे देखकर कहा करते कि ऐसी गाय गाँव भर मे दूसरी नही है। और सचमुच ही वह ऐसी गाय थी जिसपर नजर लग जाय। वह ऊची और हृष्ट-पुष्ट तो थीही, साथ ही वह शात और गभीर भी दिखाई देती थी। मेरे पिता का पाँच सेर का लोटा था; वह श्यामा के दूध से भर जाता था। किन्तु कोकण का पाँच सेर खानदेशी सवासेर के बराबर होता है। इतना दूध वह एक बार मे देती थी। उसके स्तन भरे हुए दीखते थे। घर में बहुत सावधानी के साथ उसकी देखरेख की जाती थी।

मेरी माता प्रात.काल उठते ही गौ-शाला मे जा कर; श्यामा गाय को अपने हाथ से घास डालती और तब उसके माथे पर कुकुम लगाकर

उसकी पूछ अपने चेहरे पर फिराती थी। गाय को हिन्दू-संस्कृति मे देवता माना गया है; और इसी लिए उसे गौमाता कहते है। उसे यह महत्ता भी स्त्रियो ने ही प्रदान की है। किन्तु आज सच्ची गो-पूजा का प्रचार नही रहा, केवल मुँह-देखी पूजा रह गई है। दूर से देखते हुए ही देवता को दडवत किया जाता है। पहले जमाने मे यदि दूसरे की गाय अपने आँगन मे आ जाती, तो उसे कोई भी लाठी मारकर हँकाल नहीं देता था, वल्कि उसे रोटी देकर या घास खिलाकर जाने देते थे। किन्तु आज यदि भयभीत होकर भी किसी की गाय आँगन मे आ जाय, तो उसे शरण देने के बदले हम लाठी मारकर वाहर निकाल देते है। दूसरे की गाय को तो जाने ही दीजिये; खद अपने घर की गाय को भी पेट भर घास और समय पर पानी तक नही मिलता। जंगल या गाँव मे उसे जो कुछ मिल जाय, उसीसे वह अपना पेट भर लेती है; और कही भी गन्दा पानी मिल जाय उसे पीकर अपनी प्यास वुझा लेती है। इस प्रकार हमने आज अपनी गौ-माता को भिखारिनी वना दिया है, इसी लिए आज हम भी दर-दर के भिखारी हो रहे हं। जैसी सेवा वैसा फल। गौ-माता की हम जितनी ही अधिक सेवा करेगे उतनी ही हमारे सुख, सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि होगी।

मेरी माता वीच-वीच मे कई वार गौशाला मे जाती और चाँवल का धोवन (पानी) गगाल (जलपात्र) मे भरकर श्यामा को पिलाती। यह धोवन ठण्डा और पौष्टिक होता है। दो-पहर को भोजन के समय एक पत्तल पर देवालय के साधु के लिए और दूसरी पर गौ माता के लिए नैवेद्य (भोजन) रखा जाता था। देवालय का नैवेद्य साधु ले जाता और गाय का भाग उसे खिलाया जाता था। श्यामा का मेरी माता पर बडा प्रेम था। खुद प्रेम कर के दूसरे से प्रेम करवाया जाता है। किसीपर प्रेम करने से वह द्विगुणित होता है। श्यामा मेरी माता को पास आते देखकर प्रसन्न होती और उसे चाटने लगती थी। उसकी गर्दन के नीचेवाले भाग को माता जैसे-जैसे खुजाने लगती, वैसे-वैसे वह अपनी गर्दन ऊपर उठाती चली जाती। माता का शब्द सुनते ही श्यामा रम्भाने लगती। उसका दूध माता ही दुहती थी। वह दूसरे किसीके हाथ से दूध नही देती थी। मानों उसने यह निश्चय कर लिया था कि, जो देगा वही लेगा। दूसरा कोई यदि

उसको दुहने जाता तो वह उसे सूंघती थी। "गंधेन गाव पश्यन्ति" गौएँ गन्ध से मनुष्य को पहचान लेती है। उसके स्तन को हाथ लगते ही वह पहचान लेती थी कि यह हाथ किसका है। माता के सिवाय अन्य किसीके हाथ लगाते ही वह लात मारने लग जाती। वह गाय स्वत्ववती थी, सत्यवती थी और स्वाभिमानिनी थी। प्रेम न करनेवाले को ही वह लात मारती थी। इस प्रकार मानो वह कहती थी कि "रे पापी! मेरे स्तन को हाथ मत लगा! मेरा स्तनपान करने लिए पहले मेरा प्यारा वत्स (बछडा) बनने की योग्यता प्राप्त कर।"

श्यामा को हम भाग्यवान् गऊ समझते थे। मानो वह हमारे घर की शोभा ही न हो! और सचमुच ही वह हमारे घर की देवता थी। वह हमारे परिवार की पवित्रता, प्रेम, दया, सौन्दर्य और स्नेह एवं समृद्धि की साक्षात् प्रतिमा ही थी। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से पशुओ मे पैरो की खुरी का भयकर रोग शुरू हो गया। इस बीमारी मे कोकण प्रदेश मे सैकड़ो पशु, विशेष-कर गाय और बछड़े मर जाते हैं। वे बेचारे पैर पछाड़-पछाड़कर प्राण छोड देते है। पैरो मे घाव होकर उनमे कीडे पडजाते है और दो-एक दिन मे पशु मर जाता है।

हमारी श्यामा को भी इस रोग ने ग्रस लिया। कितने ही इलाज किये, परन्तु वह अच्छी न हो सकी। उसने घास के एक तिनके को भी न छुआ और गर्दन झुकाये पड़ी रही। हमने उसके आरोग्य के लिए घर में मन्त्र-जप भी किया; किन्तु हमारा पुण्य-बल समाप्त हो चुका था। श्यामा हमें छोडकर चली गई। उस दिन मेरी माता ने भोजन नहीं किया; किन्तु हम सबसे उपवास न हो सका। माता को श्यामा के मरने पर कितना दुःख हुआ, यह बतला सकना असम्भव है। जो प्रेम करता है उसीको प्रिय वस्तु के जाने का दुःख मालूम हो सकता है। दूसरे उसे क्या समझेंगे? जहा हमारी श्यामा ने प्राणत्याग किया था, उस स्थान पर मेरी माता कई दिनोतक हल्दी-कुकुम और फूल चढाती रही।

कभी-कभी माता कहने लगती "श्यामा गाय गई और उसीके साथ-साथ तुम्हारे घर का सौभाग्य भी चला गया। सचमुच ही उस दिन से घर मे झगड़े-फिसाद शुरू हो गये। पहले जो घर गाँवभर मे हराभरा

गोकुल-सा दिखाई देता था; उसकी दशा श्यामा की मृत्यु के बाद से लगातार बिगड़ने लगी। मेरी माता का कहना यथार्थ था, और अत्यन्त व्यापक अर्थ में वह आज भी यथार्थ दिखाई दे रहा है। जिस दिन से भारत माता की श्यामा गाय मरी; अथवा जिस दिन से भारतीयों ने गौमाता को दूर किया, उसकी उपेक्षा करना आरम्भ किया, उसी दिन से दु:ख, रोग, दरिद्रता, दीनता और अकाल (दुर्भिक्ष) का परिमाण अधिकाधिक बढ़ने लगा। चर्खा और गऊ ये दोनो ही भारतीय-भाग्य के आराध्य-देवता—आधार-देवता है। अतएव जबतक इन दोनो देवताओ की पूजा फिर से आरम्भ नहीं होगी; तब तक हमारे लिए उद्धार पाने का दूसरा मार्ग नहीं खुल सकता। केवल रास्ता चलते समय बीच में कही गाय मिल जाने पर उसे दाहिनी ओर रखकर हाथ जोड़ने का नाम ही गौ-पूजा नहीं है। हम लोग पाखण्डी हो गये है। देवता को प्रणाम करते है और भाई को कष्ट देते है, उसे छल-कपट द्वारा सताते है। इसी प्रकार गाय को भी हम माता कहते है, परन्तु उसे खाने-पीने को कुछ नही देते। इसी लिए हमे उसका दूध नही मिलता; और यदि मिलता भी है तो रुचता नही। मिथ्या और ऊपरी बिलैया दंडवत करनेवाले के लिए नर्कवास बतलाया गया है; उसके भाग्य में दासता ही लिखी गई है।"

---

११ पर्ण-कुटी

"मुझे भी ले चल न भैया, कहानी सुनने को! तू तो हररोज जाता है। मां तू ही दादा से कह दे कि वह मुझे साथ ले जाय!" इस प्रकार वत्सला अपने भाई गोविन्द से आग्रह करने लगी। इसपर उसने कहा "अरी, तू वहाँ जाकर ऊंघने लगेगी। फिर किस लिए तू साथ ले चलने का हठ कर रही है?"

यह सुन माता ने अत्यन्त आग्रह-पूर्वक कहा "ले जा रे इस बेचारी को

भी ! यह भी सुन लेगी। अच्छी बात तो सब को सुननी चाहिए। मैं भी चलती, परंतु घर का काम समेटते-समेटते ही आधी रात हो जाती है।"

"वह पड़ौस की राधा जाती है, कमला जाती है और सीता को भी उसका भाई ले जाता है; तब तू क्या मेरा भाई नही है?" इस प्रकार वत्सला अधिक करुण शब्दो मे गिडगिड़ा कर भाई का हृदय पिघलाने लगी।

उसके इन शब्दो को सुन अनिच्छा-पूर्वक गोविन्द ने कहा "चल भले ही, परन्तु वहाँ चलकर यदि इसके लिए जल्दी मचाई कि 'मुझे नींद आती है, घर चलो; तो फिर देखना।' और इस शर्त के साथ वह उसे ले गया। इस प्रकार धीरे-धीरे आश्रम मे होनेवाले कथा-रूपी प्रवचन को सुनने गाँव के लड़के-बच्चे ही नही, बड़े आदमी भी, जिन्हे समय था, आने लगे।

जिस समय वत्सला और गोविन्द पहुँचे, वहाँ कहानी आरम्भ हो चुकी थी।

"अन्त मे मेरे पिता को उनके भाइयो ने घर से निकाल दिया। भाई-बन्दी जो ठहरी। केवल इस भारतवर्ष मे ही यह भाई-बन्दी जोरों पर है! कौरव-पाण्डव के समय से अब तक यह बराबर चली आ रही है। किन्तु जहा भाई-भाई मे ही प्रेम न हो, वहा स्वतत्रता कैसे टिक सकती है, मुक्ति कैसे रह सकती है? जिस घर मे मेरे पिता छोटे से बड़े हुए और जहा रहकर उन्होने तीस वर्ष तक भली-बुरी गृहस्थी चलाई, जिस घर मे उन्होने अन्य सबको दही-दूध दिया और खुद इमली का पानी पीकर ही सतोप किया, जिस घर मे रहकर उन्होने अपने भाई-बहनो के विवाह किये, उनकी इच्छाएँ पूरी की, उसी घर में से आज उन्हे बाहर निकल जाने के लिए कह दिया गया! घर मे माता को भी अपमान-कारक वचन सहने पडे! हम उस समय छोटे-छोटे थे। इसके बाद भी कभी-कभी उस हिस्से-रसी या बँटवारे की बाते सुनाते हुए माता की आँखो मे आँसू आते थे।

वह दिन मुझे अभी तक याद है। हमारे गॉव मे माघमास की संकट चतुर्थी का गणेशोत्सव था। यह मनौती का उत्सव था। क्योकि यथार्थ में गणेशजी का सार्वजनिक उत्सव भाद्रपद मास मे ही होता है। महाड़ के 'धारप' ने यह मनौती की थी। उस समय अभ्यकर नाम के राष्ट्रीय कीर्तन-

कार हमारे गाँव मे आये हुए थे, और उत्सव मे उन्ही के कथा-कीर्तन हो रहे थे। गाँव के सब लोग कथा सुनने मंदिर गये थे। किन्तु उस दिन हमे कथा मे नही जाने दिया गया; इस लिए हम सब सो गये थे। अचानक रात को नौ-दस बजे के लगभग माता ने हमे जगाया। उस समय माता-पिता दोनो ही घर से बाहर निकल रहे थे। माता के नेत्रो से आँसू टपक रहे थे। जिस घर में रहकर उसने श्यामा गाय को दुहा था, नौकर-चाकरो को पेटभर भोजन कराया; और जहा वह किसी समय सोने और मोती के आभूषणो से सज्जित हो कर लक्ष्मी की तरह सम्मानित हुई थी; वही घर, वह गोकुल छोडकर आज वह बाहर निकल रही थी। मेरा छोटा भाई उसकी गोद मे था। वह भाई यशवन्त से छोटा था। पिताजी आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे माता के साथ मै भी जल्दी-जल्दी चला जा रहा था। हम कहां जा रहे थे? माता के नैहर मे! गाँव मे ही मेरी ननसाल थी। नानी के घर मे उस समय कोई नही था। नाना-नानी दोनो ही मेरे मामा के पास पूना चले गये थे; और कुछ दिनों बाद वापस आनेवाले थे। इस लिए रात को ही हम गलियो में होकर नाना के घर पहुँच गये। मंदिर मे आनद की वर्षा हो रही थी, परन्तु हम निर्वासित होकर वन-गमन कर रहे थे। ईश्वर के इस रगमंच पर एक ही समय अनेक प्रकार के नाटक होते रहते है।

नये घर में आकर हमें अब सुहाने लगा था; परन्तु माता के मुख पर की खिन्नता अभी दूर नही हुई थी। कुछ दिनो बाद नानी लौट आई। यद्यपि नानी का स्वभाव प्रेमयुक्त था; किन्तु फिर भी वह कुछ हठीली थी। इस लिए माता जहा तक होता मेरी नानी से मिल-जुलकर ही बरतती, क्योकि वह उसके स्वभाव से पूर्ण परिचित थी।

माता को अपने पिता के घर मे रहना बहुत अखरता और अपमान-जनक प्रतीत होता था। यहातक कि पति-सहित नैहर मे रहने से तो वह मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। क्योकि उसका स्वभाव पूर्ण स्वाभिमानी था। एक दिन नाना-नानी मंदिर मे कथा सुनने गये। पिताजी बाहर चबूतरे पर बैठकर जमाखर्च का हिसाब लिख रहे थे; ठीक उसी समय माता ने उनसे जाकर कहा कि "मुझसे अब इस घर मे नही रहा

जाता। यदि आप मुझे जीवित रखना चाहते है तो अलग घर बँधवाइये। यहा खाना-पीना मुझे मरण-तुल्य प्रतीत होता है।" इस पर पिताजी ने कहा "किन्तु हम खाते तो अपना ही भात है। यहा तो केवल रहते ही है। घर बँधवाना क्या कोई खेल है? तुम स्त्रियो को बाते बनाते क्या लगता है! पुरुषो की कठिनाइयो को तुम क्या समझो?" यह सुन माता ने एकदम सतप्त होकर कहा "तुम पुरुषो मे तो अब जरा भी स्वाभिमान नही रहा।" इस मर्म-वाक्य को सुन पिताजी ने अत्यंत शातिपूर्वक किन्तु खिन्नभाव से कहा "हमें जरा भी स्वाभिमान नही है; क्यो? मानो हम मनुष्य ही नही है! दरिद्री मनुष्य का सारी दुनिया अपमान करती है, तब भला स्त्री क्यो न करेगी? कर ले, तू भी अपने मन की कर ले। जो तेरी इच्छा हो सो बुरा-भला कह ले।" किन्तु ये शब्द कान पर पडते ही माता रोने लगी; और उसी दशा मे उसने भरे हुए कठ से कहा "मेरा उद्देश्य आपका अपमान करने का कदापि नही था। व्यर्थ ही आप उलटा-सीधा सोच कर चित्त को क्लेश न पहुँचाइये। किन्तु मै इतना तो फिर भी कहूंगी कि अब मुझ से यहां नही रहा जाता।" पिताजी ने उत्तर दिया "तो क्या मै भी कभी यहा रहने की इच्छा कर सकता हू? परन्तु तुझे घर की सारी हालत भी तो मालूम है! सिर पर कर्ज का बोझ है और उसका व्याज (सूद) भी जब हम समय पर नही दे सकते, तब भला घर कहा से बनवाया जा सकता है? यो ही गौशाला की तरह तो घर बनवाने से काम नही चल सकता! उसमे रहना भी तो अपमान-कारक जान पडेगा।"

"मुझे गौशाला मे रह लेना स्वीकार है; परन्तु वह स्वतत्र होनी चाहिए, अपनी होनी चाहिए। बिलकुल सीधी-सादी, घास-फूस की झोपडी होने से भी काम चल जायगा। मुझे उसमे रहना जरा भी अपमान-कारक नही जान पडेगा। किन्तु पीहर वालो के यहा नही रह सकती। यदि कल कही मेरी भौजाइया आ गई; तो वे भी मेरा अपमान किये बिना नही रहेगी। इस लिए उनके आने से पहले ही घर छोड़ देना अच्छा है। बड़े और खपरैल वाले घर मे रहने की अपेक्षा पत्तो की झोपड़ी ही अच्छी। ऐसी झोंपड़ी बनाने मे खर्च भी अधिक नही लगेगा। लीजिये, ये मेरे

हाथ की सोने की चूडिया (पाटली) और यदि इनसे काम न चले तो यह नथ वेच दीजिये। क्योकि नथ या चूडिया (पाटली) न भी हुईं; तो इनके विना कोई काम रुकता नही है। मुझे क्या किसीके घर अपना वैभव दिखाने जाना है ? अपनी स्वतंत्रता ही मेरे लिए सच्ची शोभा है ! माथे पर कुकुम और गले मे मगलसूत्र यही मेरे लिए वहुत है। स्वतत्रता खोकर ये नथ और चूड़िया किस काम की ? " यो कहकर सचमुच ही माता ने नथ और चूडिया पिताजी के सामने रख दी। वे एकदम चकित रह गये, और उन्होने उसे आश्वासन देते हुए कहा " तुझे इतना दु ख हो रहा है, यह मै नही जानता था। किन्तु अव मै शीघ्र ही एक छोटा-सा घर वनवा लेता हू। "

मेरी माता प्राय कहती कि स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए अपने सब जर-जेवर फैंक दो। स्वतत्रता का साज, और स्वाधीनता का शृगार ही सब के लिए शोभादायक एव मूल्यवान शृगार हो सकता है।

हमारे हिस्से मे मिली हुई थोडी-सी जमीन पर झौंपडी वनना आरम्भ हुआ। मिट्टी की दीवारे कच्ची ईंटो से चुनकर खडी कर दी गई। इन्हे कोकण मे ' मापे ' कहते है। ये ईंटे आकार मे पक्की ईंटो से वड़ी होती है। दीवारे वन जाने पर घास का छप्पर छादिया गया। इसके वाद नीचे की जमीन लीप-छावकर अक्षय-तृतीया के शुभ मुहूर्त मे घर मे प्रवेश करने का निश्चय हुआ। माता को बुरा तो लग रहा था; किन्तु साथ ही उसे प्रसन्नता भी थी। वुरा इस लिए लग रहा था कि पास पड़ौस मे ही देवरो के बडे-वडे घर और बँगले बने हुए है, और अपना एक घास से छाया हुआ झोपडा है। किन्तु फिर वह यह सोचकर प्रसन्न होती थी कि " कुछ भी क्यो न हो ! यह स्वतत्र घर तो है ! यहा की मै मालकिन हू। यहा से मुझे उठ जाने के लिए कोई नही कह सकता। "

उस झौंपडी-नुमा घर की वास्तु-शाति की गई। इसके वाद सर्व प्रथम घर में देवता का सिहासन ले जाया गया और उसके वाद अन्य सामान। माता ने चाँवल और नारियल के गोले की गाढी खीर वनाई थी। उसे तो किसी प्रकार अवसर को साधना था। सारा दिन इसी गड़वड मे चला गया। पिताजी लोगो से कहते थे "अभी तो काम-चलाऊ घर वना लिया है,

आगे अच्छा बनवायेंगे।" किन्तु माता हमसे यही कहा करती कि "इनके हाथो अब क्या और कहा से नया घर बन सकता है? मुझे तो बड़ा घर अब भगवान के वहा जाने पर ही मिल सकेगा। परंतु यहा मेरे लिए यह कुटिया ही स्वर्ग है, क्योकि यहा मै स्वतत्र हूं। यहां किसी की दवैलदारी नही है। यहा खाई हुई नमक-रोटी भी मुझे अमृत की तरह जान पड़ेगी; किन्तु पराये घर आश्रित बनकर हलवा-पूरी खाना भी जहर जैसा था।"

उस दिन रात को हम आँगन मे बैठे हुए थे और आकाश मे तारे चमक रहे थे। चद्रमा बहुत पहले ही अस्त हो चुका था। माता को अपने स्वतत्र-जीवन पर धन्यता प्रतीत हो रही थी। यद्यपि घर छोटा ही था, किन्तु फिर भी उसके आगे-पीछे बडे-बड़े आँगन थे। यथार्थ मे यदि देखा-जाय तो आँगन ही सच्चे (प्राकृतिक) घर होते है। माता ने पूछा "क्यों श्याम! तुझे यह नया घर पसद आया?" मैंने तत्काल ही उत्तर दिया "हा, बडा अच्छा है अपना घर। गरीबो के घर ऐसे-ही तो होते हैं। अपनी मथुरी का घर भी तो ऐसा ही है। इस लिए वह भी हमारा घर बहुत पसद करेगी।"

किन्तु क्या मेरे इन शब्दो को सुनकर माता को बुरा लगा होगा? क्योकि जो मथुरी हमारे यहां धान कूटने की मजदूरी करने आती है, उसी-के जैसा हमारा भी घर है, यह सोचकर उसे दुःख हुआ होगा? किन्तु नहीं; वह तो स्वाभिमानिनी थी; उसे बुरा क्यो लगता? इसी लिए उसने कहा "हां, ठीक कहता है तू! परन्तु मथुरी गरीब होने पर भी हृदय से धनवान् (श्रीमान) है। इस लिए आओ, हम भी इस छोटे-से घर मे रह कर मन से—हृदय से बडे और धनवान् बने"।

मैंने भी कहा "हा, अवश्य ही हम मन और धन दोनो से श्रीमान बनेंगे।"

इतने ही मे आकाश से एक तारा टूटा। माता एकदम गभीर होगई। छोटा भाई बोला "माँ, कितना बड़ा तारा था!" फिर भी माँ गभीर ही बनी हुई थी। वह बोली "श्याम! तेरी माता के जीवन का तारा भी शीघ्रही टूटने वाला है, ऐसा तो वह (तारा) नही कह रहा था? वह ऊपर का बड़ा और विशाल सुंदर आकाश मुझे तो ऊपर नही बुला रहा

है ? और कही मुझे ही बुलाने के लिए तो वह तारा नीचे नही आया था ?"

"नही माता, वह तो हमारा यह नया स्वतत्र घर देखने आया था! उसे हमारा यह सीधा-सादा स्वतत्र घर स्वर्ग से भी अधिक पसद आया होगा। जैसे यमुना के जल मे भगवान गोपाल कृष्ण के हाथ धोने पर जो जूँठन गिरती थी, उसे खाने के लिए स्वर्ग के देवता आया करते थे, यह बात हरि-विजय (भागवत) मे कही गई है, उसी प्रकार ये तारे भी हमारा स्वतत्र घर देखने को आकाश से आते रहेगे। क्योकि हमारे घर मे प्रेम है —तेरा निवास है!" इस प्रकार मैने उत्तर दिया।

मेरी बाते सुन माता ने प्रेम-पूर्वक मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा "श्याम, भला यह तो बता तुझे ये सब बाते किसने सिखला दी? तू कितनी मीठी और सुन्दर बाते करता है? सचमुच ही हमारा यह सुन्दर घर तारो को भी पसद आएगा; और अन्य सब को भी।"

---

१२ भूतदया

"श्याम, वह दीया एक ओर हटा दे। मेरी आँखों पर उजेला नही पडना चाहिए।' इस प्रकार श्याम ने कहा। आज थोडी-सी वर्षा हो जाने से बाहर ठण्डी हवा चल रही थी; इस लिए सब लोग भीतर ही बैठे थे। वैसे प्रतिदिन आकाश के नीचे खुली जगह मे ही प्रार्थना और कथा-प्रवचन होते थे। किन्तु श्याम को दीये से कष्ट होता था, इस लिए राम ने उसे हटाना चाहा। परन्तु माधव भला क्यो उसकी सुनने लगा? वह बोला "यहा दीपक रहने से हमे तुम्हारे मुँह पर के हावभाव दिखाई देते है। कानो से सुनने के साथ ही हम आँखो से देखते भी तो है! जिस प्रकार तुम्हारे शब्दो का हम पर प्रभाव पडता है, उसी प्रकार तुम्हारे चेहरे पर के हावभाव का भी पडता है। यदि केवल सुनने से ही काम चल जाता तो नाटक भी अवश्य ही अधेरे मे किये जाते!"

यह सुन श्याम ने कहा "किन्तु मै कोई नाटक नही करता। केवल अपने अंतःकरण की वाणी ही तुम्हें सुनाता हूं।"

"हम भी तो उसे नाटक नही कहते। किन्तु तुम्हारे चेहरे की ओर देखने से भी प्रभाव पड़ता ही है। स्वामी रामतीर्थ जापान मे अंगरेजी मे भाषण देते थे; किन्तु अंगरेजी न जानने वाले जापानी भी उनका व्याख्यान सुनने जाते और रामतीर्थजी के चेहरे पर के हावभाव ही मानों उन्हे सब कुछ समझा देते थे।" इस प्रकार मुकुद ने उस प्रस्ताव को पुष्ट किया।

"अच्छी बात है, रहने दो यही दीया। जिसमे तुम सब को आनंद हो उसी में मैं भी प्रसन्न हूं।" यो कह कर श्याम ने कहानी शुरू की '—

"बचपन मे एक दिन हम आँगन मे खेल रहे थे। तुलसी की क्यारी वाला आँगन बहुत बड़ा और लंबा-चौड़ा था। उसीमे बहेड़े का एक बहुत ऊचा वृक्ष भी था। अचानक ही 'टप्' की आवाज सुनाई दी। मैं अपने छोटे भाई को लेकर यह देखने लगा कि किस चीज़ के गिरने की आवाज़ हुई है? क्योकि वृक्ष पर से कोई वस्तु गिरी अवश्य थी। हम उधर-इधर देखने लगे तो एक तरफ वृक्ष पर से गिरा हुआ किसी पक्षी का छोटा-सा बच्चा दिखाई दिया। उसकी छाती धड़क् रही थी; क्योकि वह बहुत ही ऊचे से गिरा था। उसकी बड़ी बुरी हालत हो रही थी। वह लोटपोट हो रहा था। उसके अभी पूरी तरह पंख भी नही निकले थे। वह आँखे भी अच्छी तरह खोल नही सकता था। लोहार की धौंकनी की तरह उसका सारा शरीर ऊपर-नीचे हो रहा था। जरा हाथ लगाते ही वह अपनी गर्दन लम्बी करके चीं-चीं करने लग जाता था। उस बच्चे को उठाकर मैंने घर मे ले जाने का निश्चय किया; और एक कपडे मे हल्के हाथ से उठाकर घर में ले भी गया। साथ में मेरा छोटा भाई भी था। हमने रुई जमाकर उस पर उस बच्चे को रख दिया। उस समय हम भी तो बच्चे ही थे; इस लिए इससे अधिक और कर ही क्या सकते थे? अपनी बाल-बुद्धि के अनुसार जो-जो सूझता गया वह करने लगे। उसके लिए दाना-पानी करने के विचार से चॉवल के छोटे छोटे टुकड़े (चूरी) लाकर उसकी चोच मे रखने और झारी से पानी की बूदे डालने का प्रयत्न भी हमने किया। किन्तु हम यह नहीं सोच सके कि उस बच्चे को दाने चुगना या पानी पीना आता भी है या नही; और

कही वह हमारी इस अत्यधिक सेवा (चिता) के कारण; अर्थात् उसकी चोंच में दाना-पानी पहुँचाने से ही मर तो नही जायगा!

इस ससार मे केवल प्रेम या निरी दया दिखलाने से ही काम नही चल सकता। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए तीन गुणो की आवश्यकता होती है। उनमें प्रथम गुण है प्रेम, दूसरा है ज्ञान और तीसरा है शक्ति या बल। जिसके पास प्रेम, ज्ञान और बल, तीनो गुण मौजूद है, वह संसार मे सफल-जीवन हो सकता है। क्योकि जिस प्रकार प्रेम-हीन ज्ञान निरर्थक होता है; उसी प्रकार ज्ञान-हीन प्रेम भी व्यर्थ होता है। ठीक यही बात प्रेम-ज्ञान-हीन शक्ति या शक्ति-हीन प्रेम और ज्ञान की निरुपयोगिता के विषय मे भी कही जा सकती है। मेरे शरीर मे यदि शक्ति हो और दूसरे के प्रति प्रेमभाव न हो, तो अवश्य ही शक्ति का दुरुपयोग होगा। इसी प्रकार यदि मेरे पास ज्ञान है, किन्तु दूसरों के प्रति प्रेम नही है; तो उस ज्ञान से मै दूसरो को लाभ नहीं पहुँचा सकता। साथ ही यदि प्रेम होते हुए ज्ञान का अभाव हो, तो वह प्रेम भी हानि किये बिना नही रहेगा। किसी माता का अपने पुत्र पर अत्यधिक प्रेम हो, किन्तु माता यह ज्ञान न रखती हो कि बीमारी मे उसकी कैसे सेवा की जाय, तो, उस अन्ध-प्रेम के वशीभूत होकर वह न खाने की वस्तुएँ भी खाने के लिए देकर उसके लिए घातक बन जायगी। इसी प्रकार यदि किसी माता के हृदय मे सतान के प्रति प्रेम भी हो और ज्ञान भी, किन्तु वह खुद ही अशक्त या पगु हो, तो उसके ज्ञान या प्रेम से भी सतान को लाभ नही पहुँच सकता। इसी लिए प्रेम, ज्ञान और शक्ति तीनो का समान-रूप से जीवन मे विकास होना चाहिए। अर्थात् प्रेम का अर्थ होगा हृदय का विकास, ज्ञान का आशय बुद्धि का विकास और शक्ति का अर्थ होगा शरीर का विकास। शरीर, मन और बुद्धि इन तीनो की जीवन मे वृद्धि होनी चाहिए।

हाँ, तो हम उस बच्चे पर प्रेम तो कर रहे थे, किन्तु हमे ज्ञान नही था। उसकी चोच मे हमने आटा, चाँवल आदि कई चीजे डाली और ऊपर से बराबर पानी भी डाला! किन्तु वह गरीब बेचारा हमारे इस अज्ञान-मय प्रेम के कारण बेजार हो रहा था। यहा तक कि अन्त मे उसने गर्दन लटका दी। मैंने उससे कहा "अरे बच्चे! हम तुझे पीजरे मे बंद नही करेगे, तू

अच्छा होकर अपनी माँ के पास उड़ जा! तुझे विश्वास दिलाते है कि हम दुष्ट नही है।"

"अरे, कम से कम तू अपनी माँ के लिए ही जीता रह। वह तेरे लिए किस प्रकार करुण शब्दो मे विलख रही होगी; इधर-उधर चक्कर काट रही होगी।" किन्तु हमारे इस कथन की ओर उस बच्चे का ध्यान नही था। मैंने माता के पास जाकर कहा "माँ, देख तो यह बच्चा क्या कर रहा है! बिलकुल गर्दन ऊपर उठाता ही नही। बतला तो सही, इसे क्या खाने को दे? माता ने बाहर आकर उस बच्चे को प्रेम-भरे हाथो से उठाते हुए कहा "श्याम! यह अब जी नही सकता। इसे शातिपूर्वक मरने दे। इसे बार-बार हाथ भी मत लगा। इसे वेदना हो रही है। बेचारा बहुत ऊँचे से गिरा है।" यो कहकर माता ने उसे फिर नीचे रुई पर रख दिया, और वह भीतर घर मे कामकाज करने चली गई। किन्तु हम उस बच्चे की ओर ही देखते रहे। थोडी ही देर वह बेचारा चोच खोलकर मर गया। उस बेचारे का प्राण निकल गया। उस समय उसके माँ-बाप या भाई-बन्धु कोई भी पास मे नही थे। हमे बहुत बुरा लगा और उसे जमीन मे अच्छी तरह गाड़कर समाधि देने का हमने निश्चय किया।

माँ से जाकर पूछा "माँ, उसे हम कहा ले जाकर गाड़े? हमें कोई अच्छी-सी जगह बतला दे।" माँ ने कहा "उस सेवती या मोगरे (बेले) की छाया मे गाड दो। इससे सेवती के पौधे पर सुन्दर फूल खिलेगे; अथवा मोगरे के फूल अधिक खिले हुए दिखाई देगे। तुमने उस बच्चे के साथ जो प्रेम किया है, उसे वह कभी भूल नही सकता। उन फूलो के रूप मे ही वह तुम्हारे पास आकर मधुर सुगन्ध से तुम्हारा चित्त प्रसन्न करेगा।"

मैंने कहा "उस सोने की परी-वाली कहानी की तरह! क्यो माँ? उस बेचारी को सौतेली माँ ने मारकर जमीन मे गाड़ दिया और ऊपर एक अनार का वृक्ष लगाया। किन्तु सोने की परी अपने पिता से मिलाने के लिए अनार के दानो मे आई; वैसे ही यह बच्चा भी आवेगा। यही बात है न माँ? फिर तो सेवती के फूल बड़े सुन्दर दिखाई देगे, उनमे खूब सुगन्ध आवेगी, क्यो ठीक बात है न माँ!" इस पर माता ने कहा "जाओ, उसे जल्दी से गाड़ दो। मरे हुए को ज्यादा देर रखना ठीक नहीं।"

यह सुन मैंने कहा "माँ, उसे लपेटने के लिए एक अच्छा-सा कपडा तो दे!" तत्काल ही उस प्रेम-मयी माता ने अपनी एक फटी-पुरानी जरी की चोली मे से थोडा-सा टुकडा फाडकर दे दिया; और उस रेशमी कपडे मे लपेट कर उस बच्चे को लिए हुए हम उन फूलो के पौधो के पास पहुँचे। वहा जाकर हमने दोनो वृक्षो के बीच एक गड्ढा खोदना आरम्भ किया। उस समय हमारे नेत्रो से आँसू टपक रहे थे। उस पवित्र जल से वह भूमि शुद्ध हो रही थी, मृदु हो रही थी। गड्ढा तैयार होते ही पहले हमने उसमे थोडे-से फूल रखे और उनपर उस बच्चे को कपडे में लपेट कर रख दिया। किन्तु इसके वाद हमसे उस पर मिट्टी नही डाली जा सकी। मक्खन से भी मुलायम उस सुन्दर छोटे-से बच्चे के कोमल शरीर पर मिट्टी डालने का साहस हम न कर सके। किन्तु अन्त मे आँखे मूद कर हमे उस पर मिट्टी डालने के वाद गड्ढा पूर देना पडा। बिल्ली उसे खोद न सके, इस लिए ऊपर से एक वडा पत्थर भी रख दिया और इसके वाद हम घर आ गये। किन्तु मै घर मे एक ओर वैठ कर रोने लगा। माता ने उसी क्षण पूछा "क्यो रे श्याम! उधर अलग क्यो बैठा है?"

मैंने कहा "माँ, मै उस बच्चे का सूतक पालना चाहता हू।"

यह सुन माता ने हँसकर कहा "उसका सूतक पालने की जरूरत नही।" तव मैंने फिर पूछा "किन्तु हम अपने घर मे किसी के मरने पर तो सूतक पालते है!"

उत्तर मे माता ने कहा "मनुष्य किसी न किसी रोग के कारण मरता है; इस लिए उसके पास रहने-वालो का दूसरे लोगो से कुछ दिन अलग रहना आवश्यक है। इससे यदि वह स्पर्शजन्य (छूतका) रोग होगा तो उसके जतु दूसरो में न फैल सकेगे। इसी उद्देश्य से सूतक पालकर अलग रहने का नियम वनाया गया है। परन्तु उस बेचारे पक्षी को तो कोई रोग ही नही था। वह तो ऊपर से गिरा और थोडी देर जी-कर चल वसा।"

माता के इन शब्दो को सुन मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने पूछा, "माँ, तुझे ये सव वाते किसने वतलाई?" इस पर उसने कहा "अभी उस दिन बाहर एक सज्जन आये थे, उन्होंने तो कहा था। मुझे उनकी वात ठीक जान पडी और तभी से मैने उसे हृदय मे अंकित कर लिया। जाओ, तुम

दोनो हाथ-पाँव अच्छी तरह धोकर घर मे आ जाओ! बस, हो गई इतने ही से शुद्धि। उसके लिए दुखी होने की आवश्यकता नही; उसके साथ तुमने प्रेम-भाव दिखाकर वहुत अच्छा किया है। इससे परमात्मा भी तुम पर प्रेम की वर्षा करेगा। यदि दैवयोग से कही तुम बीमार हो गये और पास मे तुम्हारी माता न हुई, तो वह खुद तुम्हारे लिए अनेक दूसरे सहायक मित्र खडे कर देगा। उस परमात्मा के पुत्रों को—चीटे-चीटी या पशु-पक्षियो को—तुम जितना दोगे, उससे सौगुना वढाकर वही तुम्हे परमात्मा से मिलेगा। जमीन मे वोया हुआ एक दाना वदले मे हजारो दानो से भरा हुआ भुट्टा वनकर हमे मिलता है। श्याम! जैसा तुमने इस वच्चे पर प्रेम किया है; उसी प्रकार आगे चलकर तुम एक-दूसरे पर भी प्रेम करना। ऐसा न हो कि पशु-पक्षियो पर तो प्रेम करो और भाइयो से द्वेष करने लगो। तुम सब भाई-वहन एक-दूसरे को कभी अलग न होने देना। तुम्हारी एकमात्र वहन है, उसे कभी भूल न जाना; उसके साथ पूर्ण स्नेह रखना।"

ये सब वातें कहते हुए माता का गला भर आया। कदाचित् मेरे पिता के साथ उनके भाइयो ने जो दुर्व्यवहार किया था, उसका दृश्य उसकी आँखो के सामने प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था। अथवा क्योकि वह वेचारी हमेशा बीमार रहती थी, किन्तु फिर भी उसके भाई (मेरे मामा) आज तक कभी उसे हवा-पानी वदलने के लिए नही ले गये, सभव है इस लिए उसे दु ख हो रहा हो। उसकी भावनाएँ चाहे जो हो, किन्तु उसने जो कुछ कहा वह सर्वथा सत्य था। क्या हम नित्य-प्रति संसार मे यह दृश्य नही देखते कि लोग चीटियो को तो आटा और शकर डालते फिरते है, किन्तु मनुष्य की—अपने भाई की ही गर्दन मरोडने मे वे जरा-भी आगा पीछा नही देखते। कुत्ते, विल्ली और तोते-मैना से तो प्रेम करते हैं; किन्तु अपने ही पडौसी भाई के साथ मनुष्यता का भी व्यवहार नही करते, प्रेम तो दूर की वात है।"

---

१३ तैरना कैसे सीखा ?

कोंकण मे वर्षा-ऋतु मे कुए-बावडी लबालब भर जाते है । यहा तक कि उनमे से हाथो से भी पानी लिया जा सकता है। इस कारण चौमासे मे वहा तैरने का बड़ा आनन्द रहता है। नये लड़को को उन्ही दिनो तैरना सिखाया जाता है। उनकी कमर से तूबियाँ अथवा हल्के लक्कड का टुकडा बाँधकर कुए मे धकेल देते है। कुए मे तैरने-वाले पहले-से होते ही है। वहा ऐसे-ऐसे होशियार तैराक घर-घर देखने मे आते है, जो छह-छह पुरुष गहरे पानी के नीचे जाकर तले की मिट्टी ऊपर ले आते है। पानी में अनेक प्रकार से उडी मारने या गोते लगाने-वाले भी होते है। कोई कोई उसमे कई तरह के खेल भी करते है। कोई एक दूसरे के पाँव मे पाँव फँसाकर सिर ऊपर किये हुए नाव भी बना लेते है। इस प्रकार कोकण मे अनेक जल-क्रीडाएँ देखने मे आती है। मेरे चचा भी नबरी तैराक थे। पिताजी भी तैरना जानते थे, परन्तु मुझे वह नही आता था।

दूसरो को तैरते हुए देखने के लिए मै अवश्य जाता, किन्तु अपने-आप कभी पानी मे पैर भी नही रखता था। क्योकि मुझे पानी से बहुत डर लगता था। मेरे पडौसी छोटे-छोटे लडके भी धडाधड़ कूदते रहते; किन्तु मै डरपोक छोकरी की तरह दूर से देखा करता था। यदि कोई झूटमूँट भी कह देता कि 'ढकेल दो श्याम को कुए मे,' तो मै तत्काल वहा से नौ-दो ग्यारह हो जाता था।

माता मुझ से अनेक बार कहती "अरे श्याम, तू भी तैरना सीख ले! छोटे-छोटे बच्चे तक तैरते है, तब तुझे कैसे डर लगता है? क्या इतने लोग तैरते है, वे सब तुझे डूब जाने देगे? कल रविवार है, इस लिए तैरने को अवश्य जाना! वह बलवन्ता तुझे सिखा देगा। नही तो तेरे चाचा (काका) के साथ जाना। अरे, उठते-बैठते तो अपना कुए पर काम रहता है। यहा बम्बई-पूना जैसे नल (पाइप) थोडे ही लगे हुए है। गाँवो मे रहकर तो तैरना अवश्य सीख लेना चाहिए। वह कुसुम जीजी की वेणू और अम्बा तक तो तैरना सीख गई और तू लड़का होकर डरता है? अरे

इससे तो तू चूड़ियाँ पहन ले यही अच्छा ! परन्तु तू तो चूडियाँ पहनने वाली लडकियो से भी गया-बीता है। कल तुझे अवश्य तैरने जाना होगा। उस वावू के यहां सूखी तूवियाँ रखी हुई हैं, उन्हे कमर से बाँध लेना। इतने पर भी जरूरत हुई तो कमर से धोती वाँध कर तुझे ऊपर से लडके पकडे रहेंगे। किन्तु कल तुझे अवश्य तैरने के लिए जाना पडेगा।"

मैं कुछ भी न वोला। दूसरे दिन रविवार आ गया। मैंने कही छिप-कर वैठ जाने का निश्चय किया। क्योंकि मुझे विश्वास हो चुका था कि माता आज किसी भी तरह मुझे तैरने के लिए भेजे बिना न रहेगी। इस लिए मै ऊपरी टाँड मे जा छिपा। यह वात प्रारम्भ मे माता के भी ध्यान मे नहीं आई। लगभग आठ वजने आगये। ठीक उसी समय मेरे पडौसी वासुदेव, भास्कर, छोटू आदि लडके आकर पूछने लगे "श्याम की माँ ! आज श्यामू तैरने के लिए चलेगा नँ ?" "यह देखो, मै तूवियाँ भी ले आया हूँ।" इस प्रकार छोटू ने कहा। उन्हे देख कर माँ ने कहा "अवश्य चलेगा ! परन्तु वह है कहा ? मैं समझती थी वह तुम्ही लोगो की तरफ गया है। श्याम ! अरे ओ श्याम ! कहां गया है रे ! कही बाहर तो नहीं चला गया ! " इस प्रकार पुकारती हुई माता मुझे खोजने लगी। किन्तु मै ऊपर वैठा हुआ यह सव सुन रहा था। लडको ने कहा "नहीं, वह हमारी तरफ नही आया, यही कही छिपकर तो नही वैठा है ? क्या हम ऊपर जाकर देखे ? " माता ने कहा "देखो, यदि वह ऊपर हो तो ! उसे घूस-चूहे की तरह छिप जाने की आदत तो है। उस दिन वह इसी तरह खटिया के नीचे छिपकर बैठ गया था। किन्तु ऊपर जरा होशियारी से जाना, समझे ! वह तख्ता एकदम उलट जाता है, इस लिए उससे अलग-दूर पाँव रखते हुए जाना।"

लडके ऊपर चढने लगे और मुझे भय हुआ कि अब मै पकड़ लिया जाऊंगा। इस लिए सिकुड कर मै और भी आड मे हो गया। किन्तु जिस प्रकार मेंडक फूलकर वैल नही वन सकता, उसी प्रकार वैल भी सिकुड-कर मेंडक नही वन सकता। फिर भी मैं मन ही मन सोचने लगा कि यदि मै 'भक्तिविजय' ग्रथ मे वर्णित ज्ञानेश्वर की तरह छोटा वनकर, जैसे कि वह मक्खी वन गये और तलैया मे जाकर पानी पी आये, वैसे

ही यहा छिप सकता, तो कभी इन लोगो के हाथ नही आ सकता था। फिर भी मै चाँवल के थैले की आड मे छिपा रहा। इतने मे थोड़ी देर इधर-उधर देखकर एक लड़के ने कहा " अरे यहा तो नही दीखता । वह भला, यहा क्यो ऐसी मुश्किल मे छिपकर बैठा होगा ?" इसपर दूसरा बोला " हा भाई चलो, नही तो हमें देर हो जायगी।" इसी बीच भास्कर ने मुझे देख लिया और पास आकर कहा "अरे, यह देखो! इधर इस थैले की आड मे छिपकर बैठा है!" तब तक दूसरे लडके भी वहा आगये और कहने लगे "श्याम, चलता है नँ तैरने को? इस तरह छिप क्यो गया?"

उनके शब्द सुनकर माता बोली "है न ऊपर ही? मै समझ ही गई थी कि ऊपर छिपा होगा! उसे जरूर ले जाओ, किसी तरह भी मत छोडो!" इतना सकेत मिलते ही लडके मेरा हाथ पकड कर खीचने लगे। किन्तु फिर भी वे थे तो पराये ही लडके! वे भला जोर क्यो लगाने लगे? वे धीरे-धीरे खीच रहे थे और मै पूरा जोर लगा रहा था!

अन्त में हार कर लडको ने कहा "श्याम की माँ, वह तो नही आता और न अपनी जगह से हिलता ही है। यह सुन माता क्रुद्ध होकर बोली, "देखती हू, कैसे नही आता है सो! कहा है वह, मै ही ऊपर आती हू, ठहरो!" इसके बाद तत्कालही माता वहा आई और मुझे खीचने लगी। वह मुझे घसीट रही थी, किन्तु फिर भी मै अपना हठ नही छोड रहा था। एक हाथ से मुझे वह घसीट रही थी और दूसरे मे ली हुई छडी से पीटती जाती थी। उसने लडको से कहा "तुम इसका हाथ पकड कर खीचो और मै इसे पीछे से धकेलती और छडी लगाती हू। देखे कैसे नही जाता है यह।"

यह सुनते ही लडके मुझे खीचने लगे और माँ छडियां बर्साने लगी। "अरे, मत मारे माँ! ओ, मरा, मर गया रे!" इस प्रकार मै चिल्लाने लगा, किन्तु फिर भी माता धमकाती ही रही "चुप रह! उठ! चुपचाप नीचे चलाचल। आज मै तुझे नही छोडूगी। ले जाओ रे इसे, पानी मे धकेल दो। अच्छी तरह दो-तीन बार डुबाना। इसके मुँह और नाक-कान में पानी घुसने देना! उठ! क्यो, उठता है या नही? शर्म नही

आती तुझे ! चोर की तरह छिप कर बैठा था ! देख, वे लड़कियाँ आगई तेरी फजीहत देखने !" यो कहकर वह और भी जोरो से मुझे पीटने लगी ।

"अच्छा जाता हू ! मुझे मारे मत !" मैने कहा । इसपर माता ने मुझे पीटना बंद करते हुए फिर सावधान किया । "निकल झटपट; यदि फिर कही भागा तो घर मे नही आने दूगी, समझा ! "

इधर, तब तक वेणू कहने लगी "श्याम ! अरे इस तरह डरता क्यो है ? अब तो मैं भी कुए मे कूद कर तैरने लगी हू। उस दिन गोविन्द काका ने मुझे कन्धे पर बिठलाकर कुए मे उड़ी लगाई थी। बड़ा आनद आया। मुझे तो कुछ भी डर नही लगा।"

यह सुन छोटू ने कहा "छोडदो इसका हाथ। यह अवश्य चलेगा। श्याम ! डरने की कोई बात नही है ! एक-बार कूद पडने के बाद तो फिर अपने-आप तेरी हिम्मत बढ जायगी। उस समय हम नही कहेगे तो भी तू अपने-आप ऊपर से कूदने लगेगा ? रोता क्यो है !"

देवघर के कुए पर बलवन्ता, गोपाल आदि कई जवान लडके तैर रहे थे। मुझे देखते ही बाहर आकर बलवन्ता ने कहा "अच्छा, श्याम आज तैरने आ गया ! लाओ मै ठीक तरह से इसकी कमर मे तूबियाँ बाँध देता हू।" यो कहकर उसने दो बड़ी-बडी तूबियाँ मेरी कमर से बाँध दी। उधर बावडी मे तीन-चार अच्छे तैराक थे ही, किन्तु फिर भी मै थर-थर काँप रहा था। बलवन्ता ने कहा "हा, लगा तो देखू अब ठीक तरह से उडी !' किन्तु मै कुए मे झाक कर बार-बार पीछे हट जाता था। जरा आगे बढत' और फिर पीछे हट जाता। जरा देर को नाक पकड़ता और फिर छोड देता। इस प्रकार बहुत देर तक होता रहा। तब तक गोपाल ने कहा "अरे, डरपोक है। वेणू, कूद कर लगा तो देखू उडी ! तुझे देख कर यह भी कूद पडेगा।" भाई की बात सुनते ही वेणू अपनी घँगरिया की कच्छ लगाकर धम्म से कूद पडी। इतने मे मुझे भी किसीने पकड कर कुए मे धकेल दिया ! मै चिल्लाया "मरा रे मरा ! मै मर गया।" किन्तु क्षण भर मे ही मै पानी के ऊपर आ गया और घबरा कर तैरने-वालो के गले मे लिपटने लगा। किन्तु वे मुझे अपने पास न आने दे कर यह कहते रहे कि "इस प्रकार आड़ा हो जा, और होट पानी से लगाकर हाथ लबे

करते हुए पैर हिलाना शुरू कर दे।" इस प्रकार मुझे तैरने की शिक्षा दी जाने लगी। बलवन्त भी मेरे साथ ही कूदा था। उसने मुझे थाम लिया। इसके बाद वह मेरे पेट के नीचे हाथ रख कर तैरना सिखाने लगा। साथ ही वह यह भी कहता रहा कि "घबराना मत। क्योंकि इससे मनुष्य जल्दी थक जाता है। एकदम किनारे को भी मत पकड़ना। बिल्कुल पास पहुँचे बिना किनारा नही पकडना चाहिए।"

इसके बाद छोटू ने कहा "अब फिर से उडी मार! चल ऊपर को।" और तत्काल ही मै सीढियाँ चढ कर ऊपर जा पहुँचा। एक हाथ से नाक बंद किया और थोडी देर तक आगे-पीछे हटकर अत मे कूद ही पडा। मुझे देखते ही बलवन्त ने कहा "शाबास, श्याम! अब आ गया तुझे तैरना। एक-बार भय दूर हुआ कि फिर कुछ भी शेष नही रहता।" इसके बाद उसने फिर मुझे पानी मे थामकर तैरना सिखलाया। अन्त मे सब ने एक-साथ कहा कि "अब और एक बार कूदने के बाद आज का काम पूरा हो गया समझना।"

मैने फिर ऊपर आकर उडी लगाई और बलवन्त का सहारा लिये बिना ही मै कुछ देर तैरता रहा। मेरी कमर मे तूबियाँ बँधी हुई थी ही, इस लिए डूबने का भय नही रहा। मेरी हिम्मत बढी और पानी का डर मिट गया। अन्त मे पानी से निकल कर हम सब घर को चले। सब लडके साथ-साथ मुझे घर तक पहुँचाने आये।

घर आते ही छोटू ने कहा "श्याम की माँ, आज इसने अपने-आप पानी मे उडी लगाई थी। यह बिल्कुल नही डरा; और तूबी के सहारे इसने थोडा-थोडा तैरना भी सीख लिया है। बलवन्त भैया कहते थे कि यह बहुत जल्द तैरना सीख लेगा।"

माता ने कहा "अरे, पानी मे पडे बिना और नाक-कान मे पानी घुसे बिना किसी का भी भय दूर नही होता। श्याम! जरा सिर को अच्छी तरह पोछ और चोटी को भी फट्कार कर सुखा ले।" इसके बाद सब लड़के चले गये। मैने सिर पोछ कर सूखी लगोटी पहनी। फिर भी मैं घर में कुछ रूठ कर ही बैठा था। हमारे भोजनादि निपट जाने के बाद माता भोजन करने बैठी। उस समय मै बाहर बरामदे में बैठा हुआ था। कुछ

ही देर मे उसने अत्यन्त मीठे स्वर मे पुकारा "श्याम !" और तत्काल मैं उसके पास चला गया। जाते ही मैंने पूछा "क्या है, माँ ?" उसने कहा "वह दही की कुण्डी (पथरी) लेआतो! उसमे दही है। वह सब सड़प जा! तुझे दही तो अच्छा लगता है नँ!" मैंने रोने का-सा मुँह बनाकर रुठने के स्वर मे कहा "नही चाहिए मुझे तेरा दही! सवेरे तो छडी से मार-मार कर वेदम कर दिया; और अब कहती है दही लेकर सडप जा।" देख, मेरी पीठ पर अभी तक मार के निशान बने हुए है। वावड़ी के इतने गहरे पानी मे तैरने पर भी वे नही मिटे। जबतक वे चिन्ह बने हुए है, तब तक क्यो दही देकर मुझे बहलाती है! उस मार को मै इतनी जल्दी कैसे भूल जाऊंगा ?"

माता की आँखो मे आँसू आ गये और वह उसी दशा मे उठ खड़ी हुई। उसके गले से अन्न नीचे न उतर सका। वह हाथ धोकर मेरे पास आई। किन्तु उसे इस प्रकार भोजन के बीच मे से उठते देख कर मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने सोचा माता को मेरी बातो पर से बडा कष्ट पहुँचा है। तत्काल ही वह तैल की कटोरी लाकर मेरे शरीर पर के मार के चिन्हो पर लगाने लगी। मै फिर भी चुपचाप ही रहा। तब माता रुआ-सी होकर बोली "श्याम! क्या तुझे लोगो से डरपोक कहलाना अच्छा लगता है ? मै नही चाहती कि मेरे श्याम को कोई इस प्रकार बदनाम करे। इसी लिए मैंने तुझे पीटा! श्याम! यदि तेरी माँ से कोई आकर यह कहे कि तुम्हारे लड़के डरपोक है। तो क्या यह बात तुझे अच्छी लगेगी? क्या अपनी माँ का अपमान तू सह सकेगा? कभी नही! मै अपने बच्चो का अपमान कभी सहन नही कर सकती; और मेरे बच्चे भी कभी अपनी माता का अपमान न सह सकेगे! ऐसा होने पर ही मै सच्ची माता कहला सकती हू और तुम मेरे सच्चे पुत्र हो सकते हो। नाराज मत हो श्याम! मैं चाहती हूं कि तू अच्छा मजबूत और साहसी बने। वह दही सड़प कर वाहर खेलने चला जा। आज दो-पहर मे सोना मत। क्योकि तैर कर आने के वाद सोने मे तत्काल सर्दी हो जाती है।"

"मित्रो! मेरी माता साहसी लडके चाहती थी, डरपोक नही।"

---

१४ स्वाभिमान-रक्षा

"जो ब्राह्मण अच्छी तरह खाता-पीता गृहस्थ होता है, वह भोजन के बाद दक्षिणा नही लेता। केवल गरीब ब्राह्मणो को ही दक्षिणा लेने का अधिकार होता है, क्योकि उनके लिए निर्वाह का कोई दूसरा साधन नही रहता। वेद-विद्या के सिवाय उनके लिए दूसरा कोई धदा नही होता। इसी लिए ब्राह्मणो को दक्षिणा देने की बात कही गई है। अन्य देशो मे भी उपाध्याय (कुलगुरु) होते है, अन्य धर्मो मे भी वे पाये जाते है। कई स्थानो मे तो उन्हे सरकार से ही वेतन मिलता है। किन्तु हमारे यहा समाज ही ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा दे कर सम्मानित करता है।" इस प्रकार श्याम ने आरम्भ किया।

"हमारे गाँव मे एक सज्जन के यहा विवाह था। विवाह मे जब दोनो पक्ष के समधी आकर वाड्निश्चय (वाक्य-दान) करते है, तब दोनो मडपो मे अर्थात् वर और कन्या दोनो की ओर से दक्षिणा बाँटी जाती है। वर और कन्या दोनो के घर के उपाध्याय साथ-साथ ब्राह्मणो को दक्षिणा देते हुए मडप मे घूमते है। जितनी दक्षिणा वर (लडके) की ओर से दी जाती है, उतनी ही कन्या की ओर से भी देते है। अर्थात् यदि वर की ओर से चार-चार आने दिये गये तो कन्या की ओर से भी इतनी ही दक्षिणा दी जायगी। उस समय जो भी हाथ आगे बढाता है उसी को दक्षिणा दी जाती है। इस प्रकार विवाह-मण्डप मे जब सब लोग आकर बैठते है, तब लडके अपने-अपने पिता के पास बैठकर यह सब व्यवहार स्वय सीख लेते है। दक्षिणा के समय वे चट्-से कहने लगते है "नही, हमे हाथ नही फैलाना चाहिए, समझे!"

किन्तु आजकल तो यह स्वाभिमान रह ही नही गया है। पैसे के लिए हम हर समय लालायित रहते है। जो कुछ भी मुफ्त में मिल जाय उसे ले लेने मे हमे जरा भी सकोच नही होता। हमारी वृत्ति—आदत ही ऐसी हो गई है। रेलगाड़ियो मे जापानी एजन्ट सिगरेट आदि मुफ्त बाँटते रहते है और वे मुफ्त की सिगरेटे पीते हुए मैने बडे-बडे अमीरो को खुद देखा है। धनवान् लोग भी धर्मार्थ औषधालयो मे जाकर दवाइया ले आते

है। पैसेवालो के लडके भी दिवालिया बनने के लिए अर्जियाँ देने लग जायँ तो आश्चर्य नही। यह सब दरिद्रता और दासता का परिणाम है।

मैं भी उस विवाह-समारोह मे गया और लडको मे जाकर बैठ गया। हम पाठशाला मे पढ़ने-वाले समान अवस्था के लडके सब एक ही जगह बैठे थे। क्योकि इस प्रकार एक ओर बैठने से ही हमे कुचेष्टाएँ एव शरारते करने का मौका मिल सकता था। किसी के सिर पर हम नारियल की जटा रख देते थे; तो किसी के जेब मे ककड डाल देते थे। किसी को धीरे से नोच लेते थे, तो किसी की पीठ मे धप्पा मार देते थे। इस प्रकार हमारी शैतानी चल ही रही थी कि इतने मे दक्षिणा बँटने लगी। कुछ लडको ने हाथ फैलाया और उनके साथ मैंने भी हाथ आगे कर दिया। सहज-भाव से ऐसा हो गया और अपनी भूल मेरी समझ मे नही आ सकी। बचपन मे पैसे पास मे रहने से चित्त को प्रसन्नता होती है। इसी भाव से प्रसन्नता-पूर्वक मैं भी दक्षिणा के दो आने लेकर घर आया और माता को देने के लिए गया। मानो वे मेरी गाढी कमाई के—खरे पसीने के ही न हो! किन्तु यथार्थ में वे आचार्य लोग जो कि बारह-बारह वर्ष तक वेदाध्ययन करते है, सारे विधि-विधान करते है, केवल उन्हे ही दक्षिणा मिलनी चाहिए। मुझे ये दो आने लेने का क्या अधिकार था? प्रत्येक आदमी के परिश्रम करने और उसका बदला प्राप्त करने मे ही कार्य की शोभा है, समाज की सुव्यवस्था रहती है।

माता ने पूछा "ये पैसे कहा से लाया?" मैंने कहा "विवाह-वालो के घर वाङनिश्चय की दक्षिणा के मिले है।" यह सुनते ही माता लज्जित हो गई; और उसका चेहरा एकदम उतर गया। वह सोचने लगी "अरे, आज हम गरीब हो गये, इस लिए क्या लडके ने दो आने दक्षिणा प्राप्त की? या भूल से किसी ने उसके हाथ पर पैसे रख दिये!" क्योकि जब कोई सुखी और सम्पन्न घर का लडका भूल से भी दक्षिणा के लिए हाथ फैला देता है, तो दक्षिणा बाँटने-वाला भिक्षुक खुद ही उसे कहने लगता है "अरे मूर्ख, तुझे हाथ फैलाना भी चाहिए! तू तो अमुक धनिक परिवार का है नँ?" कही श्याम को तो किसी ने इस प्रकार नही कहा? संभव है किसी को हमारी दशा पर दया आई हो! किन्तु ससार मे कोई हमारी दशा पर दया-भाव

प्रकट करे, इससे बढकर अधिक करुणा-जनक और दु.ख-प्रद स्थिति और क्या हो सकती है ? इस प्रकार माता के मन मे सैकडो विचार उस समय आये होगे। किन्तु फिर भी वह चुपचाप शून्य-दृष्टि से देखती रही !

"माँ, ले नँ ये पैसे ! मै कही से चुराकर थोडे ही लाया हू ?" इस प्रकार मैने घिघिया कर कहा। इस पर माता ने उत्तर दिया "श्याम ! हम गरीब हो जाने पर भी सद्गृहस्थ कहलाते है ! हम भिक्षुक नही है। दक्षिणा लेना हमारा काम नही है। हमे तो दूसरो को दक्षिणा देनी चाहिए। बेचारे भट्ट लोग जो कि वेद-विद्या सीखते है और धार्मिक कार्य करते रहते है, उनके पास खेत-पात भी नही होता। उनके लिए केवल दक्षिणा लेना ही आय का साधन है।"

यह सुन मैने कहा "परन्तु हमारे गाँव के वे पाडु भट्टजी तो बहुत बडे धनाढ्य है। उन्हे क्यो दक्षिणा लेनी चाहिए ? वे तो साहुकारी लेन-देन भी करते है और उनके खेती-बारी भी है।"

माता ने उत्तर दिया "यह उनका दोष है। पहले जब भट्ट लोगो को अधिक दक्षिणा मिलती थी तो वे गरीबो को बाँट देते थे, या फिर गरीब लडको को अपने घर रखकर पढाते थे। तूने उस "पाण्डव-प्रताप" ग्रथ मे नही पढा कि नल राजा ने ब्राह्मणो को खूब धन दिया, किन्तु उन्होने मार्ग मे ही वह सब दूसरो को बाँट दिया। ऋषि-मुनियो के आश्रम मे भी अनेक ब्रह्मचारी रह कर वेदाभ्यास करते थे। किन्तु यहा हमारी गणना सद्-गृहस्थो मे होती है। हमे कभी दक्षिणा नही लेनी चाहिए। अब भूल कर भी किसी के सामने हाथ मत फैलाना। अरे, रोहिदास ने तो प्याऊ का धर्मार्थ पानी तक नही पिया। गृहस्थ का धर्म है कि गरीबो को दान दे, किन्तु दूसरो से ले कभी नही।"

इसके बाद माता ने वे दो आने हमारे पडौस मे रहने वाले एक गरीब को दे डाले। मित्रो ! हम दूसरो से जितना भी बिना श्रम का पैसा लेते है; उतने ही हम उनके दबैल बन जाते है। हमारा सिर उनके सामने झुका हुआ रहता है। हम दूसरो का मुँह ताकने वाले बन जाते है। इस प्रकार दूसरो के आश्रित हो कर जीना पाप ही है। इसी प्रकार अभिमानी बन कर उन्मत्तता से जीना भी पाप ही है। ससार मे किसी के दबैल हो कर

रहना बहुत बुरा है। यूरोप आदि देशो मे स्वाभिमानी वृत्ति रखना बचपन से ही सिखाया जाता है। इसी लिए वहां माँ-बाप के पैसे पर जीना भी हीनता का लक्षण समझा जाता है। अमेरिका के प्रेसिडेण्ट हूवर के विषय मे कहा जाता है कि; उन्होने अपने तेरह वर्ष के लडके को मजदूरी करने के लिए भेज दिया था। एक ओर मि० वर महान् संपत्ति-शाली राष्ट्र अमेरिका के प्रेसिडेण्ट थे; और दूसरी ओर उनका वह तेरह वर्ष का लडका एक देहाती सुतार के हाथ नीचे काम कर रहा था। एक ऊंची इमारत बन रही थी, और उसी पर से काम करते हुए प्रे० हूवर का लडका नीचे गिर कर मर गया! यद्यपि इस घटना से हूवर साहब को बहुत दु ख हुआ; परन्तु फिर भी उन्होने यही कहा कि "मेरे राष्ट्र (देश) को स्वावलम्बन और परिश्रम की महत्ता सिखलाने के लिए ही लडका मरा है।"

स्वावलम्बन पश्चिमी-शिक्षा के लिये आधार-स्तभ रूप है। स्वावलम्बन से ही सिर ऊचा रहता है। परावलम्वी का सिर हमेशा नीचे झुका हुआ ही रहेगा। इस लिए आवश्यकता अब इस बात की है कि बिना परिश्रम के किसी को कुछ न मिल सके; और कोई बिना श्रम के किसी को कुछ दे भी नही। सत तुकाराम कहते है कि "तुका म्हणे देतो, घेतो तोही नरका जातो।" अर्थात् जो किसी को (बिना श्रम के) कुछ देता है वह, तथा लेने वाला दोनो ही नर्क मे जाते है। क्योकि आलसी मनुष्य का पोषण करने वाला भी पापी होता है और आलसी तो पापी होता ही है। किसी भी आलसी को हम जब कुछ देते है तो वह अत्यन्त दीन हो कर याचना करता है; और हम जरा ठसक मे रहते है। इसके विरुद्ध यदि उससे कुछ परिश्रम या काम करवा लिया जाय तो वह दोनो के लिए सन्तोष-कारक हो सकता है। चाहे उससे लक्कड चिरवाले या गड्ढा खुदवाले, अथवा कपड़े धुलवाले या बोझा उठवाले। किन्तु बदले में उससे कुछ न कुछ काम अवश्य करवा लेना चाहिए। इसी मे उस मनष्य का यथार्थ उद्धार है। उद्योग-हीन का पोषण करना ईश्वर के अपमान करने जैसा है। क्योकि उसको दिए हुए हाथ-पाँव का, बुद्धि या शक्ति का इसमें प्रत्यक्ष अपमान होता है। स्वावलम्बन, स्वाभिमान और परिश्रम की महत्ता आज रशिया (रूस) में सिखलाई जा रही है। हाल ही मे एक अमेरिकन

मानसशास्त्रज्ञ रशिया जा कर लौटा है। उसकी इस यात्रा का उद्देश वहा की परिस्थिति और अन्तर्बाह्य परिवर्तित अवस्था का अध्ययन करना था। इस लिये वह अपने साथ मजदूरो को बाँटने के लिये फाउण्टेन-पेन, चाकोलेट की गोलियाँ, कैंची, चाकू आदि कई चीजे ले गया था। किन्तु जब वह मजदूरो के मुहल्ले मे जा कर उन्हे ये सब चीजें बाँटने लगा, तो किसीने भी उसके सामने हाथ नही फैलाया और न किसी ने कोई वस्तु ली ही। उसने उन लोगो से कहा कि "भाईयो! मै ये सब चीजें केवल प्रेम-भाव से दे रहा हू, इस लिए आप को लेना चाहिए।" किन्तु उन मजदूरो ने यही उत्तर दिया कि "अपने परिश्रम से ही हमे ये वस्तुएँ प्राप्त करना उचित है। बिना श्रम के दूसरे की दी हुई किसी भी वस्तु को लेने से मन में आलस्य, दबैल-वृत्ति और परावलम्बन का भाव जागृत हो सकता है। किन्तु इन दुर्गुणो को हमने अपने पास तक न फटकने देने का निश्चय कर लिया है।"

इस उत्तर से वह अमेरिकन मनोवैज्ञानिक चकित हो गया। उसने देखा कि रूस मे आज कैसी विचार-क्रान्ति हो रही है। जिस रशिया में दी हुई वस्तु लेने को हजारो हाथ सामने बढ जाते थे, आज वहा एक भी हाथ सामने नही आ सका! यह कितना महान् स्वावलम्बन! कैसा दिव्य तेज और कितने भव्य रूप मे श्रम की पूजा है!

श्रम करने मे ही आत्मोद्धार है और मुफ्त देने या लेने मे पतन। जिस दिन यह सिद्धान्त भारत-सतान हृदयगम कर लेगी, वही उसके उद्धार का सुदिन होगा। इस समय घर में और बाहर एवं शाला और समाज मे सर्वत्र यही उपदेश दिया जाना चाहिए। जूँठा किसी को दिया ही न जाय, इसके लिए धर्म का कठोर नियम बन जाना आवश्यक है। सच्चा धर्म परिश्रम की भावना को उत्तेजन देना ही है। आलसी बनकर भीख माँगनेवाला और धनाढ्य होने से गद्दी पर लोटनेवाला दोनो ही कीडे हैं, निंदनीय हैं। क्योकि धनिक भी दूसरे के परिश्रम पर जीता है और आलसी या भिखारी भी दूसरे की कमाई पर ही पेट भरता है। ये दोनो ही समाज-रूपी वृक्ष पर की चिमगादडो के समान है। गर्मी-सर्दी या भूख-प्यास मे काम करनेवाला मजदूर या रास्ते झाडनेवाला मेहतर; अथवा मल-मूत्र उठानेवाला भगी, मरे हुए पशुओ को चीरनेवाला चमार या

जूते वनाने वाला मोची ये सव मुफ्तखोरो की अपेक्षा हजार दर्जे श्रेष्ठ है, पवित्र है। इस लिए किसी न किसी उपयोगी वस्तु का निर्माण हमे अवश्य करना चाहिए। चाहे विचार का निर्माण करे या अन्न-जल अथवा स्वच्छता का, किन्तु कुछ न कुछ मंगलकारी, सुन्दर एव हितकर निर्माण अवश्य करना चाहिए, तभी हमे ससार मे जीने का अधिकार हो सकता है। क्योकि जिस देश मे समाज-सवर्धक, समाज-रक्षक और समाज-पोषक श्रम की पूजा होती है, वह राष्ट्र अवश्य वैभवशाली होता है और शेष सभी भिखारी वनते है।

मेरी माता ने मुझे स्वाभिमान सिखाया और परावलम्वी होना मृत्युवत् वतलाया। उसने सिखाया कि "दूसरो से लो मत, बल्कि दूसरो को जो कुछ हो सके उचित श्रम ले कर देते रहो।"

---

१५ स्वर्गिय-स्नेह

हमारी माँ श्रीखण्ड की टिकिया (वर्फी) वनाना वहुत अच्छा जानती थी। उसके हाथ से कभी कोई पाक (चाशनी) विगड़ने नही पाती थी। उसके हाथ की बर्फियाँ खस्ता और स्वादिष्ट वनती थी। इस लिए उसे प्राय अडौसी-पडौसी वर्फियाँ वनाने वुलाया करते और माता भी वडे प्रेम से जाती थी। क्योकि उसे किसी भी रूप मे दूसरे के उपयोग में आ सकने मे आनद होता था।

पार्वतीवाई की लड़की वेणू नैहर आई थी और मेरी माता से पार्वतीवाई का घनिष्ट प्रेम था। वेणू भी अनेक वार हमारे यहा आती और माता उससे गीत सुना करती थी। एक दिन जव माता मुझपर वहुत क्रुद्ध हुई तो वेणू ने ही मेरे आँसू पोछे थे। इस प्रकार वह मेरे लिए वड़ी वहन की तरह वन गई थी।

उस दिन पार्वतीवाई ने आ कर कहा "यशोदा वहन, पर्सो वेणू सुसराल जायगी। मै सोचती हूं कि उसके साथ थोड़ी-सी श्रीखण्ड की

वर्फियाँ भी दे दू । क्या कल तीसरे पहर आ कर तुम वर्फियाँ वना दोगी ? तुम बहुत अच्छी वर्फियाँ वनाती हो। उसकी सुसराल भेजना है, इस लिए यदि वे अच्छी हुई तो इसमे हमारे लिए अच्छाई है ।"

माता ने कहा "मै अवश्य आऊगी वहन ! पर्सों ही वेणू सुसराल चली जायगी क्या ? मै तो समझी वह सक्रान्ति तक रहेगी । मेरा भी उसके आने से कुछ मनोरजन हो जाता था । वह मेरे पास आकर वाते करती और गीत भी सुनाती रहती थी ।"

इस पर पार्वतीवाई ने उत्तर दिया "उसके श्वसुर का पत्र आया है कि भेज दो ! वहन, लड़की एक बार सुसराल चली जाने के वाद फिर वह हमारी थोडे ही रह जाती है । चार दिन के लिए आ गई, यही वहुत है । उस कृष्णा को सुसराल वाले दो वर्ष हो जाने पर भी नैहर नही भेजते । उसकी माता उस दिन बेचारी रोने लगी थी, उससे तो वेणू की सुसराल वाले अच्छे है । हा, तो कल अवश्य आना । वेणू को तुम्हे वुलाने के लिए भेजूगी, अच्छा ! अब मै जाती हू ।"

माता ने उनके मस्तक पर कुकुम लगाया और पार्वती मौसी विदा हुई। दूसरे दिन दो-पहर का भोजन हो जाने के वाद माता की तवियत कुछ ठीक नही थी। जैसे-तैसे चौका-वर्तन कर के वह विस्तरे पर पडी हुई थी। मैने पूछा "माँ, आज अभी से कैसे सो गई ?"

उसने कहा "श्याम, मेरा शरीर दर्द करता है ! क्या थोडी देर दावेगा ? यह सुन तत्काल ही मै उसका शरीर दवाने लगा। उसका सारा शरीर गर्म हो रहा था और सिर मे भी जोरो का दर्द था।

किन्तु थोडी ही देर के वाद मै तो खेलने चला गया। इधर पीछे से वेणू माता को वुलाने आई। उस समय माँ सोई हुई थी। वेणू ने आते ही मधुर स्वर मे कहा "चलती हो न मौसी ! माँ तुम्हारी बाट देख रही है।"

माता ने विस्तर से उठते हुए उससे कहा "वैसे ही जरा लेट गई थी, सो आँख लग गई। मै भूली नही थी वेणू ! अभी कुछ देर मे आने ही वाली थी ! अच्छा, चल !"

माता ने वेणू के घर जा कर वर्फियाँ बनाना आरम्भ किया। साथ ही इधर-उधर की बाते छिड़ गई। मै खेलकर जब घर लौटा तो देखा कि

माता वहा नही है। इस लिए उसे खोजने लगा। अन्त मे वेणु के घर जा पहुँचा। मुझे आँगन मे देखते ही उसने कहा "क्यो श्याम! माँ को ढूढने आया है! आओ; मौसी यही है। वे मेरे लिए वर्फियाँ वना रही है। मै कल सुसराल जाने वाली हू, समझा!'

उसके मुँह से सुसराल जाने की वात सुन मैंने कहा "तो वहन, फिर मेरे आँसू कौन पोछेगा? माँ के नाराज होने पर मेरा वचाव कौन करेगा?" और सचमुच ही मुझे उसके सुसराल जाने की वात सुनकर वडा दुख हुआ।

उसने कहा "आओ, श्याम! हम वर्फी के लिए केसर घोटकर तैयार कर ले, नही तो तू इलायची छीलकर उनके दाने निकाल और मैं इसे घोट देती हू। इस प्रकार मैंने वेणू के काम मे हाथ वँटाया। उसने खल मे केसर घोट कर तैयार की और मैंने इलायची छीलकर चूर्ण कर दिया।

इसके वाद मुझे देखकर माता ने पूछा "श्याम! तू यहा कैसे आगया रे?"

मैंने तत्काल उसके पूछने का रुख पहचानकर कहा "मै कोई वर्फियाँ चखने नही आया हू! क्यो वेणू जीजी, क्या मैं ऐसा लालची हू? उस दिन भी तूने ही मुझे खाने की चीज दी थी; मैंने माँगी ता नही थी नँ?"

वेणू ने कहा "नही श्याम! तू वडा अच्छा भैया है। मौसी तुम इस पर व्यर्थ नाराज मत हो जाया करो!"

माँ ने कहा "वेणू! क्या मुझे यह प्यारा नही है! किन्तु किसी समय यदि मै नाराज हो जाती हू तो वह इसके भले के लिए ही तो होती हू। दूसरा कोई इसे वुरा न कहे, इस लिए माँ के नाते मै कभी दो वात कडी भी कह देती हू। यह जो भी भला है, किन्तु मै तो यही चाहूगी कि यह और भी अच्छा वने। हां, पार्वती वहन! अव चाशनी तैयार हो गई, देखो, ये गोलिया भी वनने लगी।"

थालियो मे वर्फियाँ थापी जाने लगी। माँ केल के पत्ते से उन्हे थाप रही थी। पाच ही मिनट के वाद ठण्डी हो जाने पर माता ने चाकू से उन्हे

काटना आरम्भ किया। और कहा "थोडी देर मे इन्हे निकाल लेना। अब मै घर जाती हू।" इस पर वेणू बोली "जरा देर और ठहरो न मौसी! तुम्हारे ही हाथ से सब कुछ हो जाने दो।" माँ इन्कार न कर सकी और थोडी ही देर के बाद उसने खोंचे से बर्फियाँ अलग-अलग कर के निकाल ली। बडी सुन्दर बनी थी वे। पार्वती मौसी ने उन्हे एक डिब्बे मे भर दिया और वेणू ने एक बर्फी देवता के सामने ले जा कर रख दी तथा दूसरी मुझे दी। तब तक मौसी ने कहा "श्याम, ले यह थालियाँ खरोच कर खा ले।" मै भी वीर पुरुष की तरह आगे बढा और थोडी ही देर मे थालियो को खरोच कर बचत-खुचत का सब माल साफ कर गया। चलते समय मौसी ने मेरी माता के हाथ मे चार बर्फियाँ रख कर कुकुम लगाने के बाद उसे विदा किया।

किन्तु मै अभी वेणू के घर ही बैठा था। उसने कहा "श्याम! तेरे कुर्ते का बटन टूट गया है, इसे निकाल दे तो मै दूसरा बटन लगा देती हू।" यह सुन तत्काल ही मैने कुर्ता खोलकर उसे दे दिया। उसने भी उसी क्षण अपनी थैली मे से सुई-धागा निकालकर बटन लगाया और दूसरी जगह जहा वह फटा हुआ था, सी दिया। मैने कुर्ता पहना। इसके बाद वेणू ने कहा "चल श्याम! हम गुलदाउदी के फूल तोडकर तेरे घर मौसी के पास ले चले।"

हमने फूल तोडे और उन्हे ले कर घर पहुँचे। मेरे साथ वेणू भी थी। घर आते ही उसने "मौसी" कह कर पुकारा। किन्तु कोई उत्तर नही मिला। इस लिए सोचा कि माता घर मे नही है। तब क्या वह कुए पर गई होगी, या गौशाला मे तो नही चली गई? किन्तु जब भीतर जाकर देखा तो वह बिस्तरे पर अचेत पड़ी हुई थी!

वेणू ने कहा "अरे, तुम तो सो गई मौसी! क्या तुम्हारा जी अच्छा नही है? या चूल्हे के पास बैठने से कुछ तकलीफ हो गई है?' इसके बाद जब उसने माँ के सिर पर हाथ रखकर देखा तो वह आग-सा गर्म हो रहा था। उसने खिन्न हो कर कहा "मौसी! तुम्हे तो बहुत जोर का बुखार चढा है!"

यह सुन मै बोला "वेणू जीजी, माँ तो दो-पहर बाद से ही जी

अच्छा न होने के कारण लेट गई थी । उसी समय मैंने इसका शरीर भी दबाया था।"

इसपर वेणू ने पूछा "तो क्या जब मैं तुम्हे बुलाने आई, तब भी तुम्हारा जी अच्छा नही था ? कदाचित् इसी लिए तुम लेटी हुई थी । मुझे क्या मालूम था कि ऐसी बात है और तुमने भी ऐसी कोई बात नही कही। मौसी! तुम शरीर मे बुखार रहते हुए भी क्यो वहा तक आई ? और आकर भी क्यो इतनी देर चूल्हे के पास रही ? "

माता ने प्रेमपूर्वक कहा "वेणू! उस समय मुझे इतने जोर का बुखार नही था। वैसेही शरीर कुछ दर्द करता था । श्याम! उठो, बेटा दीपक जलाओ । शाम होगई । "

तत्काल उठ कर मैंने दीपक जलाया और देवता एव तुलसी को दिखाया । इसके बाद मैं फिर माँ के पास आ कर बैठ गया! वेणू को अपनी भूल पर बहुत बुरा लग रहा था । उसने भरे हुए कठ से कहा " मौसी, तुमने भरे बुखार में मेरे घर चल कर वर्फियाँ बनाई और इससे बुखार बहुत बढ गया । जी अच्छा नही था तो क्यो इतना कष्ट सहन किया! वर्फी न बनती तो न सही । माँ ही जैसे-तैसे बना लेती । प्राणो से भी क्या वे अधिक थी ? "

किन्तु फिर भी मेरी प्रेममयी माता ने यही कहा कि "वेणू! इतने ही बुखार से तू घबरा गई ? यह तो मामूली बात है । नित्य ही ऐसा हो जाता है । हम बूढी माताओ का कुछ नही बिगड़ता! शरीर मे बुखार हो और सिर भी दर्द करता हो, तो भी कपडो की बड़ी-सी गठरी ले कर हम धोने चली जाती हैं । उसी हालत मे हम दस आदमियो की रसोई भी बना सकती है । इसके लिए तुझे इस प्रकार दुखी नही होना चाहिए । अभी थोडी देर मे पसीना आ जाने पर शरीर हल्का हो जायगा । अब तू भी घर जा, बहन वहा तेरी प्रतीक्षा कर रही होगी । "

किन्तु वेणू माता के पास ही बैठी रही । वह घर नही जाना चाहती थी । मैंने उससे कहा "वेणू जीजी! उन फूलो की माला बनाती हो! माँ को तो बुखार चढा है, तुम्ही बना दो तो अच्छा हो।"

यह सुन उसने माला तैयार करते हुए फिर माता से कहा " मौसी! मेरे कारण ही तुम्हे यह कष्ट सहना पडा और बुखार भी आ गया, क्यों ?"

माता ने कहा "अरी पगली जैसी क्या बाते करती है! क्या तू मेरे लिए पराई है? जैसी चद्रकला है वैसी ही तू है। यदि बर्फियाँ अच्छी न बनती और तेरी सुसराल वाले बुराभला कहते तो तुझे दु ख न होता? नैहर के लोगो को दोष दिया जाने पर तेरी आँखो मे आँसू आये बिना नही रहते? इसी लिए मै वहा आई थी कि सुसराल मे नेहर वालो की बुराई सुन कर दुखी होने का तेरे लिए अवसर न आ सके। पार्वतीबाई के साथ मेरा बहन से भी अधिक प्रेम है। इस लिए यदि उनके आग्रह पर मैंने तेरे लिए थोडा-सा कष्ट भी सहन कर लिया, तो क्या अहसान किया? जैसे तुझे श्याम पराया नही जान पडता, उसी प्रकार तू भी मेरे लिए कोई दूसरी नही है। और, इसमे कष्ट ही क्या हुआ? उल्टा मुझे तो सतोप ही होता है। क्योकि यदि मै बर्फियाँ बनाने न आ सकती तो यह बात बराबर मेरे हृदय में खटकती रहती! अच्छा, अब तू घर जा। मै सबेरे आऊगी। रात मे पसीना आ कर बुखार उतर जायगा। सबेरे बिल्कुल ठीक हो जाऊंगी।"

यह सुन वेणू जीजी ने मुझे प्रेम से अपने पास बुला कर कहा "श्याम! तू मेरे साथ चल। माँ ने चौले की फली भूनी है, सो थोड़ी-सी तेरे हाथ भेज दूगी। इससे यदि मौसी ने केवल भात ही बनाया होगा तो भी काम चल जायगा। नही तो मै ही भात चूल्हे पर रखे जाती हू।"

माता ने कहा " वेणू! भात तो यह श्याम रख देगा। तू तो उसके साथ कुछ लगावन या चटनी भेज दे; बस उससे काम चल जायगा।" फिर भी उसने माता की बात न सुनी और चूल्हा सुलगा कर चावल धोया, इसके बाद अदहन् आते ही उसमे चावल डालकर वह घर चली गई। मैं भी उसके साथ ही गया और चौले की चटनी ले कर लौट आया। आते ही मै माता के गले मे हाथ डालकर उसकी ओर देखने लगा। मेरे नेत्रो में आँसू आ गये थे। माता ने पूछा " क्या हुआ? बेटा श्याम!"

मैंने कहा " माँ, वेणू कहती थी कि 'श्याम! तेरी माता बडी उदार है! तू हमेशा उसकी आज्ञा को मानते रहना! तेरा बडा भाग्य है जो

ऐसी माँ तुझे मिली।' यों कह कर उसने प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फिराया और उसी समय मुझे ऐसा रोना आया कि मैं अवतक अपने आप को नही सम्हाल सका हू।"

"जा बेटा! भात तैयार हो गया होगा उसे उतार कर नीचे रख दे, नही तो पेंदे मे लग जायगा।" माता की आज्ञानुसार मैंने जा कर भात का तपेला नीचे रख दिया। दूसरे दिन वेणू जीजी सुसराल चली गई। हम सब को बहुत बुरा लगा। वे श्रीखण्ड की वर्फियाँ मुझे आज भी याद आती हैं। वेणू की माता और मेरी माता दोनों ही चली गईं और अब तो वेणू भी इस ससार मे नही रही। किन्तु उनका वह प्रेम आज भी मेरे अन्त करण मे सचित है। वह अमर है। "मनुष्य मर जाते हैं, किन्तु उनके सद्गुण सदैव जगमगाते रहते हैं।"

---

१६ रघुपति राघव राजाराम

बचपन मे मैं देवी-देवता की बहुत भक्ति करता था। अनेक पुस्तके पढकर मेरे हृदय में भक्ति का जो बीज अंकुरित हुआ था, वह धीरे-धीरे बढ रहा था। पाठशाला के लड़के मेरे घर आते और मैं उन्हे देवी-देवताओ तथा संत-महात्माओ की कथाएँ सुनाया करता था। मैंने अपने लिए खेलने को एक छोटा-सा देवालय बना कर उसे अच्छी तरह से बेलबूटे एवं कागज आदि से सुसज्जित कर लिया था। उसमें मैंने शालिग्राम की सुन्दर बटिया (शिला) स्थापित की थी। मेरे वे देवता बड़े तेजस्वी दिखाई देते थे; और इसी लिए कभी-कभी मेरी इच्छा भी 'चंद्रहास' की तरह उस शालिग्राम की बटिया को हमेशा मुँह मे रखने की होती थी।

रविवार को छुट्टी होने पर मैं अपने मित्रो के साथ बहुत देर तक भजन किया करता; और कभी-कभी हम लोगो के कथा-कीर्तन भी हो जाते थ। हमारे पास मृदग या तबला-पेटी तो थे ही नही; इस लिए घर मे पड़े

हुए खाली टिन् के डिब्बे ले कर उन्ही को जोरों से बजाते और भजन गाते रहते। यहा तक कि हमारे भजन से सारी गली गूँज उठती।

रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम॥
हरे राम हरे राम रामराम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्णकृष्ण हरे हरे॥

आदि कितनी ही नाम-स्मरण की ध्वनियाँ उच्चारण करते हुए हम नाचने लग जाते थे। इसी प्रकार अन्यान्य भक्तजनो की पुकार के भजन भी जो-जो हमें याद थे, हाथ जोड़ कर करुण-स्वर मे गाते रहते थे:—

नाथ कैसे गज को फन्द छुड़ायो* !
गज अरु ग्राह लड़े जल भीतर लडत-लड़त गज हार्‍यो।
तिलभर सूंड रही जल बाहर, तब हरिनाम उचार्‍यो॥ १॥

भक्त के हेत गरुड़ वाहन तज, नंगे पाँवहि धाये।
चक्र-सुदर्शन काट ग्राह सिर, जन के प्राण बचाये॥ २॥

हिरनाकुश, प्रल्हाद-पुत्र को, मारन-हित जब धायो।
खंभ फाड़ि नरसिंह रूप धरि, भक्त हृदय हरि लायो॥ ३॥

कौरव सभा बीच दुःशासन, द्रुपद-सुता धरि लायो।
साड़ी खींच उघारी कीन्ही, तब हरि चीर बढ़ायो॥ ४॥

पाण्डव-रक्षा हेतु युद्ध मँह, अर्जुन मान रखायो।
सारथि बनिकै रथहू हाँक्यो, कौरव-वंश हरायो॥ ५॥

गोपी-जन-मन-रंजन-हित हरि उद्धव सखा पठायो।
यादव कुल मर्याद पालि प्रभु, व्रज को प्रेम बढ़ायो॥ ६॥

---

* गजेन्द्राची ऐकून करुणा। सत्वर पावलासी जगज्जीवना।
प्रल्हादरक्षका मनमोहना। पावे आतां सत्वर॥
द्रौपदीलज्जानिवारणा। पाण्डवरक्षका मधुसूदना।
गोपीजनमानसरंजना। पावे आतां सत्वर॥
अनाथनाथा रुक्मिणीवरा। भीमातीरवासी विहार[illegible]
जगद्वंद्या जगदुद्धारा। पावे आतां सत्वर॥

पत्र पाय रुक्मिणी प्रिया को, दलबल सह तुम आये।
रथ बिठाई ले गये द्वारिका, पटरानी पद पाये ॥ ७ ॥

हे जन-रक्षक, मधुसूदन, तव माया भेद न पायो।
हे जगदीश, अनाथ-नाथ हे, विनय सहित सिर नायो ॥ ८ ॥

इत्यादि भजन मुझे आज भी याद है और ये अब भी मेरी आत्मा को, चित्त-वृत्ति को, गद्‌गद्‌ कर देते हैं।

यद्यपि उस समय मैं बहुत बडा नही था। पाचवी कक्षा मे पढता था और अवस्था भी यही कोई दस-ग्यारह वर्ष की रही होगी। किन्तु भक्ति-भावना की दृष्टि से मैं आज की अपेक्षा उस समय बहुत बड़ा था। उस समय न किसी बात की शका थी और न कोई सदेह। मधुर, श्रद्धायुक्त, भावपूर्ण भक्ति का मेरे हृदय मे भडार भरा था। निर्जला, देवशयनी, देवोत्थानी और मोक्षदा आदि अनेक एकादशियो के व्रत मैं नियम-पूर्वक करता; सध्या, गायत्री एव भगवन्नाम का जप, वैशाख, कार्तिक और माघ का स्नान आदि भी मैं यथा-नियम करता था। "कथामारामृत" नामक ग्रथ मे इन स्नानो का बहुत महत्त्व बताया गया है। उसमे एक स्थान पर लिखा है कि स्नान कर के शिखा (चोटी) को दाहिनी ओर निचोड़ने से वह जल अमृत हो जाता है। एक राजपुत्र के मुख मे किसी तपस्वी ब्राह्मण ने इस प्रकार अपनी शिखा का जल दाहिनी ओर से निचोड कर उसे जिला दिया था। यह कथा पढकर मुझे इस सिद्धान्त की सत्यता पर विश्वास हो गया। इसी लिए एक दिन हमारे गाँव मे रात को एक मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर मैंने माँ से पूछा कि "यदि मैं भी प्रात काल उठकर स्नान कर लू और अपनी चोटी का जल दाहिनी ओर से उस मुर्दे के मुँह मे निचोड दू तो क्या वह बेचारा जी उठेगा ?" मेरी इस विचित्र बात को सुनकर माता हँसी और कहने लगी "श्याम तू तो निरा पागल है !"

मैं आज नहीं बता सकता कि, उस समय की वह भोली श्रद्धा अच्छी थी, या वर्तमान सदिग्ध और तर्क-पूर्ण मनोवृत्ति। परन्तु इन बातो को जाने दीजिये। मैं आज जो कहानी सुनाने वाला हूं वह कुछ और ही है।

चातुर्मास मे हमारे गाँव के गणपति-मदिर मे प्रतिदिन कथा

होती रहती थी। बाहर से एक शास्त्रीजी आते और चार महिने तक वे हमारे गाँव मे रहते थे। शाम को चार-साढेचार बजे कथा आरम्भ हो जाती थी। गणपति-मदिर हमारे घर से निकट ही था। उन दिनो हम नानी के घर में ही रहते थे। अत. यदि कथा जोरो से होती तो सामने हमारे घर मे साफ सुनाई देती थी। कथा मे दस-पाच पुरुष और पद्रह-बीस स्त्रियाँ आती थी।

उस दिन रविवार था। मदिर में कथा हो रही थी। माँ कथा सुनने चली गई थी। किन्तु वहा प्राय वह अधिक देर नही बैठती थी। कुछ देर कथा सुनने के बाद देव-दर्शन कर के वह घर लौट आती थी। इस लिए उस समय घर मे दूसरा कोई नही था, हम सब लड़के ही वहा एकत्रित थे। सबने मिल कर भजन करने का निश्चय किया और घर मे से खाली टिन् के डिब्बे निकाल कर उनकी ताल पर भजन का रग जमाना आरम्भ किया। हम लोग गाते-गाते नाचने लग गये। डिब्बो का वह कर्कश-स्वर भी भक्ति-भाव की धुन में ठीक ताल से बजने के कारण हमे वडा ही प्रिय जान पडता था। बचपन मे प्राय: सभी स्वरो में सगीत का आनद प्राप्त होता है। बच्चो को डिब्बे कूटने मे आनन्द प्रतीत होता है, और बड़ो को उसीसे उकताहट होने लगाती है!

"श्रीराम जयराम जयजय राम"

के घोष से हमने सारे घर को गूँजा दिया। हम सब मस्त हो कर जोरों से गाने लगे—

षट् रिपु से हम करते कुश्ती। है चढ़ी प्रेम की मदमस्ती,*
हां चढी प्रेम की मदमस्ती, रे चढी प्रेम की० ॥

इस प्रकार हमारे कोलाहल से देवालय की कथा मे बाधा पडने लगी। शास्त्रीजी की कथा किसी को भी ठीक तरह पर नही सुनाई देती थी। इससे चिढ कर एक व्यक्ति ने कहा "कैसे बदमाश लड़के है!"

---

*प्रभुसवे लढूं आम्ही कुस्ती। प्रेमाची चढली मज मस्ती रे,
प्रेमाची चढली मज मस्ती॥

"यह सब उस श्याम की शरारत है। यहा कथा हो रही है, यह बात क्या उसे मालूम नही है?—किन्तु घर के लोगो को यह सब कैसे सहन होता है? वे क्या इनको बन्द नही कर सकते।"..."अरे, भाई आज-कल तो लडको को प्यार कर के सिर पर चढाया जा रहा है।" इस प्रकार विभिन्न श्रोताजन मदिर मे चर्चा करने लगे। किन्तु उधर हमारा भजन उतने ही जोर-शोर से चल रहा था। हमे आसपास के जगत का भान ही नही रह गया था।

तत्काल ही मदिर मे बैठे हुए श्रोताओने वहा के परिचारक साधु को आज्ञा दी कि, वह मेरे घर आकर यह हल्लागुल्ला बन्द करने को कहे, और हमें बतलावे कि मदिर की कथा मे इससे गड़बड़ हो रही है। किन्तु उसके आने से पहले ही मेरी माता मंदिर से लौट कर घर चल दी थी। वहा लोगो के मुँह से निकले हुए निदाजनक शब्द सुनकर उसे बहुत बुरा लगा था। वह शीघ्रता से घर की ओर आ रही थी। इधर हमने हल्ला मचाकर सारे घर को सिर पर उठा रखा था।

माता के आने का हमे भान तक न हुआ। वह आकर खड़ी हो गई, तब भी हम गाते और नाचते ही रहे। अन्त में उसने क्रुद्ध हो कर कहा "श्याम!" उसकी वाणी से क्रोध झलक रहा थी। मै एकदम चौका और भजन रुक गया। ताल और डिब्बो की मृदंग भी मौन हो गई। माता बे-तरह क्रुद्ध हो रही थी।

"क्या हुआ माँ?" मैने पूछा।

इस पर उसने उसी क्रोधयुक्त वाणी में कहा "अरे, तुझे शर्म नही आती इस प्रकार ऊधम और हल्ला मचाते हुए!"

"माँ! क्या यह ऊधम या व्यर्थ का हल्ला है? अरी, हम तो देवता के सम्मुख भक्ति-भाव-पूर्वक भजन गा रहे थे। तूने ही तो मुझे यह शालि-ग्राम की मूर्ति दी है? देख तो वह कितनी सुन्दर दिखाई देती है? उस-का कैसा अद्भुत और दर्शनीय शृगार किया गया है। परन्तु तू तो क्रुद्ध हो गई! माँ?" मैने अत्यन्त स्नेहभाव से उसका पल्ला पकड़ कर पूछा। इतने ही में मंदिर का वह भीका गुँसाईं आकर कहने लगा "श्याम!

मदिर मे कथा हो रही है। तुम्हारा यह हल्लागुल्ला बद कर दो। इसके कारण किसी को भी ठीक से कथा नही सुन पडती।"

यह सुनते ही मेरे एक साथी ने उसे दुत्कारते हुए उत्तर दिया कि "जाओ, हम बद नही करेगे। उनकी वहा कथा चल रही है तो यहा हमारा भी तो भजन-कीर्तन हो रहा है।"

इस पर माता ने कुछ शात हो कर कहा "किन्तु श्याम, यदि कुछ धीरे भजन करो तो क्या बुरा है? और ये खाली डिब्बे क्यो बजा रहे हो? और इन झाझ-मजीरो की भी क्या आवश्यकता है? केवल जोरो से चिल्लाने से ही परमेश्वर प्रसन्न होता हो, ऐसा तो नही है। यदि हमारे कारण दूसरो को कष्ट होता हो तो वह भजन किस काम का?"

यह सुन मैंने कहा "किन्तु साधु-सत भी तो ताल बजा कर भजन किया करते थे।"

"परन्तु वे जान-बूझ कर दूसरो को कष्ट देने के लिये तो नही बजाते थे! यदि उनके कारण दूसरे को कष्ट होता तो वे तत्काल भजन बद कर देते थे। श्याम! तुझे देवता का नाम प्रिय है या ये डिब्बे कूटना?" माँ ने पूछा।

इसपर तत्काल मैंने उत्तर दिया "ताल-मँजीरे बजाने से भजन का रग जमता है और कोरा नामोच्चार करने से जी उकता जाता है।"

"परन्तु ताल को सम्हालने के लिए धीरे-धीरे तालिया बजाने से भी तो काम चल सकता है। किसी काम के लिए व्यर्थ हठ नही पकड बैठना चाहिए। वाद्य बजाना कोई महत्त्व की बात नही है। किन्तु तुम्हे तो भगवान के नाम की अपेक्षा यह हल्लागुल्ला ही अधिक प्रिय है। श्याम! भला, जिस पूजा के कारण व्यर्थ ही दूसरे को कष्ट होता हो, वह पूजा किस काम की? मेरी पूजा दूसरो के लिए बाधक न हो, मेरी प्रार्थना दूसरे की प्रार्थना में बाधक न हो, इसका भी तो ध्यान रखना चाहिए। यदि तुम लोग धीरे-धीरे भजन करोगे तो तुम्हारा भी काम चलेगा और मंदिर में कथा भी होती रहेगी। भीकू, तू जा मदिर मे; अब ये लोग हल्ला नही करेगे।" यो कहकर माता चली गई और भीका भी चल दिया।

इधर हमारे साथियो मे वाद-विवाद छिड़ गया। एक ने रोष मे

आ कर कहा "आगये बड़े डुड्ढाचार्य हमारा भजन बंद कराने। उनकी कथा से तो हमारा भजन ही परमात्मा को अधिक प्रिय होगा। कथा सुनने-वाले वही बैठकर कथा समाप्त होते ही उसी स्थान पर लोगो की निंदा-स्तुति करने लग जाते है।" इसी प्रकार दूसरे साथियो ने भी अपना-अपना मत प्रकट किया, किन्तु यह निश्चय न हो सका कि क्या किया जाय! अत मे मैंने कहा "यह हमारे हाथो भूल हुई है! आओ, अब हम धीरे-धीरे भजन गाते हुए केवल तालिया ही बजावे। जोरों से ताल-पीटने मे क्या महत्त्व है?"

इसपर बापू ने कहा "श्याम! तू बडा डरपोक है। हमे यह पसद नही।"

"किन्तु इसमे डरपोक होने की क्या बात है? विचार-पूर्वक आचार करना ही मनुष्य के लिए भूषणास्पद है। अविचार-पूर्वक आचरण करने में क्या कोई विशेष पुरुषार्थ है?" मैंने पूछा।

इस पर मुझसे रुठकर सब मित्र अपने-अपने घर चले गये। उन्हे राम-नाम की अपेक्षा डिब्बे कूटना अधिक प्रिय था। मैं अकेला ही रह गया! किन्तु क्या मै डरपोक था? मैं ठीक निर्णय न कर सका! फिर भी रोते हुए मैं देवता के सम्मुख "रघुपति राघव राजाराम" करता ही रहा।

जैसे बाल्यावस्था मे उस दिन मेरे मित्र मुझे छोडकर चले गये, उसी प्रकार आगे बडा हो जाने पर भी मुझे मित्र लोग छोडकर चले जाएँगे और मैं अकेला ही रह जाऊगा। बचपन की तरह आगे भी रोते हुए राम-नाम जपता रहूगा। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि:—

"तुझे अकेला ही जाना पड़ेगा। जा, तू अपना कन्दील (दीपक) लेकर चला जा। तेरे पीछे लोगो की टीका-टिप्पणी का झंझावात छूटेगा, और तेरे हाथ में का दीपक बुझ जायगा। किन्तु उसे फिर से सुलगा कर तू बराबर आगे कदम बढाते जाना। तुझे अकेला ही जाना पड़ेगा।"

---

१७ तीर्थयात्रार्थ पलायन

सिंहस्थ पर्व पर नाशिक मे और कन्यागत (गुरु) पर वाई क्षेत्र मे बडा मेला लगता है। कहा जाता है कि उस समय उत्तर भारत की गगा, दक्षिण भारतीय गोदावरी और कृष्णा से मिलने के लिए आती है। किन्तु यह एक मधुर कल्पना है। हमारे भारतवर्ष मे प्रकृति के साथ भी कोमल भावनाएँ सन्निहित की गई है। प्रकृति को मानव-परिवार मे ही समाविष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार जब दूर-दूर की नदिया भी अपनी एकता को पहचान कर परस्पर मिलने आती है; तब क्या मनुष्य के लिए भेदभाव भुला देने की आवश्यकता नही है? यह महा-राष्ट्रीय है और वह गुजराती; अथवा यह बगाली है और वह मद्रासी या अमुक पजावी है और अमुक हिन्दुस्थानी, इस प्रकार के प्रान्तिक-भेद हम कितने अधिक व्यवहार मे लाते है? किन्तु हमारे उन महान् पूर्वजो ने समग्र भारत की एकता को अनेक प्रकार से हमारे हृदय पर अकित करने के लिए सुन्दर प्रयत्न किया है। अपना स्वतत्र अस्तित्व कायम रखते हुए भी मधुर मिलन किया जा सकता है। गगा सागर से मिली हुई भी है और उसका स्वतत्र अस्तित्व भी है। भेद मे भी अभेद को देखना, यह हमारे पूर्वजो की उदार दृष्टि का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उस वर्ष कन्यागत पर्व होने से हजारो स्त्री-पुरुष यात्रा के लिए वाई जा रहे थे। हमारा छोटा-सा गाँव पालगढ जो भी वाई से दूर था, किन्तु फिर भी हमारे गाँव से कई लोग बैल-गाडिया कर के जा रहे थे। मेरे एक चचेरे नाना—मेरी माता के चाचा (काका) और उनकी पत्नी तथा गाँव के अन्य कई व्यक्ति जाने का विचार कर रहे थे। एकदम दस-बारह गाड़िया जानेवाली थी। पालगढ से खेड और वहा से चिपलूण, इस प्रकार बीच मे मुकाम करती हुई वे गाडिया जाने को थी। बीच में कही जगल मे नदी-किनारे ठहरकर बेसन-भात बनाने और खाकर फिर आगे बढ जाने का विचार हो रहा था। इस प्रकार की यात्रा मे बडा आनन्द रहता है। क्योकि मोटर मे बैठकर भाग दौड करने से हम प्रकृति के साथ मिल-जुल

नही सकते। भला, उस प्रकृति माता के पास जाकर मिनट भर खड़े रहने से क्या आनन्द मिल सकता है ? प्रकृति माता की गोद मे लेटने, उसके पास वैठने और क्रीडा करने मे जो सुख प्राप्त होता है; उसका वर्णन करना असम्भव है। प्रकृति भी हमारे लिए माता के समान ही है। उस माता का जल्दी-जल्दी या भाग-दौड़ मे दर्शन करने से क्या लाभ? उसके पास तो घडी दो घडी वैठना चाहिए। इसी लिए वैलगाडी से यात्रा करने मे वड़ा आनन्द होता है; और उसमे भी रात के समय का आनन्द तो अपूर्व ही होता है। चारो ओर शान्ति छाई रहती है। वृक्षो की झुरमुट मे से अचानक ही वीच-वीच मे तारे और चद्रमा झाकते है और वैलो के गले मे वँधी हुई घण्टियो का स्वर भी उस समय वडा मधुर जान पड़ता है। इसी तरह कही अचानक ही कोई वाघ या सिह मिल जाता है तो सव के होग उड जाते है। उसकी आग की तरह या तारो के जैसी चमकती हुई आँखे देखकर सव स्तब्ध रह जाते है। किन्तु फिर हिम्मत वाँधकर हल्ला करने पर वाघ जगल मे भाग जाता है; और पुन यात्रा आरम्भ हो जाती है। ये सव अनुभव केवल वैलगाड़ियो से यात्रा करने पर ही हो सकते है।

वचपन मे मेरे हृदय मे भक्ति-भाव अधिक होने के कारण कई वार इच्छा हुई कि मै भी इन सव के साथ वाई की यात्रा के लिए जाऊ, तो कितना अच्छा हो! इसके लिए मै माता के भी पीछे पड़ा हुआ था। किन्तु मेरी वात पर किसी ने भी ध्यान नही दिया। इस लिए मुझे वहुत वुरा लगा। मैने फिर एक वार माता से आग्रह किया कि "मुझे जाने दे नँ माँ! मार्ग मे कही भी कोई हठ नही करूगा। गहरे पानी मे नही जाऊगा और नाना जैसा कहेगे उसी तरह से वरतूगा। तू यदि पिताजी से कह देगी तो वे मना नही करेगे! उस पुस्तक मे स्नान का महत्त्व वतलाया गया है; इसी लिए मैने माघ, कार्तिक और वैशाख मास के स्नान विधि-पूर्वक किये है। किन्तु अब यदि तू मुझे गंगा का भी स्नान कर आने देगी तो वडा अच्छा होगा। क्या तू नही चाहती कि तेरा पुत्र यह श्याम पुण्यवान वने ?"

इसपर माता ने कहा "श्याम! अरे, आज ही सव समाप्त थोडे हो गया है! आगे जव तू वड़ा हो जाय, तव जाना गगा-स्नान के लिए। आज

हम गरीब है। कुछ न हो तो भी पांच-दस रुपये तो तेरे लिए देने ही पड़ेंगे। कहां से लावेंगे ये रुपये ? इस लिए माता-पिता की आज्ञा ही तुझे गंगा-गोदावरी और कृष्णा के समान समझना चाहिए। वह भक्त पुण्डलीक माता-पिता के चरणो को छोड़कर सामने प्रत्यक्ष भगवान के आ खड़े होने पर भी नही उठा। वह उनके पैर ही दबाता रहा। क्यों सच है नें ? "

किन्तु मैंने कहा " माँ ! ध्रुव तो माता-पिता को छोड़कर चला गया था ? पुराणो मे दोनो ही प्रकार के उदाहरण मिलते है। माँ ! आगे की बात कौन जाने ? अच्छे काम का विचार मन मे आते ही उसे तत्काल कर डालना चाहिए। उसके लिए समय और मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। यह बात सत्यनारायण की कथा में भी तो कही गई है। माँ ! मैं जाऊं क्या ? यदि नानाजी से कहा गया तो वे मुझे मुफ्त में ही बिनाखर्च लिये साथ ले जायँगे। वे क्या मेरे लिए पैसे मांगेगे ? "

यह सुन माता ने कहा " अरे वे पैसे न ले तो यह उनका बड़प्पन है। परन्तु इस प्रकार हमे दूसरो के अहसान-मंद हो कर साथ जाना क्या अच्छा दिखाई देगा ? क्या दूसरो पर अपना बोझ डालना अच्छी बात है ? दूसरे की जान पर देवता की पूजा नही की जा सकती ! दूसरो के लगाये और पाल-पोस कर बड़े किये हुए वृक्षो पर के फूल तोड़कर देवता को चढाने मे क्या महत्ता है ! हमे स्वत. परिश्रम कर के अपनी कमाई की वस्तु देवता को अर्पण करनी चाहिए। तुझे जाना ही है तो पैदल जा ! है इतनी शक्ति तेरे शरीर मे ? "

मैंने कहा " माँ, मै चलते-चलते थक जाऊंगा। पांच-छह कोस तो चला जाऊंगा, परन्तु उसके बाद ! और तब तक गाड़ियां भी आगे निकल जायेंगी ! तब मेरे लिए साथी कौन होगा ? अकेले मे मुझे डर भी लगेगा। किन्तु गाड़ी के साथ पैदल जाना उन्हे लज्जित करने जैसा होगा ! फिर तो वे मुझे गाड़ी में बिठला ही लेगे। इस लिए उन्हें भी इस बात का पता नहीं लगना चाहिए कि मै पैदल आ रहा हूं। फिर भी उनका साथ तो रहना ही चाहिए। और फिर चालीस-पचास कोस तक मुझसे चला भी कैसे जायगा ? "

इसपर माता ने कहा " तब तो तू केवल ध्रुव की कथा ही कहना जानता

है क्यो ? ध्रुव को तो किसी प्रकार का डर नही लगा ! अरे, जो परमात्मा के पास जाने को निकलता है, उसे भय किस बात का हो सकता है ? सर्प और सिंह भी उसके लिए मार्ग बताने वाले बन जाते हैं; भक्षण करने वाले नही। वह यदि थक कर मार्ग में ही सो जाय और उसके मुँह पर धूप गिरने लगे; तो सर्प फन् फैला कर छाया करते हैं, उसे यदि प्यास लगे तो पक्षी चोच मे पानी ला कर उसके मुँह में डाल देते हैं। यदि भूख लग तो गौमाता आकर उसके मुँह मे दूध की धार छोड़ने लगती है। देवता-परमेश्वर के घर जाने के लिए जो निकल पड़ता है, उसके सभी मित्र, सभी परिवार के और सभी साथी एव सहायक बन जाते हैं। है तुझ मे ध्रुव के समान श्रद्धा-भाव, और उसके जितनी दृढ़ता ? अरे पागल ! यह क्या ? तू तो रोने लग गया ! शान्त हो बेटा ! अरे, हम छोटे आदमी हैं, और अभी तू भी तो छोटा ही है। साथ ही हम गरीब भी हैं। इस लिए यह मूर्खता-पूर्ण हठ छोड़ दे !"

मुझे बहुत बुरा लगा। फिर भी मन मे यही सोचता रहा कि, कल सवेरे यात्रा के लिए जाने वाली मडली गाड़ियो में रवाना होगी, अत. यदि उनके पीछे-पीछे उन्हे पता न लगने दे कर चल दिया जाय तो कैसा ? किन्तु इसी के साथ-साथ ये शंकाएँ भी मन में उत्पन्न होती थी कि; जब मैं थक जाऊ या धूप से घबरा कर बीच मे बैठ जाने पर पीछे रह जाऊंगा; तब मेरी कौन सहायता करेगा ? अथवा मार्ग मे भूख-प्यास लगने पर कौन मेरी खबर लेगा ? पर फिर यह सोचता कि जब बकरी पत्ते खा कर पानी पी लेने मात्र से निर्वाह कर लेती है, तो क्या मै मार्ग मे वृक्षो के पत्ते चबाकर नदी-नाले के पानी से अपना पेट न भर सकूगा ? इस प्रकार मैं इमली, करौंदी आदि की कोमल पत्तिया खाने की मन में योजना करता रहा। विचार करते-करते रात को मुझे कब नीद आ गई, इसका पता ही नही लगा। किन्तु जब मैं सोकर उठा, तब तक सब गाड़ियां रवाना हो चुकी थी, उस दिन शनिवार होने से पाठशाला तो थी ही। अत मैंने झटपट शौच-मुखमार्जनादि से निपटकर फुर्ती से स्नान कर लिया। इसके बाद सध्या और सूर्य-नमस्कारादि कर के तुलसी को जल चढ़ाया और स्लेट-बस्ता ले कर पाठशाला को जाने लगा। यह देखकर माता ने पूछा

"अरे, आज इतनी जल्दी क्यो जा रहा है? मै थोड़ासा नाश्ता (कलेवा) रखती हूं, उसे खा कर स्कूल जाना। वह छोटू, बापू आदि भी तो अभी पढने नही गये है! ठहर जरा!"

इस पर मैंने नाराजी से कहा "मुझे नही चाहिए तेरा नाश्ता। खाने को देती है, परन्तु वाई (तीर्थ) नही जाने देती! मुझे वाई जाने की भूख है खाने की नही। इसी लिए मै अपनी पाठशाला मे जा कर बैठ जाता हू।" यह सुन माता ने भी क्रुद्ध हो कर कहा "फिर मांगना खाने के लिए! देखू तब कैसे मिलता है! सभी बाते तेरे मन लायक ही होनी चाहिए। मानो कही का राजा ही न हो! ऐसा था तो किसी राजा के घर जन्म लेता? भिखारी के घर जन्म ले कर राजा की ऐंठ-ठसक कैसे चल सकती है? अच्छा-सा नाश्ता देती हू तो कहता है मुझे नही चाहिए। तब दो-पहर को भी भोजन मत करना! बडा बेचारा! कहता है खाने की भूख नही! मै भी देखती हू कितने दिन भूखा रहता है सो! चल! वापस लौट!! माँ की कही हुई बात तुझे ध्यान से सुननी चाहिए; समझा!"

किन्तु मै उसकी बात न सुनते हुए चला ही जा रहा था। उस समय तक पाठशाला मे लडके आना आरम्भ नहीं हुआ था। इस लिए मार्ग के गणेश-मंदिर मे जाकर मैंने साष्टाग प्रणाम करते हुए निवेदन किया "हे गजानन, मेरा मनोरथ तुम्ही पूरा करो! तुम्हीं मेरे सहायक बनो।" इसके बाद जब मै पाठशाला के द्वार पर पहुँचा तो वहा मुझे एक भी लडका न दिखाई दिया। साथ ही पाठशाला भी अभी बद ही थी।

फलतः मै अपना स्लेट-बस्ता पाठशाला के बरामदे मे रखकर चल दिया। लडको की दृष्टि से बचने के लिए मै फुर्ती से जा रहा था। कुछ ही देर में मै गाँव के बाहर आ पहुँचा। इसके बाद नदी पार कर के मै आगे बढ चला और तिराहे पर जा कर खडा हो गया। वहा से तीन तरफ को अलग-अलग रास्ते जा रहे थे। एक रास्ता दापोली को जाता था और दूसरा खेड को। अत. मै खेड वाले रास्ते से आगे बढा। किन्तु उस समय तक प्रात.काल की निकली हुई गाड़ियाँ न जाने कितनी दूर पहुँच गई थी! भला, उन तक मै दस-ग्यारह वर्ष का लडका कैसे पहुँच सकता था? मुझे उस समय अपना भान ही नही था। किन्तु अब तो धूप सताने लगी।

इधर थक जाने के कारण मुझे रोना भी आ गया। फिर भी वापस जाने मे मुझे शर्म ही लगती थी ! परन्तु यदि घर न लौटता तो जाता कहा ? उस जगल मे मै कितनी देर रह सकता था ?

यही सोच कर लाचारी दर्जे मे वापस लौटा। अपने गाँव की ओर कदम बढाया। आँखो से आँसू टपकते और सूर्य के प्रखर ताप से वे सूख जाते थे। मानो सूर्य-किरणे ही मेरे आँसू पोछ रही थी। मध्य दो-पहर का समय हो गया। सूर्य भी सिर पर आ गया। मै पसीने से तरवतर हो गया। सवेरे से पेट मे भी कुछ नही पडा था ! फिर भी जैसे-तैसे मैं अपने गाँव के किनारे आ गया। किन्तु वापस गाँव मे घुसते हुए शर्म लगती थी। स्वाभिमान कहता था कि "गाँव मे मत जा ! वापस घर मे पाँव मत रख।" किन्तु पेट कहता था कि "सीधा घर पहुँच जा ! घर जाने में किस बात का स्वाभिमान ? माता-पिता को भी कही स्वाभिमान दिखाया जाता है ? प्रेम करने वाले के सामने स्वाभिमान-दिखाना उस प्रेम का अपमान करना है।"

फिर भी मुझे गाँव मे घुसने की हिम्मत न पडी। नदी-किनारे सीतला-माता का मदिर था। यही हमारे गाँव की मुख्य देवी थी। प्रसूता स्त्रियाँ जापे से उठने के बाद अपने बच्चे को ले कर सीतला-माता की सेवा मे उपस्थित होती, और वस्त्र-नारियल आदि उसे भेट चढ़ाती थी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ जब सुसराल से नैहर (पीहर) को आती तो वे भी सीतला-माता के दर्शन करने जाती। मै भी उसी सीतला-माता के मदिर में गया और उसके पीछे की ओर गहरे अँधेरे मे छिप गया।

किन्तु वहा भी मै कितनी देर तक रह सकता था ? पेट मे तो कौवे बोल रहे थे ! अन्त को मुझे लोकलज्जा छोडनी पडी और स्वाभिमान से मुँह मोड़कर मै धीरे-धीरे फिर मदिर से बाहर निकल पडा। वहा से सीधा गाँव के रास्ते पर बढा। थोडी ही देर मे गाँव के घर दिखाई देने लगे। किन्तु मै अपनी गर्दन झुकाये चुपचाप चला जा रहा था। धूप के कारण नगे पैर चट्-चट् कर के जल रहे थे। भीतर हृदय भी जल रहा था और आँखो से आँसू टपक रहे थे। इस प्रकार मैं आगे बढ़ा जा रहा था। कभी आँखो के अत्यधिक भर आने से सामने कुछ भी नही दिखाई देता था।

इसी बीच किसीने आकर मेरी गर्दन पकड ली, और "क्योरे! तू कहा भटक रहा है? तुझे कहा-कहा खोजा जाय? किसी दिन हमारी गर्दन मे तू फाँसी तो नही लगवायेगा?" इत्यादि भर्त्सनायुक्त शब्द कानो पर पडे। वे मेरे चाचा (काका) थे। गाँव मे अनेक जगह मेरी खोज हो रही थी। काका, पिता, और घर एव पड़ौस के सभी आदमी चारो ओर मुझे ढूढ रहे थे। पाठशाला के लडको ने स्लेट-वस्ता ला कर जब घर पहुँचाया; तब पता लगा कि मै कही चला गया हू।

इससे पहले दिन हेडमास्टर ने सुन्दर-अक्षर वाली कापी कुछ खराव होने से मुझे पीटा था। इस कारण उन्होने यही समझा कि मै आज फिर पिटाई होने की आशंका से कही चला गया हू। क्योकि वे सचमुच ही वडे निर्दयी शिक्षक थे। निर्गुंडी की छडियो का एक गट्ठा ही ला कर वे पाठ-शाला मे रख देते और ढोरो-पशुओ की तरह लडको को पीटते थे। छाते की लोहे की तीलियो से भी वे लडको के उल्टे हाथ या उगलियो के पौरो पर मारते थे। वे गाजा पीते और नशे मे धुत् होकर स्कूल मे आते थे। इसी लिए हम देवताओ से मनौती मनाया करते कि उनकी कही बदली हो जाय तो प्रसाद बाँटे। हा, तो मेरे भाग जाने से उन्हे भी वहुत वुरा लगा और उन्होने अपने मन मे यही विश्वास दृढ कर लिया कि पीटा जाने के कारण ही मै घर से कही भाग गया हू। इससे वे कुछ घवराये और उन्हे यह डर भी लगा कि "कही श्याम ने कुए में कूदकर प्राण तो नही दे दिया!" इधर पाठशाला की छुट्टी हो जाने पर जब पिताजी ने मेरे साथ पढ़ने वाले लड़को से पूछा, तो उन्होने पिछले दिन सुन्दर-लेख की कॉपी ठीक न होने से दी गई मार की सजा का हाल वतला दिया। इस लिए पिताजी भी यही समझे कि मै मार के डर से कही भाग गया हू। घर पर पिताजी नित्य-प्रति मुझे सुन्दर अक्षर के छपे खर्रे पर कोरी कलम से लिखावट का अभ्यास करते थे। इस प्रकार मै अपने अक्षर सुधारने का प्रयत्न कर रहा था। अंततः पडौसी लोग भी कहने लगे कि "मास्टर ने व्यर्थ ही श्याम को इतना पीट दिया। लडका न जाने कहा चल गया! अव यदि कुछ कम-ज्यादा हो जाय; अथवा जो न होना चाहिए वह हो जाय तो?" उधर लडको की वात सुनकर पिताजी सीधे हेडमास्टर के

पास गये, और उन्हे बहुत कुछ बुरा-भला कह डाला। इस पर हेडमास्टर ने कहा "आज से आप के लड़के को कोई हाथ तक न लगावेगा; तब तो आप को संतोष होगा! मैं तो इसी लिए उन्हे कुछ दड देता हूं कि वे तुम्हारे योग्य पुत्र बन सके; उनका जीवन सुधर सके। मुझे उसमे क्या मिलने वाला है? किन्तु भाऊसाहब, आज से मैं आप के लडके को हाथ तक न लगाऊंगा।" इस पर फिर पिताजी ने कहा "हाथ तो तुम मत लगाना, परन्तु पहले उसे घर तो आने दो।"

उस दिन घर में सब लोग भूखे ही थे। भोजन बना-बनाया पड़ा हुआ था। मेरे कही चल देने की बात सुनते ही माता के हृदय में शका हुई कि मैं कही वाई क्षेत्र जाने के लिए तो नही भाग गया? किन्तु फिर भी उसने यह बात किसी से नही कही। क्योकि उसे यह शका असम्भव-सी जान पडी। अस्तु। जब चाचाजी मेरा हाथ पकड़ कर घर की ओर ले चले; तब रास्ते मे लड़को की बड़ी भीड एकत्र हो गई। जिस प्रकार किसी चोर को देखने के लिए लोग इकट्ठे हो जाते है; उसी प्रकार मुझे देखने के लिए बहुत-से लड़के इकट्ठे हो गये। मार्ग में पिताजी भी मिले। उन्होने क्रोध-पूर्वक लडको को ललकारते हुए कहा "जाओ अपने-अपने घर! यहा क्या कोई तमाशा है?" इस फटकार से लड़के भाग गये।

किन्तु मुझे आता देख कर न तो पिताजी नाराज ही हुए और न उन्होने कुछ कहा ही! क्योकि वह वक्त नाराज होने का नही था। मैं थक गया था, इस लिए घर आते ही बिस्तरे पर पड़ गया। थोडी ही देर के बाद पिताजी ने आकर कहा "श्याम! उठ भैया! अब तुझे मास्टर नहीं मारेगा, समझा! किन्तु इस प्रकार मास्टर के मारने से कोई भाग जाता है? हमारे समय में तो मास्टर लोग घोडी पर भी चढाते थे, औंधा लटका कर मिर्ची की धूनी देते, और बेतो से पीटते भी थे। तब, भला मार से डरने पर कैसे काम चलेगा? मास्टर तो मार-पीट करेगा ही। अरे, जो मार-पीट न करे वह मास्टर ही कैसा? चल, उठ और हाथ-पाँव धो डाल। देख तो, तेरा मुँह कैसा लाल सुर्ख हो रहा है! परोस री; इसके लिए जल्दी से थाली!"

फलत' मैंने, उठकर हाथ- र धोये और यह सुनकर अपने मन में

सन्तोष किया कि, मेरे भागने का दोष मास्टर की मार पर टल गया। साथ ही यह भी विश्वास हो गया कि अब मास्टर मुझे बुरी तरह नही पीटेगा। मेरे कारण वह सावधानी से बरतेगा, और दूसरो को भी यदि सजा दी तो सोच-समझ कर देगा। ये सब बाते सोच कर मुझे बडा आनन्द हुआ। मै सोचने लगा—इस प्रकार मैने दूसरे लडको पर कितना बड़ा उपकार किया है! अवश्य सब लडके मेरा आभार मानेगे। बाजीराव (पेशवा) के भाग जाने से तो मराठो का स्वराज्य चला गया; किन्तु श्याम के भागने से उसकी कक्षा के विद्यार्थिओ को सम्पूर्ण नही तो कम से कम औपनिवेशिक-स्वराज्य तो मिल ही गया! और यह सब भी श्याम के ध्यान या कल्पना तक मे न होते हुए मिला!

मै घर से क्यो भागा था, यह बात केवल तीन ही व्यक्ति जानते थे—मै, माता और ईश्वर। शनिवार के कारण दो-पहर को पाठशाला की छुट्टी थी ही; इस लिए मै भोजन कर के सो गया। खूब थक जाने एव कडी धूप सहने के कारण शाम को दिये लग जाने पर भी मै सोता ही रहा। तब माता मेरे पास आकर बैठ गई और धीरे से उसने मेरे सिर को हाथ से सुहलाया। इसके बाद स्नेह-पूर्वक पुकारा "श्याम!" और तत्काल ही मैने आँखे खोल दी। वह मेरे शरीर पर हाथ रखे हुए ही प्रेम-पूर्वक पूछने लगी "क्या तेरा जी अच्छा नही है श्याम! शरीर दुखता है क्या? मैने मना किया था, फिर भी तूने नही माना?" इतना कह कर वह मेरा शरीर दबाने लगी। मै भी अपना सिर माता की गोद में रख कर रोने लगा। किन्तु कुछ ही क्षण के बाद मैने अपना रोना बद कर के माँ से पूछा—

"माँ, मैने तेरी बात नही सुनी। किन्तु क्या इस प्रकार मेरे भाग जाने से तू भी नाराज हो गई थी? मै मास्टर के मारने से नही भागा था। क्या तू कभी-कभी मुझे नही पीटती है; और क्या उस मार के डर से मै कभी भागता हू? पिताजी ने भी यही समझा है कि मै मार के डर से भाग गया था। किन्तु कल तूने ही कहा था कि "यदि जाना ही है तो पैदल जा! है इतनी ताकत शरीर में!" सो मै पैदल ही बाई जाना चाहता था। किन्तु मै यह काम अपनी शक्ति से बाहर का कर रहा था। कहा वह बालयोगी ध्रुव और कहा यह दीन-दुर्बल

श्याम! माँ, अपने श्याम पर तू नाराज न हो, तेरा श्याम हठीला और उद्दंड है। जो कुछ उसके मन मे आता है वही करने लग जाता है। किन्तु, जब अपनी भूल समझता है, तब रोने लगता है। इस लिए फिर पूछता हूं कि तू मुझपर नाराज तो नही हुई है नँ ? तेरी बात न मानकर और तुझे कहे बिना ही मै चल दिया, इस पर तो तू नाराज नही हुई है नँ ? बतला दे माँ! झटपट कह दे एक बार कि "नही।"

इन शब्दो को सुन माता ने मेरे मुँह पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरकर आँसू पोछते हुए कहा "श्याम! मै भला क्यो तुझ पर नाराज होऊंगी? मुझे न तो क्रोध ही आया, और न तेरे चले जाने से बुरा ही लगा। केवल तेरी चिता के कारण ही चित्त मे खेद हुआ था कि तू छोटा है, रास्ते मे तेरा क्या हाल होगा! यही सोचकर आँखे भर आती थी। मैने कल तुझसे वे शब्द कहे, इस लिए मेरे शब्द ही इस घटना के मूल कारण थे, यह सोचकर भी बुरा लग रहा था। किन्तु इस बात पर मुझे कदापि दुःख नही हुआ कि तूने भाग कर कोई बुरा काम किया। श्याम! तू किसी बुरी बात के लिए थोड़े ही भागा था? अभी उस दिन नाटक-कम्पनी मे भर्ती होने के लिए गाँव मे से किसी का लड़का भाग गया, वैसा तू थोड़े ही गया था? तू तो देव-दर्शन के लिए भाग कर जा रहा था; गंगा के स्नान के लिए भाग कर जा रहा था। भला तुझ पर मै कैसे नाराज हो सकती हू श्याम! तेरे लिए तो मुझे अभिमान ही होगा, और यदि मेरा श्याम भाग ही जाय तो भी मै अभिमान-पूर्वक यही कहूंगी कि 'वह देव-दर्शन के लिए गया है!' किन्तु श्याम! एक बात याद रख! इस माँ की एक बात अच्छी तरह हृदय मे रख ले कि 'चोरी-चकारी या चुगली कर के कभी मत भागना, खोटी-सगति के लिए मत भागना और डर के मारे मत भागना।' यदि देव-दर्शन के लिए तू भाग कर गया तो क्या बुरा किया? सभी सन्त-महात्माओ ने यही तो किया है! अरे, अधिक तो क्या किन्तु मै समय आने पर ईश्वर से यह प्रार्थना भी कर सकती हूं कि 'मेरा पुत्र देव-दर्शन के लिए—ईश्वरी कार्य के लिए घर से भले ही भाग जाय!' मेरे लिए तो वह दुःख नही, वरन् सन्तोष की ही बात होगी।"

---

१८ स्वावलंबन का पाठ

मैंने बचपन मे पोथी और पुराणादि तो बहुत-से पढ डाले थे, किन्तु संस्कृत स्तोत्रादि मुझे अधिक याद नही थे । केवल "प्रणम्य शिरसा देव, अनन्त वासुकि शेष, अच्युत केशवं विष्णु" आदि दोही चार छोटे-छोटे स्तोत्र कठस्थ थे । इनमे 'अनन्तं वासुकि शेष' वाला स्तोत्र नाग (सर्प) का है । यह स्तोत्र एकबार नाग-पचमी के दिन मुझे नानाजी ने सिखाया था; किन्तु रामरक्षा का अद्वितीय स्तोत्र मुझे याद नही था । विष्णु-सहस्र-नाम तो मै नित्य-प्रति पिताजी की पुस्तक पर से पाठ कर लेता था, इसी लिए वह मुझे कठस्थ हो गया था । किन्तु रामरक्षा-स्तोत्र पिताजी ने स्वय जानते हुए भी मुझे कभी नही सिखाया । साथ ही रामरक्षा स्तोत्र की पुस्तक भी हमारे घर में नही थी । किन्तु मैं वचपन से ही राम का भक्त था, अतएव रामरक्षा-स्तोत्र न जानने पर मुझे खेद होता था ।

हमारे पड़ौस मे गोविन्दभट्ट पराजपे रहते थे । उनके लडके भास्कर के पास रामरक्षा की पुस्तक थी, और वह प्रति-दिन दो-एक श्लोक याद कर लेता था । इसके बाद शाम को वह हमारे यहा आकर वे श्लोक सुनाता; इससे मुझे बड़ी शर्म लगती और उस पर क्रोध भी आता था । अपने स्वाभिमान को चोट पहुँचाई जाने पर दु ख होना स्वाभाविक ही है । क्योकि हम अपने आसपास वालो से अपनी तुलना किया करते है; और यदि उसमें हम अपने को हीन या गिरा हुआ पाते है तो हमे अवश्य ही क्रोध आता है । ऊचे आदमी को देखकर जो ठिगना या वामन-रूप होता है, उसे ईर्ष्या होती ही है । इसी प्रकार दूसरे को अपने से अधिक चतुर देखकर भी हम दुःखी होते है । भास्कर को रामरक्षा स्तोत्र पाठ कर देख मुझे वडा खेद होता था । और वह भी विशेष-रूप से मुहारनी या स्तोत्रादि सुनाने के समय ही हमारे यहा आकर कुछ ऐठ (ठसक) के साथ अपनी विशेषता दिखाया करता था । इसी लिए यह सोच कर कि यह मुझे जान बूझकर चिढाने आता है; अधिक क्रोध होता था ।

एक दिन भास्कर मुझ से कहने लगा "श्याम, अब तो मेरे दस ही

श्लोक रह गये.है, इस लिए अब पाच दिन बाद मुझे पूरा स्तोत्र कण्ठस्थ हो जायगा। किन्तु तुझ तो यह स्तोत्र नही आता!" इन शब्दो को सुन मैं एकदम क्रोध के मारे चिढ़ गया, और झल्लाकर उस पर झपटते हुए बोला "भास्करिया! अगर फिर कभी मुझे नीचा दिखाने आया तो याद रख, अच्छा नतीजा न होगा। तुझे जो कुछ आता है सो मैं जानता हू। मेरे सामने इतना ऐठने की जरूरत नही। तेरे घर मे पुस्तक है, इसी लिए क्यो? यदि मेरे पास भी पुस्तक होती तो तुझ से पहले मैं उसे याद कर लेता। बड़ा आया है स्तोत्र सुनाने वाला! जा अपने घर! फिर मत आना हमारे यहा; नही तो मैं अच्छी तरह ठोकूगा।"

हमारे इस वाक्प्रहार और बोला-चाली को सुनकर घर मे से माँ बाहर निकल आई और उसने भास्कर से पूछा "क्या हुआ रे भास्कर! क्या श्याम ने तुझे मारा-पीटा?"

उसने कहा "नही, मैंने तो इससे यही कहा था कि अब चार-पाच दिन में मुझे रामरक्षा पूरी याद हो जायगी। इसी पर चिढ़कर श्याम मुझे मारने के लिए झपटा और कहने लगा कि "यहां से अभी चल दे अपने घर; नही तो मैं तुझे ठोकूगा।"

यह सुन माता ने मेरी ओर मुँह कर पूछा "क्योंरे श्याम, ठीक है यह बात! भला, अपने पडौसी से कभी कोई इस तरह का व्यवहार करता भी है? तूही कल उसके घर चार चक्कर काटेगा।"

इस पर मैंने क्रोध मे ही उत्तर दिया "किन्तु यह मुझे जान-बूझकर चिढाने के लिए आता है और कहता है 'तुझे रामरक्षा स्तोत्र कहा याद है!' पूछ ले भले ही, इसने मुझ से ऐसा कहा था या नही? मानो यह कोई बिल्कुल सीधा-सच्चा ही है! अपनी तो कुछ कहता ही नही! बेईमान कही का।"

इस पर माता ने कहा कि "यदि इसे रामरक्षा आती है और तुझे नही, तो इसमे इसने तुझे क्या चिढाया? सच ही तो कहा! कोई हमारी कमी–त्रुटि–बतलावे तो उसपर क्रोध करने की क्या जरूरत? उस कमी को दूर करना चाहिए। भास्कर चाहता है कि तू भी झटपट रामरक्षा सीख ले,

इसी लिए वह तुझे चिढाता है। जब तू 'रामविजय', 'हरिविजय' आदि ग्रंथ बारम्बार पढता है तो रामरक्षा-स्तोत्र क्यो नही सीख लेता ?"

मैंने उत्तर दिया "भाऊ (पिताजी) मुझे सिखलाते ही नही; और न मेरे पास उस स्तोत्र की पोथी ही है !" इसपर माता ने कहा "भास्कर के पास तो है नँ ? उसे जब आवश्यकता न रहे, तब ले लिया कर। अथवा उसकी पुस्तक पर से नकल कर के भी तू स्तोत्र याद कर सकता है।"

भास्कर अपने घर चला गया और मैं वही बैठकर मन ही मन कुछ निश्चय करने लगा। अन्त को मै इस निर्णय पर पहुँचा कि अगले रविवार को रामरक्षा की नकल कर ली जाय। इसी लिए कोरे कागज लेकर मैंने एक छोटी-सी कॉपी तैयार कर ली, और दवात-कलम ठीक कर के मैं रविवार की बाट देखने लगा। तीसरे ही दिन रविवार था, अतएव उस दिन प्रातःकाल ही मैं भास्कर के घर जा पहुँचा। रास्ते मे मैंने सोच लिया था कि सम्भव है भास्कर अपनी पुस्तक मुझे न दे, इस लिए मै सीधा उसकी माँ के पास गया, और अत्यंत मधुर शब्दो मे बोला "भीमा मौसी ! क्या आज के लिए भास्कर से कहोगी की वह अपनी रामरक्षा की पोथी मुझे दे दे ! मैं आज ही उसकी नकल कर लेना चाहता हू। मुझे वह मुखाग्र याद करना है। आज छुट्टी है, इस लिए मैं उसकी नकल कर लूगा।"

यह सुनते ही भीमा मौसी ने तत्काल उसे पुकारकर कहा "भास्कर ! आज के लिए श्याम तेरी पुस्तक मागता है, सो इसे दे दे ! यह फाडे-तोडेगा नही !" इसके बाद मुझे सबोधन कर के कहा "श्याम ! पुस्तक पर स्याही आदि के धब्बे या छीटे मत लगाना, सावधानी से रखना। भास्कर इसे पुस्तक दे दे।"

किन्तु भास्कर, देने के लिए तैय्यार नही था। उसने कहा "आज छुट्टी है, इस लिए रही हुई सारी रामरक्षा मैं आज याद करूगा। मैं इसे पुस्तक नही देना चाहता। मेरा याद करना रह जायगा।"

इन शब्दो से भीमा मौसी झल्ला उठी। उसी क्षण उन्होने भास्कर को डाटते हुए कहा "तेरे लिए आज ही याद करने का मुहूर्त अटका हुआ है क्यो ? कल-परसों याद नही कर सकता ? श्याम भी तो तेरा ही पड़ौसी और साथी है नँ ? इसको तू किस बात की ठसक दिखाता है रे ? अभी दे

इसे पुस्तक, नही तो फिर देखना। माता के क्रोध को भास्कर अच्छी तरह जानता था, इस लिए उसने गुस्से की हालत मे उसी क्षण लाकर पुस्तक मुझे दे दी।"

मै 'रामरक्षा' स्तोत्र लेकर घर आया और एकान्त मे बैठकर लिखने के विचार से पशु-शाला मे चला गया! उस समय ढोर चरने गये थे; अतएव वहा पूर्ण शान्त और एकान्त स्थान मिला। दवात-कलम और कापी तैयार थी ही, अत जाते ही लिखना आरभ कर दिया। दो-पहर को भोजन के समय तक अधिकाश पुस्तक लिखी जा चुकी थी। फिर भी भोजन से निपटते ही मै लिखने बैठ गया। कुछ ही देर के बाद जब लिखना समाप्त हुआ तो उस समय मुझे कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह बतलाना कठिन है। मेरा अन्त करण आनन्द से भर गया और मुझे कृतार्थता प्रतीत होने लगी। अहा, मेरे हाथ की लिखी हुई रामरक्षा! मेरी ननसाल में पुराने वेदादि ग्रथो की हस्त-लिखित पोथिया सैकडो की संख्या में थी। उनके वे स्पष्ट और सुन्दर लिखावट वाले अक्षर, कही कोई दाग नही, स्याही के छीटे नही, इस प्रकार वे ठीक छपी हुई पुस्तको की तरह साफ-सुथरी दिखाई देती थी। पहले भारत-वर्ष मे सर्वत्र ही हाथो से पोथी-पुस्तके लिखी जाती थीं। केवल भारत-वर्ष ही नही ससार-भर मे यही रीति थी। और जिनके अक्षर मोती के समान सुन्दर होते, उनका सम्मान किया जाता था। मोरोपन्त (महाकवि मयूरेश्वर) के जीवन-चरित्र मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि उन्होने काशी के अनेक ग्रथो की अपने लिए खुद ही नकल की थी। उस समय के लोग आलस्य करना जानते ही न थे, प्रेसो का अभाव था और पुस्तको की कमी थी। इसी लिए मोरोपत ठेठ काशी से पुस्तके वाराणसी मॅगवा लेते और उनकी नकल करके सावधानी से लौटा देते थे! समर्थ स्वामी रामदास के मठो मे भी बडे-बड़े ग्रथालय थे और उनमे हजारो हस्त-लिखित पोथिया रहती थी। किन्तु आज तो गली-गली मे छापाखाने खुल गये है; और पुस्तको के भी ढेर लग गये है, फिर भी लोगो का ज्ञान नाममात्र का—परिमित—ही है। मनुष्य का मस्तिष्क अभी खाली ही पडा हुआ है। उनका 'जीवन सुधरा हुआ' या अधिक सस्कृत अथवा विशेष

मनुष्यता-पूर्ण, अधिक प्रामाणिक या कर्तव्यदक्ष अथवा विशेष त्याग एवं प्रेम-युक्त होता हुआ भी नही दिखाई देता । अस्तु ।

हा, तो उस दिन मुझे बडा आनन्द हुआ । लिखाई समाप्त होते ही तत्काल मैंने भास्कर को उसकी पुस्तक लौटा दी । भीमा मौसी ने पूछा "क्यों श्याम ! इतनी जल्दी पुस्तक लिख डाली ? "

मैंने कहा " हा, यह देखो मेरे हाथ मे ही कॉपी मौजूद है। भास्कर को दो-पहर मे याद करने के लिए पुस्तक की जरूरत थी, इस लिए मैं यहा से जाते ही लिखने बैठ गया और दिन-भर लिखता ही रहा । "

यह सुन मौसी ने मेरी पुस्तक (कॉपी) देखते हुए कहा " वाह ! बड़े अच्छे अक्षर हैं तेरे ! श्याम, अब तू जल्दी से रामरक्षा याद कर ले। जिससे फिर कभी तुझे भास्कर चिढा न सके ।"

मैं घर आकर शाम तक रामरक्षा पढता रहा । एक सप्ताह मे ही उसे कण्ठाग्र कर लेने का मैंने निश्चय कर लिया । क्योकि अगले रविवार के दिन पिताजी को एकदम चकित कर देने का मैंने अपने मन मे सोच लिया था । इसी लिए प्रतिदिन मैं रामरक्षा स्तोत्र के कितने पारायण कर लेता था यह तो ईश्वर ही जाने, किन्तु समय मिलते ही तत्काल मैं रामरक्षा की कॉपी अवश्य उठा लेता था । जो भी सस्कृत व्याकरण मैंने नही सीखा था; किन्तु फिर भी मैं कई श्लोको का अर्थ समझ जाता और पाठ करने मे मुझे बडा आनन्द आता था ।

अन्त में दूसरा रविवार आ गया । मुझे रामरक्षा याद हो ही गई थी । इस लिए मैं उत्सुकता-पूर्वक सायकाल होने की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब पिताजी बाहर से आवे और मैं उन्हे रामरक्षा स्तोत्र सुना कर चकित कर दू । धीरे-धीरे शाम हुई । घर में दीपक जलाये गये, और आकाश मे तारे चमकने लगे । मैं आँगन में चक्कर लगाता हुआ मन ही मन रामरक्षा की आवृत्तिया कर रहा था । पिताजी आये और हाथ-पाँव धोकर घर मे गये । पीछे-पीछे मैं भी चला गया । उन्होने पूछा " क्यो श्याम ! परांच, (मुहारनी) स्तोत्र-पाठ आदि सब हो गये ? "

मैंने उत्तर दिया " हा, सब हो गये ! किन्तु क्या आप मेरी रामरक्षा सुनेगे ? "

वे एकदम चकित हो कर पूछने लगे "तूने कब सीखी ? और किसने सिखाई ?"

मैंने कहा "भास्कर की पुस्तक पर से नकल कर के मैंने याद कर ली !"

यह सुन उन्होंने मेरी वह कॉपी देखने को मागी ! तत्काल ही मैंने वह उसके सामने रख दी ! उस कॉपी के सभी पन्ने व्यवस्थित, सुदरता से लकीरे खीचे हुए थे। कही भी दाग या छीटा तक नही था, किन्तु फिर भी अक्षर छोटे और अच्छे नही थे। अत कॉपी को देखते ही पिताजी बोल उठे "शाबास, तेरे अक्षर कुछ तो ठीक हैं; किन्तु इतने छोटे नही कुछ लम्बे करके लिखने चाहिए। अच्छा, अब स्तोत्र सुना तो देखू !" मैंने तत्काल ही बिना रुके समग्र स्तोत्र सुना दिया। उस समय पिताजी ने बडे ही प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फिराया। उस क्षण मुझे जो आनन्द हुआ; वह भला कैसे वर्णन किया जा सकता है ?

भोजनादि के पश्चात् पिताजी फिर बाहर चले गये, तब मै माता के पास जा कर कहने लगा "माँ, देख तो सही, कैसी है मेरी यह कॉपी ! मैंने तो तुझे अब तक दिखलाई भी नही थी। मैं तुझ से नाराज हो गया था न ?" यह सुन माता ने कहा "यह तो मुझे मालूम था कि तूने 'रामरक्षा' स्तोत्र की नकल कर ली है। किन्तु तेरे अक्षर देखने की इच्छा अवश्य कई दिन से थी। फिर भी मुझे आशा थी कि तू स्वत ही किसी दिन अवश्य कॉपी दिखाएगा। यथार्थ मे तो मुझे उसी दिन रविवार को ही यह कॉपी दिखलानी चाहिए थी। यदि अपने हाथ से कोई अच्छी चीज तैयार हुई, और उसे माता को ही नहीं दिखलाया तो फिर दिखाया किसे जायगा ? खराब या बुरी वस्तु के लिए माता अप्रसन्न होगी; किन्तु अच्छे काम के लिए तो माता सच्चे हृदय से जितना आनन्द-युक्त गौरव करेगी; उतना दूसरा और कौन कर सकता है ? अपने पुत्र के गुणवान् होने पर माता को जो आनन्द हो सकता है, उसे दूसरा कैसे समझ सकेगा ? किन्तु तूने मेरा वही आनन्द मुझ से आठ दिन तक छुपा कर रक्खा ! मै प्रतिदिन सोचती थी कि 'आज मुझे श्याम अपनी कॉपी दिखाएगा और मैं उसे हृदय से लगाऊंगी ? पर तू तो माँ से नाराज था। फिर भला तू क्यो दिखाने लगा ?

यही बात है नँ ? तूने इसी लिऐ मुझे कॉपी नही दिखाई क्यो ? खैर जाने दो इस झगडे को। अब हुई या नही रामरक्षा याद ? पुस्तक न होने की बात लेकर रोता रहता तो क्या याद हो जाती ? अरे, जब हमारे हाथ-पॉव, आँख, नाक, कान आदि सब मौजूद है तो फिर क्यो न हम अपने पैरो पर खडे रहे ! जिसके हाथ-पॉव है, जिसमे बुद्धि है, और मग में निश्चय है, उसके लिए दुर्लभ वस्तु ही क्या है ? इसी तरह श्रम कर के तू बडा हो, किन्तु परावलम्बी कभी मत बनना ! फिर भी इस बात का सदा स्मरण रहे कि दूसरे से यदि तुझे कुछ अधिक ज्ञान हो तो, इसी गर्व के कारण तेरे-द्वारा उसका तिरस्कार या अपमान कभी न होना चाहिए। बल्कि उसे भी अपने पास से कुछ दे कर तू अपने जैसा बनाने का यत्न करना।" यो कहकर माता ने मेरी वह रामरक्षा की कॉपी हाथ मे ली। उसे मेरे अक्षर देखकर हार्दिक आनन्द हुआ, सच्ची कृतार्थता प्रतीत हुई। उसने कहा " बस, यदि इस पहले पन्ने पर रामचद्रजी का चित्र और लग जाय तो कोई कसर न रहे। फिर पूरी रामरक्षा बन सकती है। वह मोहन मारवाडी तुझे अवश्य राम का चित्र दे देगा। उसकी दूकान मे कपडो पर अनेक चित्र आते है ! उससे मागकर इस मे चिपका लेना। अब तू देवता का विशेष कृपापात्र बनेगा, उनको परम प्रिय होगा। श्याम ! तूने स्वत कष्ट कर के समग्र स्तोत्र लिखा और उसे याद कर के सुनाया है ! "

---

१९ अलौनी भाजी

राजा और राम दोनो नदी की ओर घूमने गये, और वहा जाकर वे एक शिला-खण्ड पर बैठ गये। राजा कहने लगा " राम, मुझे यहां से जाने की इच्छा नही होती। यहा की यह नदी और वनश्री तथा मोर, तोते आदि देखकर बड़ा आनन्द होता है। किन्तु इससे भी बढकर आनन्द है तुम्हारी संगति का। साथ ही श्याम की कहानिया भी सुनने को मिलती है। मुझे वे बड़ी प्रिय लगती है।"

इस पर राम कहने लगा, "किन्तु उन्हे कहानी कहा जाय या प्रवचन! अथवा व्याख्यान कहे या सस्मरण? कुछ समझ मे नही आता। उन बातो को सुन कर आनद तो होता ही है, साथ ही स्फूर्ति भी प्राप्त होती है।" राजा बोला कि "श्याम के शब्दो में उसका निर्मल हृदय ओत-प्रोत रहता है। इसी लिए उसके कहने मे एक विशेष मधुरता और खास आकर्षण रहता है। उसमें कृत्रिमता का लवलेश भी नही होता।"

"अरे, पर कृत्रिमता हुए बिना लोगो को कोई बात पसंद भी तो नही आती! आजकल के लोग तो कृत्रिमता के ही उपासक है। यदि सारा ही रुपया खालिस चाँदी का हो तो वह बाजार मे चल नही सकता! उसमे जब थोड़ी-सी अशुद्ध धातु मिलाई जाती है, तभी वह खन्न कर के बजता और लेन-देन मे चल सकता है।" राम ने कहा।

इस पर राजा ने फिर पूछा कि "मेरे मन मे एक योजना आई है। सुनाऊ? तू हँसी तो नही करेगा?"

राम ने कहा "अवश्य सुनाओ! मै हँमी नही उडाऊगा"। किसी की सच्ची भावनाएँ सुनकर मै कभी उसकी ठट्टा नहीं करता।

"यदि श्याम के ये संस्मरण प्रकाशित किये जायँ तो कैसा? इन्हें पढ़ने मे लडको को आनंद होगा और स्त्रिया भी पढकर प्रसन्न होगी। साथ ही माता-पिता के लिए भी ये उपयोगी सिद्ध होगे। श्याम की इन बातो मे कोकण-प्रदेश की शुद्ध सस्कृति ओतप्रोत है। ये सस्मरण एक प्रकार से एक सुन्दर सस्कृति के सजीव चित्र ही है। क्यो ठीक है नँ?" राजा ने पूछा।

राम ने कहा "किन्तु श्याम को यह बात स्वीकार न होगी। उसे आत्म-विश्वास नही है। वह कहने लगता है कि, ऐसी बातो को पढना कौन पसद करेगा? लोगो को तो चटकीली कहानिया चाहिए। उन्हे तो लैला-मजनू के किस्से ही ज्यादा पसद आ सकते है!" इस प्रकार वह अपने विचार प्रकट कर ही रहा था कि आश्रम मे प्रार्थना की घंटी बजने लगी। दोनो मित्र आश्रम की ओर लौट चले। इधर श्याम भी राजा की प्रतीक्षा कर रहा था। इस लिए जब उसे राजा और राम दोनो ही साथ आते हुए दिखाई दिये तो उसने पूछा "क्यो भाई! आज मुझे आवाज नही दी? तुम दोनो ही चले गये?" इस पर राजा ने उत्तर दिया कि "तू पढ़ रहा था, इस

लिए नही बुलाया। हमने सोचा दिन भर तुझे दूसरे काम रहते है; इस लिए यदि कुछ देर पढने को समय मिला है तो उसमे बाधा डालना ठीक नही।"

"किन्तु मुझे भी तो कहा देर तक पढना अच्छा लगता है?" श्याम ने कहा " इस विश्व-रूपी विशाल ग्रथ को पढा जाय, मनुष्यो के जीवन पढे जायँ, हृदयो का परिशीलन किया जाय, और उनमे गर्भित सुख-दु.खो की जानकारी प्राप्त की जाय; यही तो सच्चा ग्रथावलोकन है! क्यो ठीक कहता हू नँ?"

इस पर राजा ने उत्तर दिया "श्याम, तूने बहुत कुछ पढ लिया है, इस लिए ऐसी बाते करता है। किन्तु सृष्टि-प्रकृति-रूपी ग्रथ का पढना सीखने की आवश्यकता होती है। कृषक के जीवन का आनन्द कवि भले ही वर्णन करता रहे, किन्तु बेचारा कृषक उसका उपभोग नही कर सकता। क्योकि उसे वह दृष्टि ही प्राप्त नही है।"

इतने ही मे दूसरी घटी बजी और सब लोग प्रार्थना करने बैठ गये। यथा-नियम प्रार्थना समाप्त हो जाने पर श्याम ने अपने सस्मरण सुनाना आरम्भ किया —

"मित्रो! प्रत्यक्ष उदाहरण से जो शिक्षा प्राप्त होती है, वह सैकडो व्याख्यान सुनने या अनेक ग्रंथ पढ लेने से भी नही मिल सकती। कृति (कार्य) मूक अवस्था मे भी बोलती रहती है। और शब्दो से भी यह मूक कथन विशेष परिणाम-कारक होता है!

भोजन कैसे किया जाय, इसके लिए भी हमारे यहाँ की संस्कृति मे विशेष नियम बताये गये है। मेरे पिता हमेशा कहा करते कि "अपनी थाली या पत्तल की ओर देखकर भोजन करना चाहिए। कोई भी वस्तु जब तक सामने रखी हुई हो, कभी न माँगी जाय, जब परोसने आवे तभी आवश्यकतानुसार लेनी चाहिए। क्योकि पक्ति मे जब दूसरो को वह परोसी जायगी तब हमे भी मिल जायगी। भुखमरे की तरह किसी वस्तु पर एकदम ही न टूट पड़ना चाहिए। अन्न का एक दाना या कण भी थाली से नीचे न गिरने देना चाहिए। और न कुछ जूँठन ही छोडनी चाहिए। भोजन की वस्तुओ के विषय में टीका टिप्पणी भी नही करनी चाहिए। यदि उसमे कोई बाल या अन्य वस्तु निकल

आवे तो उसे चुपचाप निकालकर अलग रख देना चाहिए, मुँह से उस विषय में कुछ भी नही कहना चाहिए और न उसे ऊपर उठाकर दूसरो को दिखाना ही चाहिए; क्योकि इससे उन्हे घृणा हो जायगी। हा, यदि उसमे कोई विषैली वस्तु दिखाई दे तो अवश्य सब को सावधान कर देना चाहिए। पत्तल या थाली बिल्कुल साफ कर देनी चाहिए। इन सब बातो के अनुसार ही पिताजी स्वतः आचरण भी करते थे। मैंने कई आदमियो को भोजन करते हुए देखा है, किन्तु भोजन के बाद मेरे पिताजी की थाली जितनी साफ और निर्मल दिखाई देती है, वैसी मैंने अन्यत्र कही भी नही देखी। उसे देखकर यह समझना भी कठिन हो जाता है कि उसमे किसी ने भोजन किया है या नही। उनकी थाली के बाहर जूँठन का एक कण भी पडा हुआ नही दिखाई देगा। इस लिए वे मेरी पत्तल के आस-पास जूँठन पडी हुई देखते ही क्रुद्ध हो कर कहने लग जाते "क्यो रे, तूने कितनी जूँठन गिराई है? इससे तो मथुरी (मजदूरनी) के एक मुर्गे का पेट भर सकता है। कर उसको इकट्ठी!" इसी प्रकार वे कभी अपने मुँह से यह नही कहते कि "अमुक वस्तु खराब है या यह ऐसी कैसी बनी, अथवा इसमे तो कोई स्वाद ही नही!" क्योंकि उन्हे सभी वस्तुएँ अच्छी लगती थी। उनका एक निश्चित शब्द था "राजमान्य!" उनसे कोई भी पूछता कि "शाक-सब्जी कैसी बनी? तो उनके मुँह से निश्चित उत्तर मिलता "राजमान्य!" अर्थात् भोजन के विषय मे कोई भी बुरी बात कहने की आदत उनमें नही थी।

एक दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है। पिताजी के प्रतिदिन घर के देवताओ की पूजा कर के मंदिर मे जाते ही हम पाट बिछाकर पानी के लोटे-गिलास आदि रख देते; और भात के सिवाय सब सामग्री परोस कर तैयार रखते थे। इसके बाद दरवाजे मे खडे हो कर पिताजी को वापस लौटते हुए देखते ही माता को सूचना देते कि, "पिताजी आ गये, भात परोसने के लिए निकालो।" पिताजी मंदिर मे से आते समय गणेशजी का चरणामृत लाते और उसे पीकर हम भोजन आरम्भ करते थे।

उस दिन भी हम भोजन के लिए बैठे। माता ने रतालू (शकर-कद) के पत्तो की भाजी बनाई थी। मेरी माता चाहे जिस वस्तु की भाजी बना सकती थी। वह कहती कि "निमक, मिर्च और तैल की छौंक (बघार)

देने से सब कुछ स्वादिष्ट बन सकता है।" और सचमुच ही वह जो कुछ बनाती वह अत्यत स्वादिष्ट होता था। मानो उसके हाथ में पाकशास्त्र का रस-भाडार ही न भरा हो! वह अपने बनाये हुए प्रत्येक पदार्थ मे हृदय की समग्र माधुरी उँडेल कर रख देती थी। और यथार्थ मे यदि देखा जाय तो माधुर्य का सागर सब के ही हृदय में भरा हुआ है।

किन्तु उस दिन एक मजे की बात यह हुई थी कि वह भाजी बिल्कुल अलौनी बनी थी। माता उसमे निमक डालना भूल गई थी। काम की गड़बड़ मे बेचारी को निमक डालने की याद न रही। किन्तु पिताजी भोजन मे किसी भी वस्तु के लिए एक अक्षर तक नही कहते थे, इस लिए हमे भी चुप ही रहना पडा। पर पिताजी का सयम भी बडा जबरदस्त था। मानो वे अस्वाद-व्रत का ही पालन न कर रहे हो! माता के द्वारा भाजी परोसी जाने पर वे बराबर यही कहते रहे कि "भाजी बड़ी स्वादिष्ट बनी है।" किन्तु उन्होने थाली मे रखा हुआ निमक तक उसमे नही मिलाया और न फिर से निमक मागा ही। क्योकि ऐसा होने पर माता के मन मे संदेह उत्पन्न हो जाता। इसी लिए पिताजी को भाजी खाते देखकर हम भी थोडी-थोड़ी खाते रहे; हमने भी निमक नही मागा।

माँ ने मुझ से पूछा "क्योरे, क्या तुझे भाजी अच्छी नही लगी? रोज की तरह खाता क्यो नही?" किन्तु इस विषय में मेरे उत्तर देने से पहले ही पिताजी कहने लगे "यह अब अंग्रेजी जो पढ़ने लगा है; इसे भला ये पाला-भाजी क्यों कर पसद आवेगी?" इस पर मैंने कहा "ऐसी बात नही है। यदि अंग्रेजी पढने से मेरे बिगड़ने का डर है तो फिर मुझे पढाते क्यो है?" पिताजी बोले "अरे, तुझे चिढाने के लिए ही ऐसा कहना पडा। क्योकि तेरे चिढ् उठने से सब को आनंद होता है।" इसके बाद माता को लक्ष्य कर के उन्होने कहा "इसे कटहल् की भाजी अच्छी लगती है क्यो? कल पटैल-वाडी मे से कटहल् लाऊगा। यदि पुराना और पका हुआ मिला तो उसके पकौडे बना लेना।" यह सुन माता ने कहा "अवश्य लाइये। कई दिनो से कटहल् की भाजी नही बनाई है।" इस प्रकार बातचीत होते-होते ही हमारा भोजन समाप्त हो गया। पिताजी चबुतरे पर जाकर विष्णु-सहस्रनाम बोलते हुए शत-पदी (सौ कदम चलना)

करने लगे। इसके वाद उन्होने तकली पर यज्ञोपवीत के लिए सूत कातना आरम्भ कर दिया। ठिकरे को घिसकर ही तकली वनाई गई थी। उस समय प्रत्येक ब्राह्मण के लिए तकली पर सूत कातने की प्रथा अनिवार्य-रूप से प्रचलित थी।

वाहर का सव सामान समेट कर सफाई करने के वाद माता भोजन करने के लिए वैठी। किन्तु जैसे ही उसने ग्रास मुँह मे लिया तो मालूम हुआ कि भाजी अलौनी है! उसमे नाम को भी निमक नही है। मै पास ही खडा था। इस लिए उसने पूछा "क्योंरे श्याम! भाजी मे निमक नाम को भी नही था, फिर भी तूने यह वात मुझ से नही कही? अरे, यदि ऐसा था तो मुझे वतलाना क्या आवश्यक नही था? राम-राम, तुम सव ने अलौनी भाजी कैसे खाई होगी?" मैंने कहा "पिताजी कुछ नही वोले, इस लिए हम भी चुप वैठे रहे!" माँ को वहुत वुरा लगा। वह फिर कहने लगी "राम-राम! मै भी कैसी अनाडी स्त्री हूं! सवको आज विना निमक की भाजी खानी पडी।" उसके हृदय मे अपनी यह भूल सुई की तरह चुभ रही थी। किन्तु अव क्या कर सकती थी? फिर भी वह मुझ से कहने लगी "तभी तूने नही खाई, नही तो ढेरभर भाजी तो तेरे लिए ही रखनी पडती है; आधी तपैली तो तू ही साफ कर जाता है। तुझे भाजी का वडा शौक है। किन्तु यह वात तो उसी समय मेरे ध्यान मे आनी चाहिए थी। अव इस विषय मे पश्चात्ताप करने क्या लाभ?"

माता ने इसे अपनी वहुत वड़ी भूल समझी। जो भी वस्तु दूसरे को वनाकर दी जाय, वह हमेशा अच्छी ही वनानी चाहिए। जो भी पदार्थ वनाया जाय वह अच्छा ही वनना चाहिए। भले ही वह भाजी हो या कोई वड़ा पक्वान्न। किन्तु आज मैंने एकदम अलौनी भाजी वनाकर परोस दी, असावधानी की और ला-पर्वाही रखी, काम मे ध्यान एक जगह नही रखा, यह अच्छा नही हुआ। इस प्रकार माता के मन में अनेक विचार उत्पन्न हुए और वह खिन्न हो गई।

किन्तु पिताजी ने केवल इसी विचार से कि माता को वुरा न लगे, अपने मुँह से एक अक्षर तक न कहा। क्योकि उन्होने सोचा, "वेचारी ने इतने परिश्रम से चूल्हे के पास धुएँ मे वैठकर भोजन वनाया है, तो क्यो न

उसे प्रशंसा कर के खाया जाय ? उसमे दोष दिखाकर भोजन की प्रशसा करने के बदले उसे दु खी क्यो किया जाय।" इस प्रकार पिताजी की दृष्टि अत्यन्त उदारता-पूर्ण थी ।

मित्रो ! दूसरे का दिल न दुखाने के लिए जीभ पर अधिकार रख कर अलौनी भाजी भी प्रशसा कर के खाने वाले मेरे पिता श्रेष्ठ; या कि अपने हाथ से भाजी अलौनी रह जाने पर खिन्न होने, और हमारी ओर से इसकी सूचना न देने पर फट्कारने तथा अपने हाथो अच्छी वस्तु न बनने पर उद्विग्न हो उठने, एव दु ख और पश्चात्ताप करने वाली माता श्रेष्ठ? मै समझता हूं कि दोनो ही महान् और श्रेष्ठ थे। हिन्दू-संस्कृति का निर्माण सयम और सतोष की नीव पर ही किया गया है; इसी प्रकार उसका एक आधार कर्म-कुशलता भी है। ये दोनो ही उपदेश-पाठ मुझे अपने माता-पिता के जीवन से सीखने को मिले है।

---

२० पुनर्जन्म

मेरी अवस्था उस समय ग्यारह वर्ष की थी। उन्ही दिनो पहिली वार मुझे अग्रेजी पढने के लिए मामा के घर भेजा गया था। मेरा वडा भाई पहिले ही से वहा पढ रहा था। किन्तु मैने मामा के घर ठीक तरह का बरताव नही किया। उनके घर से मै दो-तीन वार कही भाग भी गया, और अन्य कई प्रकार के अनुचित आचरण भी मेरी ओर से हुए। इसी लिए मामा ने यह सोच कर मुझे वापस घर भेज दिया कि ऐसे आवारा और उच्छृखल भानजे का अपने घर न रहना ही अच्छा है। यह व्यर्थ ही किसी दिन अपने साथ-साथ दूसरे के गले मे भी फाँसी लगवा देगा।

उस समय कोकण मे हमारे घर की सारी परिस्थिति ही बडी विचित्र हो रही थी। मेरे पिता स्वदेशी-आदोलन के मामले मे सजा भोग कर ताजे ही छूटे थे, और उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। वे अत्यन्त निर्बल हो गये थे। इसी कारण स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे अपने किसी

दूर के रिश्तेदार के यहां समुद्र-तट पर रहने चले गये थे। मेरी बड़ी बहन भी नैहर आई थी। वह बेचारी यहा चार दिन आनन्द मे रह कर जी बहलाने के लिए आई थी, परतु आते ही बीमार पड गई। इसी लिए माता पर सारे काम का बोझ आगया। उस समय घर मे दूसरी कोई स्त्री भी नही थी। बहन बहुत बीमार थी; और उसी दशा मे मै पूना से वापस लौटकर आगया था; इस लिए मेरी ओर कोई ध्यान नही देता था। मै सब के लिए अप्रिय हो गया था। किन्तु मेरी जीजी पर सब का स्नेह था, सब उसे चाहते थे। उसकी एक दूध-पीती लडकी थी। बहन की बीमारी के कारण उसकी बड़ी दुर्गति हो रही थी। क्योकि उसे माँ का दूध तो मिलता ही न था; साथ ही माता का हाथ भी उसके कोमल एव बढ़ते हुए बाल-शरीर के पोषण के लिए नही लग पाता था। क्योकि जीजी को विषम-ज्वर हो गया था, इस लिए उसका दूध बच्ची को पिलाना धोखे का काम था। वह दूध विपाक्त हो रहा था, अत उस बेचारी छोटी-सी रंगू की बडी दयनीय दशा हो गई!

एक दिन जीजी को सन्निपात हो गया। सुसराल में होने वाले कष्ट उसने कभी हमारे यहा आ कर नही कहे थे। किन्तु मन मे संचित वह सम्पूर्ण दु ख-गाथा उस वातावेश मे वह सुना गई। उसे होश नही था; इस लिए उस अचेत अवस्था मे वह अपने हृदय की सारी बाते सुनाने लगी और उन्हे सुनकर माता को घोर दु ख होने लगा। वह सोचने लगी कि इतने रुपये खर्च कर ऐसे घर में कन्या देने पर भी बेचारी को ऐसा कष्ट सहना पड़ा।

जिस तरह पुरुष के लिए घर मे भाई-बन्दी दु खदाई होती है; उसी प्रकार लडकी के लिए सुसराल मे सताया जाना भी हमारे समाज का एक निंद्य दुर्गुण है। यदि सच पूछा जाय तो सास का कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह दूसरे के घर की आई हुई लडकी की माता बनकर उसे आश्वासन दे और हृदय से लगावे, किन्तु इस के बदले वे बहू के आने पर यह समझने लगती हैं कि एक खरीदी हुई मजदूरनी हमारे घर आई है। हमारे देश और समाज के लिए वह दिन स्वर्ण-दिवस समझा जायगा, जिस दिन बहुओ को सुसराल मे दिये जानेवाले कष्टो का अन्त हो जायगा। सुसराल में रहने का आशय ही हमारी भाषा मे वहा के दु ख-कष्टो के रूप में लिया जाता

है। ये शब्द ही उस इतिहास के सूचक बन गये हैं। इसी लिए लड़कियां अपने गीत मे सुसराल का वर्णन करते हुए गाती हैं :—

> सास-श्वसुर के वचन करेले से कडुए होते हैं।
> क्यों कर मीठे लगें, जिन्हे सुन हाय! हृदय रोते हैं॥
> रेशम की गांठ समान सास के शब्द कठिन होते हैं।
> खुलते न कभी वे, इसी लिए तन-प्राण सदा रोते हैं।*

इस प्रकार वे सुसराल का करुण-चित्र समाज के सम्मुख उपस्थित करती हैं। ये उन्ही के भावो की अभिव्यक्ति है, और उन्होंने इस रूप मे अपनी स्थिति का, दीन-हीन अवस्था का वर्णन किया है। करेले के कडुए फल और रेशम की गाठ जैसी उपमाएँ उन्ही की कल्पना मे आ सकती है। अभी तो साधारण मनुष्यता भी हम लोगो को सीखनी शेष है। सास बहू को सताती और कष्ट देती है, और बहू जब खुद सास बनती है, तब वह भी यही करती है। मानो पूर्वजो की यह सताने की परम्परा अखण्ड अबाधित चलती ही रहनी चाहिए। इसी लिए हमारे यहा अब यह कहावत चल पड़ी है कि "चार दिन सास के तो चार दिन बहू के भी"। जिस प्रकार पाठशाला का अध्यापक लडको को पीटता है और लड़का जब मास्टर होता है तो वह भी यही करता है; ठीक यही बात इस विषय में भी कही जा सकती है। अधिक-तर मास्टर लोग यही उत्तर देते है कि हमे भी तो पीटा जाता था, इसी लिए हम भी मारते पीटते हैं। लडके-लडकी जब खेलते हो, तब हमें सावधानी से देखना चाहिए। यदि लडकिया सास-बहू का खेल खेलती होगी, तो उनमे बहू बनने वाली लडकी के बाल खीचना और खोचा या चिमटा गर्म कर के उसे दागना, उसे बासी रोटी खाने के लिए देना आदि दृश्य प्रत्यक्ष दिखाई देंगे। इसी प्रकार जब आप लडको की पाठशाला का खेल देखेंगे तो, उसमें भी आप किसी खम्मे को विद्यार्थी के रूप मे पिटते हुए देखेंगे। साथ ही मास्टर बनने वाला लडका उसे यो धमकाता हुआ भी दिखाई देगा कि "बोल! फिर ऊधम करेगा?

---

* सासरचे बोल। जसे कारल्याचे वेल। गोड कसे लागतील। कांहीं केल्या॥
सासरचे बोल। जशा रेशमाच्या गांठी। रात्रंदिन रडविती। धायी धायी॥

लगाऊ और एक बेत ! " इत्यादि । मेरी वहन का एक लड़का है । वह उस समय पाच-छह वर्ष का था । एक दिन उसने मुझसे कहा "मामा, मुझे मास्टर बनना है, या फिर मै सिपाही बनना चाहता हू । " इस पर जब मैने उससे पूछा कि "तूने ये दो ही धन्धे क्यो पसद किये ?" तो उसने उत्तर मे बताया "इनमे मै सब को मार-पीट सकूगा ! सब को एक तरफ से झूड़ सकूगा । " देखा तुम सबने; मास्टर के स्वरूप की क्या सुन्दर कल्पना की गई है ? इसी लिए पाठशाला लड़को को सुसराल की तरह भयकर जान पडती है । किन्तु यथार्थ मे पाठशाला और सुसराल दोनो ही नानी के घर या नैहर बन जाने चाहिए । मित्रो ! तुम कहोगे कि मै किधर से कहा बहक चला, किन्तु इन सब बातो को देख कर मेरा पित्त भडक उठता है । अरे, हममे यदि साधारण मनुष्यता भी न हो तो हम कैसे मानव-प्राणी कहला सकते है ? कहां वह पशु-पक्षी, कीड़े-मकोडे और लता-वृक्षादि तक से प्रेम करने की शिक्षा देने वाली हमारी महान् सस्कृति, और कहा हम उसके नादान उत्तराधिकारी ! हम सामान्य मनुष्यता को भी किस प्रकार भूल बैठे है, यह देख कर हृदय जल उठता है, व्यथित हो जाता है ! किन्तु जाने दो !

हॉ, तो उस दिन जैसे-तैसे दो-पहर का भोजन समाप्त कर सब लोग जीजी के पास बैठे हुए थे । ताम्बे की थरिया (तर्पण-पात्र) मे पानी भर कर उसे जीजी के सिरपर रखा गया था । भला, उस छोटेसे गॉव मे वर्फ की थैली या कोलन-वॉटर कहा से आ सकते थे ? माता उस थरिया को थामे हुए बैठी थी । सब के मुँह सूख कर चिडिया की तरह हो रहे थे । उसी समय मेरी माता के मन मे जाने क्या विचार आया, और वह जल-पात्र मुझे पकडे रखने के लिए कहकर उठ खड़ी हुई । वह वहा से सीधी देवता के सिहासन के पास पहुँची और अत्यन्त करुण शब्दो मे प्रार्थना करने लगी "हे भगवान, शकर ! मै मदिर मे जा कर तीन दिन तुम्हारी पिंडी पर दही-भात का लेप करूंगी ! बेचारी लड़की को रोगमुक्त करो । उसका बुखार कम होने दो, शरीर की गर्मी निकल जाने दो, उसको शान्ति-चैन मिल सके, ऐसी कृपा करो । ' इस प्रकार एक ओर उपचार हो रहा था, और साथ ही दूसरी ओर प्रार्थना भी चल रही थी । माता का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास तो था

ही, किन्तु साथ ही साथ वह रात-दिन सेवा भी कर रही थी। अपने प्रयत्न मे अपनी व्यग्रता के साथ ही ईश्वर का सहयोग भी प्राप्त करना आवश्यक होता है।

थोडी ही देर मे बहन की छोटी बच्ची के रोने पर माता ने पुकार कर मुझसे कहा "श्याम! वह देख रगू जग कर झूले मे पडी रो रही है। जा, उसे ले कर बाहर थोडी देर तक टहला। यहा मत रुला।" तत्काल ही मै उसे कन्धे पर उठाकर बाहर चला गया और वहा उसे खेलाने लगा। किन्तु थोडी ही देर मे उसे इधर-उधर टहला कर मै उकता गया था, अतएव फिर घर मे ले गया। उस समय सूर्यास्त हो रहा था। बाहर मजदूरनियो ने धान कूट कर रक्खा था, उसे तौल कर लेना था, उधर गाय-भैस के आने का समय भी हो चला था। ग्वाला केवल यह कह कर आगे बढ जाता था कि "तुम्हारे ढोर आ गये है, सम्हालो!" इस लिए आते ही उन सब पशुओ को भी बाँधना था। इस प्रकार काम की गडबड में मै भी रोती हुई रंगू को वहा छोडकर बाहर चल दिया। बेचारी अबोध बच्ची और भी जोरो से रोने लगी। तव क्या वह माता के लिए रो रही थी? अथवा क्या वह यह चाहती थी कि माता प्रेम-पूर्वक हाथो से मेरी पीठ थपथपावे? या वह इस लिए रो रही थी कि माता उसकी ओर प्रेम से देख भर ले? अबोध (मूक) बेचारी! छोटी-सी निर्बल बच्ची। उसकी माँ बेचारी बिस्तरे पर पडी हुई तिलमिला रही थी; बीच-बीच मे 'वात' के कारण उल्टी-सीधी बाते भी बकती थी। कभी-कभी उस रगू को दो-दो दिन तक माता के दर्शन भी नही हो पाते थे। तब क्या उसकी आत्मा इस प्रकार माता से मिलने के लिए रोती या चिल्लाती थी? अथवा क्या रोती हुई वह यह कह रही थी कि "मुझे मेरी माँ के पास लिटा दो, मुझे न दूध चाहिए और न कोई दूसरी वस्तु। मै इन में से किसी के लिए भी लालायित नही हू; मै तो केवल इतना ही चाहती हू कि उसकी बगल मे मुझे लिटा दो और वह अपना दुर्बल प्रेम-भरा हाथ मेरी पीठ पर फेरती रहे; उसीसे मेरा पोषण हो सकेगा।" भला उसके रुदन की भाषा कौन समझ सकता है? उस बाल-हृदय की उस आत्मा की परीक्षा कोई कैसे कर

सकता है? रगू जोरो से, चीख कर रोने लगी! उसकी हिचकी बँध गई और उस पर दया आने लगी!

किन्तु मेरी माता भी अकेली क्या-क्या करती? वह धान को तौलती या दिया जलकर तुलसी को दिखाती? ढोरो को बाँधकर दूध दुहती या जीजी के लिए काढा उवाल कर भोजन वनाती? वह रगू को चुप करने के लिए उठा कर टहलती या जीजी के पास वैठ कर उसके हाथ-पाँव दवाती? उस वेचारी के क्या कोई हजार हाथ थे? किन्तु माता तुझे धन्य है! स्त्रियो की सहन-शीलता कम से कम भारतीय-समाज मे तो अद्वितीय ही कही जा सकती है। वेही इतना साहस रखती है जो दिन-रात सकटो का सामना करती हुई भी अपने कर्तव्य का यथावत् पालन कर सकती है। भारतीय-महिलाओ को उनकी क्षमा-वृत्ति के लिए 'भूमाता' (पृथ्वी) की ही उपमा दी जा सकती है। अन्य कोई उपमा उनके योग्य नही हो सकती। ऐसी महान्-श्रेष्ठ महिलाएँ, जिस घर मे होती है, उसे मैं तो साक्षात् लक्ष्मी-सरस्वती का मदिर ही मानता हूँ। उन देवियो के चरण-कमलो मे मेरा मस्तक अनायास झुक जाता है। मैं अन्य देवालयों-मदिरो को नही जानता।

हा, तो रगू के इस प्रकार रोने-चिल्लाने से मेरी माता वहुत संतप्त और क्रुद्ध हुई। क्योकि उसकी क्षमा और सहन-शीलता के लिए भी तो कोई सीमा हो सकती थी—कोई मर्यादा होनी चाहिए थी! वह उसी क्रोध, दुःख एव सताप के कारण विक्षिप्त-सी हो कर कहने लगी "कहां गया यह दुष्ट? केवल छाती पर चढ कर घडीभर खा लेता है, किन्तु इधर का तिनका उठा कर उधर तक नही रखता! उधर उस जन्म मे तो न जाने क्या दीये लगाये होगे, और अव यहा आया है माता का जी जलाने के लिए। जरा इस वच्ची को लेकर टहलने को कहा तो वेचारा एरण्ड की तरह फूल गया! मुए को तीनो समय ठकोसने को चाहिए पेटभर! श्याम्या, अरे ओ शैतान! उठाकर ले जा न इसे! कैसी विलख रही है वेचारी! हिचकी वँध गई! उठाता है या लाऊ छडी? वेचारी गुणवती गरीव वेटी दुःख भोग कर मर रही है, परन्तु तू नही मरता। मुझे सताने और जी जलाने के लिए ही छाती पर वैठा है क्यो?"

मै माता के इन दुःख एवं संताप भरे शब्दो को चुपचाप सुनता रहा। किन्तु उसके अन्तिम शब्दो ने मेरे मर्म पर आघात किया, और मै एकदम रोने लगा। रोते-रोते ही मैंने उस असहाय भानजी रगू को उठाया और बाहर चला गया। उसे छाती से लगाकर शान्त करने के लिए श्लोक और गीत सुनाने लगा। रामरक्षा का स्तोत्र भी पाठ किया। और कंधे पर उठा कर मै आँगन मे टहलने लगा। थोड़ी देर मे वह सो गई।

किन्तु माता के शब्दो ने मुझे जागृत कर दिया और यह भी मालूम हो गया कि ससार मे मनुष्य को जीना किस लिए चाहिए! सच है बिना चकमक झडे चिन्गारी भी तो नही पडती! मेरे जीवन मे भी चिन्गारी पडी; उसमे भी तेज और प्रकाश फैल गया। गुणी मनुष्य की ही संसार मे चाह होती है। गुणहीन-निकम्मा-अभागा जीवन किस काम का? उसी दिन मुझे यह अनुभव हुआ कि मै किसी के भी काम मे नही आता हू, सबके लिए मेरा जीवन भार-रूप हो रहा है, और सब को उससे कष्ट पहुँचता है। बस, उसी दिन से मेरे जीवन की दिशा बदल गई, मेरी अवस्था मे एकदम परिवर्तन हो गया। यह कहावत झूँठ नही है कि प्रत्येक काम के लिए एक खास समय आता है; और तब तक उसकी प्रतीक्षा करनी पडती है। फलत. मैंने भी परमात्मा से प्रार्थना की। ऊपर आकाश की ओर देखते हुए नये उगने वाले तारे को लक्ष्य कर के प्रार्थना की कि "हे ईश्वर! मै आज से अच्छा बनने का प्रयत्न करूगा। मेरे इस निश्चय—प्रण से आप प्रसन्न हो और मुझे अच्छा बनाने के साथ ही मेरी जीजी को भी रोगमुक्त करे।"

और सचमुच ही उस दिन से जीजी की हालत सुधरने लगी। थोडे ही दिनो मे वह बिल्कुल स्वस्थ हो गई। वह शरीर से स्वस्थ हुई, और मैं मन से—अन्त.करण से—शुद्ध हो गया। दोनो का ही पुनर्जन्म हुआ। जीजी को नया शरीर प्राप्त हुआ और मुझे नया हृदय मिला!

---

२१ सात्त्विक प्रेम की भूख

"क्यों रे गोविन्द! शुरूआत कर दू न अब?" श्याम ने पूछा। इस पर गोविन्द ने कहा "जरा देर ठहरो श्याम! वे बूढे बाबा अभी नही आये है। उन्हे तुम्हारे मुँह का एक शब्द भी खोने—न सुन पाने—से दुख होता है।"

"किन्तु ऐसा मेरे शब्दो मे है ही क्या? सीधी-सादी बाते ही तो मै सुनाता हू। दुनिया बड़ी विचित्र है।" श्याम ने उत्तर दिया।

"तुम जो कुछ कहते हो, वह तुम्हे अच्छा लगता है, इसी लिए कहते हो, या कि वह तुम्हे भी व्यर्थ ही प्रतीत होता है? यदि अपने लिए व्यर्थ प्रतीत होने हुए भी तुम यह सब स्मृतिया लोगो को सुनाते हो तो, एक प्रकार का पाप करते हो! यह सब लोगो के लिए धोखे की बात होगी! क्योकि जो वस्तु अपने-आप को त्याज्य और अयोग्य जान पडती हो, वह दूसरो को कैसे दी जा सकती है?" माधव ने पूछा।

इस पर गोविन्द बीच मे ही कहने लगा "किन्तु लोगो के हृदय मे जो श्रद्धा है उसे क्यो हटाते हो? उन्हे तुम्हारी बाते सुनने मे आनन्द प्राप्त होता होगा तभी तो वे आते है, और समय पर आने के लिए उत्सुक रहते है!"

"लो, देखो! ये बूढे बाबा आ ही गये! आइये, इधर बैठिये" राम ने कहा।

किन्तु बूढे बाबा ने एक तरफ बैठते हुए उत्तर दिया "यहा ही अच्छा है। यो इधर सामने बैठता हूं।"

इसके बाद राजा ने कहा "श्याम! अब करो शुरुआत!" सब लोग उत्सुक हो चले। श्याम की कथा आरम्भ हुई। उसकी वह मधुर मुरली बजने लगी।

"मुझे पिताजी ने अपने गाँव से छह कोस दूर दापोली नामक कसबे में अगरेजी पढन के लिए भेजा था। मामा के यहा से प्रशसा प्राप्त कर मैं आही चुका था। इसके बाद कुछ दिनो तक घर पर ही मै वेद आदि पढ़ता

रहा । किन्तु अंत मे पिताजी ने मुझे अंगरेजी पढाने का ही निश्चय किया । क्योकि दूसरी कक्षा तक तो मै पढ ही चुका था ।

दापोली एक छोटा-सा किन्तु वडा सुन्दर कस्वा है । वहा की हवा वडी आरोग्य-कारी है । समुद्र वहा से केवल चार ही कोस पर है । वहा वडे-वडे मैदान भी है । किसी समय वहा गोरो की पलटन रहती थी; इसी लिए अव तक उसे केम्प दापोली कहते है । वाद मे अशिक्षित लोग इस केम्प शव्द को 'कॉप' कहने लगे, और इसी लिए आज वह कॉप-दापोली कहलाती है । वैसे भी यदि देखा जाय तो मेरी तहसील-वाला प्रदेश अंगरेजो के अधिकार मे अन्य महाराष्ट्र से पहले ही चला गया था । नाना साहव पेशवा ने आंगरे की जलसेना को अगरेजो की सहायता से डुवादिया, यह उनके हाथो भयकर भूल हुई थी । क्योकि आंगरे की जलसेना अगरेजो के लिए घोडे की पछाड के समान थी । उसने केवल अगरेजो की ही नही, वरन् अन्य कई विदेशियो की जलसेना का अरव-सागर में पराभव किया था । महाराष्ट्र में सवसे पहले छत्रपति शिवाजी महाराज ने ही जल-सेना का वडे प्रयत्न से निर्माण किया था । उनसे पहले मराठो का एक डोगा तक अरव-सागर में तैरता नही दिखाई देता था । किन्तु उन महापुरुष ने जलसेना का महत्त्व समझ लिया था । उनकी राजनीति मे यह एक सिद्धान्त ही वन गया था कि 'जिस का सागर वही धनागर' अर्थात् जिसका समुद्र पर अधिकार है वही यथार्थ मे सम्पत्ति-शाली है । किन्तु नाना साहव ने खुद ही अगरेजो के मार्ग की यह वाधा हटा दी । और इसी कारण उन्हे आगरे की जलसेना को नष्ट करने के लिए वदले मे जो प्रदेश मिला, उसमे वाणकोट, दापोली आदि समुद्र तटवर्ती गाव थे । परन्तु इसी तहसील के वेलास नामक गाँव के रहने वाले नाना फडनवीस थे, जिन्होने मनसवदारी की तलवार चमकाई थी । इसी तहसील मे देश की स्वतंत्रता के लिए आमरण जूझने वाले तथा "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मै अवश्य प्राप्त करूगा" की गर्जना करने वाले 'केसरी' और 'मराठा' के सम्पादक एवं गीता-रहस्य के निर्माता लोकमान्य तिलक भी उत्पन्न हुए थे । इसी प्रकार सामाजिक दासता के विरुद्ध विद्रोह खडा करने एव केवल तीन ही लड़कियां लेकर हिंगने (पूना) मे आश्रम स्थापित करने वाले

महिला-विद्यापीठ के संस्थापक कर्मवीर 'कर्वे' की जन्मभूमि भी इसी ताल्लुके मे है। स्वाभिमानी विश्वनाथ नारायण माडलिक और गणित-विशारद रघुनाथ पुरुषोत्तम पराजपे भी यही के है।

दापोली के आसपास जंगल भी खूब है। सुरू वृक्ष की घनी झाडी है। उसमे से होकर जब हवा चलती है तो ऐसा जान पडता है मानो समुद्र गर्जना कर रहा है। उसमे काजू के वृक्ष भी बहुत है। गर्मी के दिनो मे लाल, पीले या सिन्दूरिया रग के काजू के गुच्छे उन वृक्षो पर झाड-फानूस की तरह डौलते रहते है। साराश, दापोली और उसके आसपास के गाँव प्राकृतिक-सौन्दर्य की लीलाभूमि के समान है।

उस समय दापोली का अगरेजी-स्कूल मिशन् का था। किसी समय वहा का छात्रालय (बोर्डिंग) सारे बम्बई प्रदेश मे विख्यात हो गया था। मिशन-स्कूल एक टेकडी पर था। उसके चारो ओर कलमी आम के पेड़ भी बहुत थे। इस कारण स्कूल बहुत सुन्दर दिखाई देता था। उसी स्कूल मे मैं भर्ती हुआ; और यथानियम मेरी अगरेजी शिक्षा आरम्भ हो गई।

दापोली से मेरा गाँव साढे छह कोस दूर था। इस लिए प्रथमत. मुझे यह विश्वास नही हुआ कि इतनी दूर मैं पैदल जा सकूगा या नही! किन्तु एक बार चलकर जाने पर आत्म-विश्वास हो गया। बस; तभी से मै प्रत्येक शनिवार को घर जाने लगा। दो-पहर को दो बजे छुट्टी होते ही मै चल देता और शाम को दिये लगने तक घर पहुँच जाता। इस प्रकार रविवार का दिन घर मे माता की प्रेममयी छाया में बिताकर सोमवार को प्रात. फिर चल देता, सो दस बजे तक दापोली-स्कूल मे पहुँचा जाता।

इसी नियमानुसार एक शनिवार को मैं घर जाने के लिए निकला। किन्तु उस दिन मेरा चित्त कुछ खिन्न और दुखी था। उस दिन ऐसा जान पड़ता था, मानो ससार में मेरा कोई भी नही है। मुझ मे बचपन से ही ऐसा भाव रहा है, और इसी लिए कभी-कभी मेरे मन मे एकदम यह विचार उठता था कि सचमुच ही संसार मे मेरा कौन है? इसी विचार के कारण मैं अनेक बार जी-भर कर रोता रहा हू। मुझे कितनी ही बार यह भी अनुभव हुआ है कि, बिना किसी कारण के ही एकदम ऑखे भर आई और हृदय गद्-गद् हो गया। मैंने देखा कि इस अपार सागर मे मैं एक बिन्दु

के समान, किसी वृक्ष की एक छोटी-सी पत्ती के समान हू । क्षणभर मे ही सूख जाऊंगा, टूट कर गिर जाऊगा। इस प्रकार निराधार-भावना के निराशा-पूर्ण विचार मेरे मन मे वचपन से ही उत्पन्न होते रहे ह । वाल्या-वस्था से ही मै सहानुभूति और प्रेम का भूखा रहा हू । मानो ये दोनो ही वस्तुएँ मुझे सैकडो जन्म से नहीं मिली हैं; : और इसी लिए हजारो वर्ष से मै इन दोनो का भूखा हूं। ठीक भी है। मनुष्य अन्न के विना तो जी सकता है, किन्तु प्रेम के विना उसका जीवन क्यो कर सम्भव है? प्रेम ही तो जीवन का सार है। जो प्रेम स्थिर है, अटूट है, वही जीवन-रूपी वृक्ष का पोषण कर सकता है। वृक्ष के प्रत्येक पत्ते और शाखा-प्रशाखा एवं समग्र अग-प्रत्यग मे आमूलाग्र जिस प्रकार जीवन-रस भरा हुआ होता है, उसी प्रकार प्रेम भी होना चाहिंए। किन्तु सोडा-वॉटर की बोतल खोलते ही उफन् कर बाहर निकल जाने वाले पानी की तरह; क्षणभर में नामशेष हो जाने वाला प्रेम जीवन में ताजगी, नवीनता, सौन्दर्य, उल्हास और उत्साह का संचार नही कर सकता।

उस दिन मानो मै इसी प्रेम के लिए भूखा हो रहा था। मै चल दिया। घर की प्रेम की हवा खाने के लिए निकल पड़ा। लोकमान्य तिलक कहा करते कि "मै सिंहगढ पर जा कर दो महिने रहता हूं। इतने समय में वहा की शुद्ध और स्वच्छ हवा, स्वतन्त्रता की हवा भरपेट खा लेता हू; और वह मेरे लिए वर्षभर तक काम देती है।" मेरी भी मानो यही दशा हो रही थी। प्रति सप्ताह मै घर जा कर वहा की प्रेममयी वायु सेवन कर आता, और उसी के बल पर मै प्रेम-हीन ससार मे छह दिन बिताकर फिर घर चला जाता। उस अवस्था मे मै प्रेम पाने के लिए क्षुधार्त रहता था। किन्तु आज यह अनुभव होता है कि प्रेम पाने की अपेक्षा प्रेम करने-देने मे विशेष आनन्द प्राप्त होता है। फिर भी यदि अकुर को छोटा रहने की दशा में प्रखर ताप से सूखने या जलने न दे कर आवश्यकतानुसार जल से सीचा जाय, तो बडा हो कर वही हजारो को प्रेमरूपी छाया दे सकता है। जिन्हे बढती हुई अवस्था-वचपन—मे प्रेम की प्राप्ति नही होती, वे आगे चलकर जीवन मे कठोर स्वभाव के हो जाते हैं। वे ससार के साथ प्रेम

नही कर सकते। उसे कुछ भी नही दे सकते। क्योंकि संसार में जो किसीसे कुछ लेता है, वही दूसरो को दे भी सकता है।

मै रास्ते में चला जा रहा था और बीच-बीच में मेरी आँखो से आँसू टपक रहे थे। उस साढ़े छह कोस के रास्ते मे बीच मे कितने ही गाँव आते थे। एक जगह जंगल भी था। करंजनी गाँव के किनारे मार्ग मे ही एक कुआ था। कहते है कि किसी समय उस कुए के पास उधर से जाती हुई एक सारी बरात ही अदृश्य हो गई थी। इसी लिए उस स्थान पर पहुँचते ही मुझे भय-सा लगता था। और मै राम-राम बोलता हुआ दौड़ कर निकल जाता था। इसके बाद जंगल आने पर यह शंका होने लगती कि कही इधर-उधर से बाघ या सिंह तो नही आ जायगा! उस समय मै यही कोई बारह-तेरह वर्ष का था। बहुत बड़ा तो था ही नही। मार्ग में चलते हुए मुझे प्यास लगी, इस लिए, एक कुए मे उतर कर मैने पानी पिया। वह घोडा-कुण्ड था। अर्थात् उसमे घोड़ा भी अंदर जा कर पानी पी सके; इतनी चौड़ी सीढियां बनी हुई थी। मै पानी पी कर आगे बढ़ा। रात हो जाने के भय से मैने फुर्ती के साथ पैर उठाना आरम्भ किया।

अन्त में जैसे-तैसे मै घर पहुंच गया। उस समय दिये जल चुके थे। छोटा भाई श्लोकादि सुना रहा था। माता चूल्हा सुलगा रही थी। दादी किसी के लिए राख की डली पर मत्र फूक रही थी। किसी को बुरी नजर लग जाने पर लोग मेरी दादी के पास आम के पत्ते पर ठंडी राख की चुटकी ले कर आते; और दादी मत्र बोलती हुई उस राख को उगलियो से मसल देती। वह राख ले जा कर जिसे नजर लगी हो उस बच्चे के सिर-कपाल पर लगा देते थे।

मेरे आँगन में पहुँचते ही छोटे भाई "दादा आया, भैय्या आया" कहकर आनन्द के मारे कूदने लगे; और मुझ से लिपट गये। उनके साथ मै घर मे गया। माता ने पूछा "क्या आज देर से चला था? कुछ जल्दी चल देना चाहिए था! रास्ते में ही रात हो गई!"

मैने कहा "मुझ से चला नही जाता था, माँ। मेरे हाथ-पाँव ढीले पड़ गये थे।"

"तो फिर पैदल क्यो आया? अगली संक्रान्ति को आना था!" माता ने कहा।

"मै तुझे देखने—तेरे दर्शन करने को आया, माँ! तेरी ओर श्रद्धा-भक्ति और प्रेम-पूर्वक देख लेने से मुझ मे शक्ति आ जाती है। उस शक्ति को ले कर मै वापस चला जाऊगा।" यो कहकर मै माता से लिपट गया और रोने लगा। माता को भी रोना आ गया और भाई भी रोने लगे।

किन्तु क्षणभर मे ही माता ने अपने आँसू पोछ कर साड़ी के पल्ले से मेरे आँसू भी पोछ दिये और कहा "ले यह गर्म पानी; इससे पाँव धो डाल। किन्तु ठहर। थोडा-सा तैल लगा देती हू; ऊपर से गर्म पानी से धो डालना।" यो कहकर माता ने मेरे पैरो मे तैल की मालिश कर दी। वह पैरो मे तैल लगा रही थी और मै उसकी ओर देख रहा था। उस समय मुझे कितना आनन्द हो रहा था! उस समय की अवस्था के लिए मै आनन्द शब्द का भी प्रयोग करना नही चाहता। क्योकि उसके लिए यह शब्द अपर्याप्त होता है। वह स्थिति अनिर्वचनीय थी, अति पवित्र थी।

मै हाथ-पाँव धो कर चूल्हे के सामने माँ के पास जा कर बैठ गया। इतने ही में छोटे भाइयो ने आकर कहा "दादा! कहानी सुना! नही तो हमे कोई श्लोक ही सिखला।" तब तक पिताजी बाहर से आ गये। वे कही से त्रस्त (खिन्न) हो कर आये थे। कदाचित् इसी लिए उन्हे मुझको देखकर सदैव की तरह आनन्द नही हुआ। वे मुझ से बोले भी नही। बाहर ही पाँव धो कर सध्या करने बैठ गये।

उसी समय उन्होने पूछा "क्यो रे! तूने संध्या कर ली?" मै उन दिनो संध्या तो करता था; किन्तु संध्या के मत्रो का अर्थ न समझते हुए भी तंत्र (क्रिया) मात्र सब करता था, और मुँह से सब कुछ बोल जाता था।

मैने कहा "अभी नही की; अब करता हूं।"

यह सुन उन्होने क्रोध-भरे स्वर मे कहा "तब तू वहा चूल्हे के पास क्यो बैठा है? उठ! पहले संध्या कर; फिर बाते करना।"

इस पर माता ने कहा "यह अभी तो आया है। थक गया है। हाथ-पाँव शिथिल हो रहे है। इसी लिए सुस्ताने को बैठ गया था। जा श्याम, उठ! संध्या-वंदन कर!"

मैं पचपात्र मे जल लेकर पाट पर जा बैठा; और कपाल पर भस्म लगा कर आचमन करने लगा। उस समय मेरे आँसुओ के रूप से सैकडों अर्घ्य ईश्वर के चरणो मे गिर रहे थे। पिताजी ने फिर पूछा "वहां भी सध्या आदि करता है या नहीं? और ये सिर पर बाल कितने बढ गये है? क्या वहा नाई नही मिलता है? सिर कौए की तरह हो रहा है। मैं जब वहा आया तब भी तो कह आया था कि हजामत बनवा लेना! फिर क्यो नही बनवाई? जान पडता है अब तेरे सीग निकलने लगे है, क्यों? कल सवेरे उस गोदू या लच्छू नाई को बुलाकर हजामत बनवा ले, नही तो यहा रहने की जरूरत नही। एकदम वापस दापोली चला जा।"

मैं तो यहा प्रेम की भूख मिटाने आया था, किन्तु मिली मुझे फटकार! चाहिये तो थी रोटी और मिले मुझे पत्थर! मैं अपने हृदय के उफान् को न रोक सका। वह निकल ही पड़ा। इस पर फिर वे झिड़कते हुए कहने लगे "इस तरह रोने को क्या हुआ? क्या किसी ने मारा है? सब ढोंग करना सीख लिया है।"

इस पर माता ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा "बनवा लेगा कल हजामत। वहा पैसे देने पडते है। पास मे नही होगे इस लिए नही बनवा सका होगा। फिर वहा दस बजे ही स्कूल में भी तो जाना पडता है। श्याम रो मत, चुप हो जा। यदि सध्या हो गई हो तो उठ कर आप आरती कीजिये। मैं थालियाँ परोसती हूं। बेचारा भूखा हुआ होगा।"

इस प्रकार माता अमृतमयी वाणी मे मुझे आश्वासन दे रही थी। मुझे जीवन और मृत्यु, अमृत और विष का साथ ही साथ अनुभव हो रहा था। ग्रीष्म और वर्षा, शरद और शिशिर साथ-साथ अपना प्रदर्शन कर रहे थे।

आरती हो गई और थालिया भी परोस दी गईं। हम लोग भोजन करने बैठे। माता ने मुझे दही परोसा। किन्तु केवल मेरे ही सामने रखा। पास मे छोटा भाई बैठा था, उसे नही परोसा। तब मैंने यह देख कर कि मेरी ओर किसी का ध्यान नहीं है, अपने पास का दही छोटे भाई के भात में मिला दिया। उसे वह दही देते हुए मैं अपने को धन्य मान रहा था। उस दिन मैं भ्रातृ-प्रेम के कारण गद्-गद् हो रहा था। उस समय

यदि मेरे शरीर में कहीं उंगली भी लगाई जाती तो उसी क्षण पानी निकल आता! मानो मैं अश्रुमय हो गया था, आँसुओं की मूर्ति बन गया था। बड़ा हो जाने पर मैंने अपने भाइयों को रुपये-पैसे भी दिये होंगे; किन्तु उस रात को दही देने में जो मधुरता थी, जो सहृदयता थी, वह उन रुपये-पैसों में नहीं हो सकती।

हम सब भाई बातें करते-करते बिस्तरों पर जा लेटे। उन्हें नींद आ गई; किन्तु मैं जागता रहा। बड़ी देर तक मन ही मन अपने भावावेश को रोकता रहा। अन्त में मुझे भी नींद आ गई। प्रातःकाल उठकर पिताजी खेत पर चले गये। मैं जाग चुका था। माता चौका लगा रही थी, और मुँह से कृष्ण की बाल-लीला के गीत गा रही थी :—

> कृष्ण यशोदा का बाल। सुकुमार लड़ैता लाल॥
> कृष्ण यशोदा का प्यारा। पिये प्रेम दुग्ध-धारा॥
> कृष्णबाल मेघःश्याम। प्यारे भैया बलराम॥*

मैं बड़े ध्यान से गीत सुन रहा था। मेरी माता का नाम यशोदा था और मेरा नाम था श्याम! मानो, माता मुझे ही प्रेमरस का पान करा रही थी। वह प्रेम-रूपी दूध की धार पिला रही थी। मैं एकदम उठा और माता के शरीर से लिपटकर कहने लगा "माँ, तू मुझे अपनी गोद में सुलाकर अपनी साड़ी की चौतही उढ़ा दे। इसके बाद थोड़ी देर मेरी पीठ थपथपा। रहने दे यह चौका-बर्तन! यह फिर हो जायगा।" भला; बेटे के सामने माँ का क्या वश चल सकता है! मैं उस समय मानो दुधमुँहा बच्चा ही बन गया और झट् से जा कर माँ के पास सो गया। माता मेरी पीठ थपथपाती हुई गाने लगी :—

> नव प्रभात का समय, दूर से कुक्कुट शोर मचावे।
> तो भी मेरे लाल लाड़ले, तुझ को निंदिया आवे॥ १॥

---

* कृष्ण यशोदेचा बाळ। सुकुमार लडिवाळ॥
कृष्ण यशोदेचा तान्हा। त्याला पाजी प्रेमपान्हा॥
कृष्णबाल मेघःश्याम। यशोदेचें प्राशी प्रेम॥

पनिहारिन सब चली कुए पर, कटि पे कलसा धारे।
जल भर कर लाऊं मैं झटपट, तू भी सो जा प्यारे ॥ २ ॥
सुन्दर पलना, नर्म बिछौना, मेरे लाल को भावे।
गीत सुनाऊं तुझे लाड़ले, मधुरी निंदिया आवे ॥ ३ ॥
अरुणोदय हो गया वृक्ष पर, कौए बोल सुनावे।
पर तू सुख की नींद सो रहा, मैया बलि-बलि जावे ॥ ४ ॥
काम-काज की घड़ी अभी तू, कर विश्राम दुलारे।
सोजा सोजा-सोजा प्यारे, श्याम नयन के तारे ॥ ५ ॥ *

मैंने गीत सुनते-सुनते ही कहा "माँ, मैं अभी यहां से चला जाता हूं। अब यहां नही ठहरूंगा। मेरे आने से पिताजी कितने नाराज हुए! इस लिए उनके खेत से लौटने के पहले ही मुझे चला जाने दे।"

यह सुन माता ने कहा "नही, ऐसा मत करे श्याम! भला, यह भी कोई बात है! अरे, यदि वे तुझ पर नाराज भी हुए तो क्या उनके मन मे तेरे लिए बुरे भाव हैं? बाहर किसी ने उनका अपमान किया होगा, उसी गुस्से में वे घर आ कर तुझ से इस प्रकार बोले हैं! आज-कल अपनी दिनदशा बुरी है! तू भी तो इस बात को जानता है नँ? उनका चित्त निराशा के कारण उदास रहता है। उनकी बात पर ध्यान नही देना चाहिए। अरे! जब उन्होने स्वय कष्ट उठा कर तुम्हे बड़ा किया, तो क्या उन्हे दो शब्द कहने का भी अधिकार नही? इतने वर्षो तक उन्होने लोगो के मुँह से भला-बुरा सुना, अपमान सहन किया और धक्के सहे, कष्ट भोगा और

---

* पहाटेची वेळ। दूर कोंबडा आरवे।
परी बाळा झोंपीं जावे। लहान तूं ॥ अंगाई ॥
पहांटेची वेळ। वाजुं लागती रहाट।
बाळा तूं रे पाळण्यांत। झोप घेई ॥ अंगाई ॥
पहांटेची वेळ। का-का करितो कावळा।
झोपे परि माझ्या बाळा। उठूं नको ॥ अंगाई ॥
पहाटेची वेळ। कामाची आहे घाई।
झोप तूं बाळा घेई। आई म्हणे ॥ अंगाई ॥

तुम्हे छोटे-से वडा किया, तुम्हे पढाने के लिए कर्ज लिया और खुद फटी धोती पहन कर भी वे तुम्हे वरावर पैसे दे रहे है ! क्या उन सव उपकारों को तू इन दो शब्दो की फट्कार से ही भूल जायगा ? और उन्होने भी तेरे सिर के वाल वहुत वढ जाने से ही ऐसा कहा ! पुराने लोगो को ये वाते नही सुहाती। तू अभी छोटा है, इसी लिए उन्होने ये वाते तेरे भले के लिए कही हैं। कल को वड़ा हो जाने पर कौन कहने वाला है ? और कौन सुनने वाला ! क्या माता-पिता को सन्तुष्ट करने के लिए तू हजामत वनवाने को भी तैयार नही हो सकता ? माता-पिता की धर्म-भावना को आघात न पहुँचाने के लिए तू इतना भी करना नही चाहता ?"

इस प्रकार माता मुझे समझा रही थी । किन्तु मैने उसके अन्तिम प्रश्न पर पूछा कि "इन वालो मे किस वात का धर्म है ?"

इस पर उसने कहा "धर्म तो प्रत्येक वात और प्रत्येक वस्तु मे है। क्या खाया जाय और क्या पिया जाय, इसमें भी धर्म है । अच्छा, यह तो वतला कि तू सिर पर इस प्रकार वाल ही क्यों वढा रहा है ? केवल मोह, सुन्दर दिखाई देने की भावना से ही तो ! किन्तु इस मोह-मिथ्या-भाव को छोडने का नाम ही धर्म है ।"

मित्रो ! माता उस समय भले ही मुझे अपनी वात ठीक तरह पर न समझा सकी हो; किन्तु आज उसका प्रत्येक शब्द मेरी समझ में आ रहा है। हम आश्रमवासियो के लिए यह वतलाने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि हमारी प्रत्येक वात मे, प्रत्येक क्रिया मे धर्म-तत्त्व विद्यमान है। प्रत्येक काम को विचार-पूर्वक करने, सत्य-हित और कल्याण के लिए करने का नाम ही धर्म है। वात-चीत, उठने-वैठने, देखने-सुनने खाने-पीने, नहाने-धोने, सोने-जगने, लेने-देने आदि प्रत्येक कार्य मे धर्म है। धर्म का अर्थ है हवा और धर्म का रूप है प्रकाश। हमारे जीवन के लिए धर्मरूपी हवा की सदा-सर्वदा और सर्वत्र ही समान रूप से अनिवार्य आवश्यकता रहती है। मैंने सिर पर जो वाल रखवाये थे; वे केवल अपने आप को सुन्दर दिखलाने की भावना से ही ! किन्तु सच्ची सुन्दरता सद्गुण और सदाचार एव स्वच्छता ही मे हो सकती है, यह वात आज मेरी समझ मे आ रही है।

उस दिन मैं पिताजी पर अप्रसन्न हो कर दापोली जा रहा था, किन्तु माता ने नही जाने दिया। वह मुझे प्रेम-दान के साथ ही सन्मार्ग-प्रदर्शन भी करती थी। उसका प्रेम अन्ध और अज्ञान-मय नहीं था।

इस प्रकार समझा-बूझा कर माता अपने काम-काज करने चली गई और मैं अपने भाइयो के साथ कुछ देर तक और सोता रहा। इसके पश्चात् उठ कर मैं नाई को उसके घर से बुला लाया। वह हमारा पुश्तैनी नाई था। उसे वर्ष-भर मे निश्चित परिमाण मे अनाज दिया जाता था; और बदले में वह हर आठवे दिन आ कर घर के लोगों की हजामत बना जाता था। साथ ही दिवाली के दिन वह तैल की मालिश करने भी आता था। उसके साथ उन दिनो इस प्रकार शुद्ध प्रेम-मय सम्बन्ध रहता था। किन्तु खेद है कि आज शहरों मे तो क्या छोटे-छोटे गाँवो में भी वह भाव देखने मे नही आता। वहां भी आज यह प्रथा नामशेष होती जा रही है।

गोविन्दा हमारा घरेलू नाई था। उसने मुझे देखते ही पूछा "क्यों श्याम भैया! सिर पर बाल तो बहुत बढा लिये हैं?" मैंने कहा "गोविन्द! तेरा हाथ बड़ा हल्का है। वे कॉप (केम्प) दापोली के नाई तो बहुत ही रुलाते है।" इन शब्दों को सुन गोविन्द को सन्तोष हुआ।

हमने स्नान किया और पिताजी भी बाहर से लौट आये। आते समय वे साथ मे एक तँवस (पुरानी ककडी) भी लाये थे। कोकण मे इस प्रकार ककडियाँ छत में लटका कर महिनो तक रखते हैं। वे चार-पाच महिने तक खराब नही होती। वर्षाऋतु के कद्दू और ककड़ियॉ होली तक खराब नहीं होते। होली का ढोल बजते ही समझ लिया जाता है कि अब वे काम के नही रहेगें। अस्तु।

पिताजी नें मेरी माता से कहा "यह ककड़ी लाया हूं। इसके पतोड़े बनाना। श्याम को वे बहुत पसंद है।. ये हल्दी के पत्ते भी लाया हूं।" इसके बाद हम लोगो की ओर देख कर बोले "मालूम होता है तुम लोगों ने स्नान कर लिया। श्याम, जरा चूल्हे मे इन्धन डाल दे। मैं भी स्नान कर के देवालय में जाता हूं। आज आवर्तन (पाठ) करना है। तेरे लिए मैं हर पदरहवे दिन गणपति पर एकादश-पाठ द्वारा अभिषेक किया करता हूं।"

पिताजी के मधुर शब्दों को सुन कर मैं बहुत झेंपा और शर्माया। कल ही रात को वे मुझ पर नाराज हुए थे; किन्तु आज उनका कितना हार्दिक-प्रेम मेरे साथ प्रकट हो रहा था! मेरे कल्याण के लिए और मेरा अध्ययन ठीक तरह पर चलता रहे, इसके लिए वे निरन्तर परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे! मुझे ककड़ी के पतोड़े बहुत पसद है, इस लिए बाहर घूमने जा कर खास तौर पर वे पुरानी ककड़ी लाये! और उन्हीं पर नाराज हो कर मैं दापोली चला जाने को था! यदि बाहर से लौटने पर उन्हे पता लगता कि गुस्सा हो कर मैं वापस दापोली चला गया, तो उन्हे कितनी निराशा होती! उस प्रेममय महान् पितृ-हृदय को कितना दु.ख होता? उस समय तो वे यही सोच कर खिन्न होते "क्या यही मेरे पुत्र की पितृभक्ति है! यही सन्तान की कृतज्ञता है! क्या इसी का नाम प्रेम है, कि हित के दो कटु शब्द भी वह सहन न कर सके! केवल दो कटु बातों से ही वह मर जाय?"

मैंने कृतज्ञ-भाव से पिताजी की ओर देखा। बाहर चूल्हे पर पानी गर्म करने के लिए मैंने उसमें घास-फूस डाल कर आग सुलगाई। इसके बाद घर मे जा कर पिताजी के लाये हुए पुष्पो मे से जसौधी के डेंट आदि तोड़ कर साफ किये; और भिन्न-भिन्न रंगो के विभिन्न प्रकार के फूलो को थाली में सजा कर रख दिया। तुलसी, दुर्वा (दूब) और बेलपत्र भी ठीक तरह पर रख कर चुटकी भर चावल भी पूजा के लिए रख दिये। इस प्रकार पूजा की सारी तैयारी कर दी। कोरंटा के गुलाबी फूल बहुत कोमल दिखाई देते थे; साथ ही उनमे गुलाब और कर्ण (कनेर) आदि के फूल भी थे। चरणामृत की छोटी-सी घण्टी मे नैवेद्य के लिए दूब भी रख दिया था। इसके बाद पिताजी के लिए सध्या का पाट (पटला) रख कर उसके पास ही भस्म का गोला भी रख दिया।

इस प्रकार पिताजी के लिए पूजन की तैयारी करने के बाद मैं माता के कार्य मे सहायता देने लगा। ककड़ी को छील कर मैंने उसे किसनी पर कसा। हल्दी के पत्ते पोछ कर साफ किये और इसके बाद मैं पत्तो पर आटा लपेटने लगा। यह काम माता ने मुझे पहले ही सिखा दिया था। चावल का आटा ककड़ी के कीस मे मिला कर उसे गुड़ के पानी मे घोल लेते

है, और तब वह गाढ़ा-गाढा पत्तो पर फैलाया जाता है। आधे पत्ते पर वह घोल फैला कर बाकी आधा उस पर ढँक दिया जाता है। इसके बाद उन्हे भाफ पर पकाया जाता है। उबल जाने पर पत्ता अलग हो कर पतोड़ा तैयार हो जाता है।

जब पिताजी की सध्या-पूजा समाप्त होने आई, तो मैंने उठ कर सरकण्डे के टुकड़े को चूल्हे मे से सुलगा कर नीराजन (दीपक) जलाया और वह पिताजी के पास रख दिया। हम लोग निरर्थक दिया-सलाई नही जलाते थे। घर की पूजा समाप्त करके पिताजी मदिर मे गये। इधर तब तक मैंने एक नारियल फोड़ा। क्योकि पतोड़े के साथ लगावन भी तो चाहिए था। वह और किस वस्तु के साथ खाया जाता? कोकण में घी की तो वैसे ही कमी रहती है, इसी लिए गरीब लोग छाछ की बूदो से ही अन्नशुद्धि कर लेते है! इस प्रकार घी की कमी कोकण-प्रदेश मे नारियल से पूरी कर ली जाती है। कच्चा नारियल किसनी पर कस कर उसे थोड़े-से गर्म पानी मे नमक डाल कर मिला देने के बाद हाथो से मसल कर निचोड़ लिया जाता है। यह नारियल का 'स्वरस' कहलाता है। यह बड़ा ही स्वादिष्ट और रुचिकर होता है। इसके साथ कोकण मे पतोडे, मोदक, खाडवी (खाद्य-विशेष) आदि पक्वान्न भी खाये जाते है। मैंने अच्छा गाढ़ा अगरस तैयार किया। भोजन की तैयारी हुई; पिताजी आये और बड़े ही आनन्द के साथ भोजन हुआ। उस दिन मुझे सब से अधिक आनन्द हो रहा था। पिताजी ने कहा "अरी, श्याम को एक पतोड़ा और रख, मेरी तरफ का परोस।" माता की तरह वे भी अत्यत प्रेमी थे। उन्होने शारीरिक-दण्ड (मार-पीट) हमें कभी नही दिया। वे दस बार उठने-बैठने, आँगन में का घास उखाड़ने, किसी वृक्ष को चार घड़े पानी पिलाने, देवता को दस बार नमस्कार करने, आदि की ही सजाएँ देते थे। कभी-कभी वे गुस्से मे दो-चार कड़ी बाते भी कह जाते, परन्तु मार-पीट कभी नही करते थे।

हमारा भोजन समाप्त हो जाने के बाद माता भोजन करने के लिए बैठी, और मैं उसके पास बैठ कर बाते करने लगा। इतने ही मे सबसे छोटा भाई जो कि पाच-छह वर्ष का था, वहा आ कर पूछने लगा "माँ, जाऊं क्या?"

मैंने कहा "कहा जाता है रे बाबू !"

उसने कहा "माँ जानती हैं, जाऊ क्या ?"

इस पर माता ने कहा "जा, परन्तु वहाँ श्लोक गाते हुए मत बैठ रहना।" यह सुन सदानन्द हँसता हुआ चला गया। उस छोटे भाई का नाम ही सदानन्द था। पिताजी उसे इसी नाम से सम्बोधन करते थे, परन्तु हम उसे बाबू कह कर पुकारते थे।

मैंने पूछा "क्या वह करदीकर के यहां झूले पर बैठने के लिए गया है ?"

माता ने कहा "नही रे, उसे टट्टी जाना होगा। किन्तु वह बडा शरारती है ! टट्टी जाने के लिए भी पूछने आता है ! वैसे कही किसी के घर जाना हो तो कभी पूछता तक नही। लुच्चा कही का ! वहा खुड्डी पर बैठकर जोरो से श्लोक बोलने लग जाता है; पागल !" इन बातो को सुन मुझे हँसी आ गई। बात ही बात मे माता ने कहा "श्याम, यदि आज तू चला जाता तो उन्हे कितना दुःख होता ! उनका अन्न जहर हो जाता, ग्रास गले के नीचे न उतरता। किसी समय जब उन्हे हिचकी आती या हाथ मे का ग्रास नीचे गिर जाता है; तो वे उसी क्षण कहने लगते है कि "कौन याद कर रहा है ! गजानन या श्याम ?" और उनकी हिचकी रुक जाती है। उनका तुम पर कितना अधिक प्रेम है ! अरे, मै भी बीमार ही बनी रहती हू। सच मानना, मै अब अधिक दिन नही जियूगी, उन्हे अकेला छोडकर मुझे चला जाना पडेगा। उन्हे भाई-बहन भी नही पूछते। गरीब का सहायक कौन हो सकता है ? तुम लडके ही। तुम्हारी ओर देखकर ही वे जी रहे है। तुमसे ही उन्हे आशा और सुख हो सकता है ! कहते-कहते माँ का गला भर आया। कुछ क्षण पश्चात् उसने फिर कहा "बेटा ! वे हमेशा कहा करते है कि यदि ये लड़के अच्छे हुए तो मेरा कालक्षेप हो जायगा; नही तो ये ही मेरे लिए भी काल बन जायँगे। इस लिए फिर कहती हू श्याम, तुम उनके लिए काल-स्वरुप मत बनना, बल्कि यदि काल आवे तो उसे मार भगाना, उन्हे सुखी करना।"

माता का भोजन समाप्त हो जाने के बाद मैंने उसके काम मे मदद

देना आरम्भ किया। पानी से धोकर पटिये अलग रख दिये, क्योंकि भोजन करते समय बैठने के पटिये पर जूँठन पड़ जाती है, इस लिए उन्हे पानी से धोकर अलग रखा जाता है। इसके वाद पूजन और रसोई के सव बर्तन-भाडे उठाकर माँजने के लिए इकट्ठे किये और उन्हे वाहर रख दिया। माता ने वर्तन माँजे और मैंने उन्हे धोकर पोछ डाला। तत्पश्चात् माता ने छाछ और दही की हँडियाएँ गर्म पानी से धोकर अन्त में सदानन्द की छोटी-सी हँडिया भी धोई। उसमे केवल उसीके लिए दूध जमाकर दही बनाया जाता था। उन वर्तनो को धोकर चूल्हे के पीछे की ओर गर्म करने (सूखने) के लिए रख दिया। दूध गर्म करने के वर्तन के नीचे आँच की देख-भाल कर के माता अपना सव गृहकार्य समाप्त कर रही थी। हम जा कर चवूतरे पर वैठ गये। पिताजी के साथ हम ककड़ो से खेलने लगे। प्रत्येक वार उन्होने हमे हराया। मेरे पास के सव ककर उन्होने जीत लिए। इस प्रकार आनन्द मे दिन कट गया।

माता ने मेरी फटी हुई धोती मे पैबंद लगा कर उसे सी दिया। रात को पिताजी ने वडी अच्छी कहानी सुनाई। विलंव से भोजन होने के कारण रात को किसी को भूख नही लगी। फिर भी माता ने मठे को छौक कर एक-एक प्याला सव को दिया और हम सवने उसे बड़े प्रेम से पिया।

प्रात.काल हम सब उठे। मैंने स्नान किया। माता ने भात वना रक्खा था, वह परोसा और साथ ही उड़द का पापड़ एव मसाला भी रख दिया। भात वनाते समय उसी मे दो कचरियाँ भी माता ने डाल दी थी। मुझे कचरियाँ अच्छी लगती है, यह जान कर पडौसिन जानकी मौसी ने वे माता को दे दी थी। भोजन समाप्त कर के मैं दापोली जाने को तैयार हुआ। माता को प्रणाम किया। उसने बड़े ही प्रेम से कहा "अव मकर-संक्रान्ति पर आना। यदि पाँव वहुत दुखने लगे तो वैलगाड़ी मे आने दो-आने दे कर वैठ जाना। सामान की गाड़ियाँ तो आती ही रहती है। सव तरह सावधान रहना और शरीर का ध्यान रखना।" इसके वाद मैंने पिताजी को प्रणाम किया। वे कहने लगे "श्याम, मैंने तुझे दो-चार कडी वाते कही, इस लिए चित्त मे बुरा न मानना। अच्छी तरह रहना और खूब मन लगा कर विद्याभ्यास करना।" इसके वाद मै अपने दोनो

छोटे भाइयों को प्यार कर के घर से चल दिया। महार-वाड़े तक पहुँचाने के लिए पिताजी मेरे साथ आये। इसके बाद भी वे गाँव के बाहर बहेड़े के वृक्ष तक आये। जहां हमारे गाँव की सीमा समाप्त होती है, वहां एक बड़ा-सा बहेड़े का पेड़ है। इसके बाद वे लौट गये और मैं अपने रास्ते से आगे बढ़ा।

माता-पिता के प्रेम का स्मरण कर के मैं रोता हुआ जा रहा था। दापोली से मैं जब घर गया तो प्रेम पाने के लिए रोता हुआ गया था, और अब वापस आते समय भी भरपूर प्रेम पाने से हृदय भर आने के कारण रोता हुआ आ रहा था। एक सुख के आँसू थे दूसरे दुःख के!

मार्ग में एक रास्तागीर मिला। उसने पूछा "क्योंरे, लड़के! रोता क्यों है? क्या तेरा कोई भी नहीं है?"

मैंने कहा "नहीं भाई, मेरे माँ-बाप, भाई-बहन सब हैं।"

इस पर उसने फिर पूछा "तो क्या वे तुमसे प्रेम नहीं करते? क्या उन्होंने तुझ घर से निकाल दिया है?"

मैंने कहा "नहीं, वे सब मुझ से अत्यन्त प्रेम करते हैं। इसी लिए तो मुझे रोना आ गया! मैं उस महान् और अपार प्रेम के लिए अपने को योग्य नहीं समझता, इसी लिए मुझे बुरा लगता है। उनके प्रेम से मैं कैसे उऋण हो सकता हूं? सचमुच ही कैसे उऋण हो सकता हूं? यही सोचकर मुझे रोना आ रहा है।" वह बेचारा यात्री मेरी ओर बड़े ही कृपा-भाव से देखता हुआ आगे बढ़ गया; और मैं भी देरी हो जाने से जल्दी जल्दी चलने लगा।

---

२२ दूधवाली दादी

हमारे घर एक दूर के रिश्ते में लगने वाली दादी रहती थी। उसका नाम था द्वारका काकी। जब पिताजी संयुक्त-परिवार से अलग कर दिये गये, तब वह हमारे घर रहने के लिए आ गई। उसकी

अपनी खेती-वारी भी थी और पिताजी उसकी देखरेख करते थे। पिताजी पर उसका स्नेह था, इसी लिए वह उनके साथ रहती थी। उस (दादी) का नाम हमने दुर्वा (दूव) वाली दादी रख दिया था। चतुर्मास में स्त्रियाँ गणेश जी पर दूव के लाख-लाख अंकुर चढाया करती है; कोई पारिजातक के लाख फूल चढाती है और कोई वट-मोगरे के लाख फूल चढ़ा कर अपना संकल्प पूरा करती हैं। इस प्रकार अलग-अलग ढंग से पूजा होती है। जिन स्त्रियो को दूव (दूर्वाङ्कुर) की लाख-अवलियां चढ़ानी होती हैं; वे दूव तोड़ने के लिए दूसरी स्त्रियो को बुलाकर ले जाती और उनकी सहायता से अपना संकल्प पूरा करती है। हमारी दादी भी इस काम के लिए हमेशा तैयार रहती थी। क्योकि "तुकाराम लेते रहो—सत्य-धर्म में भाग"। अर्थात् अच्छे काम मे सदैव सहायता करनी चाहिए। शुभ कार्य मे किसी को निरुत्साहित करना महान् पाप है। क्योकि "धर्म-विमुख करते सदा, नर्कलोक अनुराग।" अर्थात् जो लोग दूसरो को सत्कर्म के प्रति निराशा, भय, और विमुख भाव उत्पन्न करते है, वे अवश्य नर्क में जाते हैं। इस लिए सत्कर्म की सिद्धि के निमित्त सवको प्राण-पण से प्रयत्न करना चाहिए। हमारी दादी किसी भी स्त्री के बुलाने पर दूव तोड़ने के लिए तैयार रहती थी। हम से कभी कोई पूछता कि "दादी कहां है?" तो हम तत्काल उत्तर दे डालते कि "दूव लेने गई है।" इस प्रकार थोड़े ही दिनो वाद उसका नाम "दूववाली दादी" हो गया। वड़े हो जाने पर भी हम उसे इसी नाम से पुकारा करते थे।

हमारी दादी में अनेक गुण थे। गर्मी के दिनो मे यदि पानी बहुत कम हो जाता; तो वह गहरे कुओ मे उतर कर कटोरियो से पानी उलीचती हुई घडा भर देती, और माता उसे ऊपर खीच लेती थी। रात को खेत पर वह अकेली ही सव रखवाली करती थी। एक वार उसने चोर को भी पकड़ लिया था। उसे डर का नाम तक मालूम न था। वह राख की चुटकी भी मंत्रित किया करती थी। छोटे वच्चों के वीमार होने या गाय-भैंस के दूध देना वन्द कर देने पर लोग हमारी दादी के पास राख मँतरवाने को आते थे! यदि उस राख को अभिमन्त्रित करते समय उसे लगातार जम्हाइयाँ आने लगती, तो वह कह देती कि वहुत वुरी नजर लगी

है। पशुओ के लिए राख मँतरवाते समय साथ मे कडबी (रटेले) का टुकडा भी लाया जाता था, और वह अभिमन्त्रित टुकडा गाय या भैस को खिला दिया जाता तो वह दूध देने लगती थी। इसी प्रकार हमारी दादी शरीर के दर्द करने वाले भाग पर तैल-मलना भी अच्छी तरह जानती थी। किसी के पैर सडपते हो, पेट दुखता हो या पीठ मे चीस उठती हो, तो लोग दौडकर सीधे ही दादी को तैल-मलवाने के लिए बुलाने आ जाते थे; और उसके हाथ से तैल लगते ही दर्द मिट जाता था। मानो उसके हाथ मे धन्वन्तरि का ही गुण न हो। जब मेरी आँखे खराब हुई, तब वह मेरे पाँव के तलभाग मे प्रतिदिन ही दूध—गाय के दूध—की मालिश करती और उसे सुखा देती थी।

दादी के पास सब प्रकार के फल-फूल के बीज भी बोने के लिए सग्रहीत रहते थे। उसके पास एक बड़ी-सी बास की नली रहती थी; जिस मे वह भिंडी, परवल, सेम, तुरई, ककडी, करेले, लौकी आदि के बीज रखती थी। चौसर, पासे और कौड़ियो के खेल मे भी वह बहुत कुशल थी। कौडियाँ खेलने के लिए वह जमीन पर चाक या खरिया मिट्टी से बडे ही सुन्दर चित्र बनाया करती थी। उसकी खीची हुई रेखाएँ अत्यन्त सरल होती थी। मंगला-गौरी के उत्सव मे भी दादी सब जगह हाजिर रहती थी। लडके-लडकियो को वह अनेक प्रकार के खेल खेलने मे लगा देती थी। "दुबक्-पिछोरी" का खेल उसे बहुत प्रिय था। इस खेल मे लडके किसी ओढने के कपडे में छिप जाते है और तब ढूढने वाला दूसरी तरफ से आ कर उन लड़को के नाम बतलाता है। दादी हमे इस प्रकार छिपा देती और यदि हम-मे कोई भी शरीर मे बडा होता; तो उसे वह छोटा होने और शरीर चुराने के लिए कहती और यदि कोई छोटा होता तो उसे शरीर फैलाने की सूचना देती। मतलब यही था कि खोजने वाला सहज ही मे न पहचान सके। यह खेल बडे मजे का होता था। इसी प्रकार वह देवी-देवताओ एवं अन्य प्रकार के कई गीत भी गाना जानती थी। दशावतार, द्रौपदी की चिन्दी (पट्टी), उषाहरण, पारिजातक आदि कई लीलाएँ उसे मुखाग्र थी।

घर में दादी के सिपुर्द खास काम था, शाक-सब्जी को काट-छील कर तैयार कर देना। साथ ही छोटे बच्चो को खेलाने का काम भी वही करती

थी। उस दिन हमारे घर सतुआ (थालीपीठ) तैयार किया जाने को था। इसमे सब तरह का अनाज भूज कर पीसा जाता है। इसे पीसने मे चक्की भारी हो जाती है। माता ने इसी भरोसे पर यह काम हाथ मे लिया था कि चक्की चलाने मे दादी भी मदद करेगी। किन्तु दादी तो मनमौजी थी। पहले दिन उसीने कहा था कि "कल को अनाज भून कर आटा तैयार करेगे।" किन्तु दिन निकलते ही दादी के लिए खरेसा० के घर से बुलौआ आगया। उनसे मेरी दादी का दूर का मैके (नैहर) का नाता था। इसी लिए समय-समय पर वह उनके यहा जाया करती थी। वैसे भी वह गॉव-भर की दादी तो थी ही। सबके साथ उसका घरोपा था और सभी उसे बुलाते रहते थे। उस दिन खरे साहब के घर पापड बनाये जाने को थे। इसी लिए दादी को वही भोजन करने और पापड़ बेलने के लिए उनका नौकर बुलाने आया था। दादी ने उसे यह कह कर लौटा दिया कि "तू जा, मै आ जाऊगी।"

इस पर माता को बहुत चिढ छूटी। उसने कहा "अगर तुम वहां चली गई तो इस भूजे हुए अनाज की पिसाई कैसे होगी? मै अकेले चक्की कैसे खीचूगी?"

यह सुन दादी ने तत्काल उत्तर दिया "तो क्या मैने तेरे घर का सब काम करने का ठेका लिया है? धन्य है तुझे बाई! कहती है सत्तू की पिसाई कैसी होगी? पर मुझ से चक्की नही खीची जायगी, समझी!" वह जोरो से चिल्ला रही थी।

माता को भी रोष आ गया, वह बोली "घर का तो काम नही होता और दूसरो के घर काम करने के लिए तुम्हारे शरीर मे शक्ति मौजूद है। तो क्या घर मे हाथ टूट जाते है? गाव-भर मे तारीफ कराना है; किन्तु यहा हाथ लगाने की भी सौगध खाई है! यहां काम करने से मानो भ्रष्ट हो जाओगी! यहा जरा-सा हाथ लगाने मे दर्द होने लगता है, और जरा-सी मेहनत होते ही मा-बहन को याद करने लग जाती हो। परन्तु दूसरो के घर खड़े हो कर मूसल से पोवे खाडने एवं बड़े-बडे बर्तन उठा कर पानी भरने मे भी तुम्हे कष्ट नही होता। यह सब केवल तुम्हारा ढोग है।"

इन शब्दो को सुनते ही दादी कडक् कर बोली "हा, करूगी दूसरो के घर का काम! तू कौन मुझसे पूछनेवाली? मै क्या तेरे घर का खाती हू! मेरे भी तो खेत है। यशोदे, आज से तू मेरे साथ सम्हल कर ही बोलना, मै तेरी बाते कभी सहन नही करूंगी। लोगो के घर काम करने की बात कहते तुझे शर्म नही आती? तेरे लिए वे पराये होगे, मेरे लिए तो सभी घर के लोगो की तरह है। जैसे तुम हो वैसे ही खरे के घर वाले भी है। कहती है मै सब ढोग करती हू, किन्तु तू ढोगी बतलाती किसे है? मैने आज तक किसी के मुँह से ऐसी बाते नही सुनी। तू अब बहुत इतरा चली है, क्यो?" इस प्रकार दादी झगडने लगी।

इस पर माता ने उत्तर दिया कि "यदि तुम्हे खरे के यहा जाना था तो मुझ से कल ही क्यो कह दिया था कि सवेरे सत्तू तैयार करेगे? मैने सब तैयारी कर ली, चक्की धो कर साफ कर ली। किन्तु ऐन् वक्त पर तुम्हारा पाँव तीसरी ही ओर जा रहा है! इस तरह दूसरो को लाचार करना ही तुम्हे आता है। हम चाहे तिल्-तिल् हो कर मर जाये, किन्तु तुम हाथ लगाने मे भी पाप समझती हो।"

"मैने कब हाथ लगाने (मदद देने) से मना किया है! सितम है तेरे बोलने की। ले, मै खरे के यहा नही जाती। तेरी आँखो मे खटकता है तो मै क्यो जाऊ! कहती है दूसरो से प्रशसा कराने की मुझे इच्छा है। ठीक है बाई, जो तेरे जी मे आवे सो कह ले! मै बुरी और तू भली, अब तो हुआ संतोष तेरे जी को!"... मित्रो! कई लोगो का यह स्वभाव होता है कि घर के बाहर वे बडे सीधे-सादे और भोले बने रहते है। दूसरों के यहां सब तरह के काम करते है, किन्तु घर मे कभी इधर का तिनका उठाकर उधर नही रखते। दूसरो से प्रशसा पाने, या दुनिया की वाहवाही लूटने के लिए मनुष्य ललचाता रहाता है। घर वालो को तडपते छोड कर बाहर वालो से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए चल देता है। यह सब वह प्रेम या दया-भाव के कारण नही करता, बरन् स्वार्थ के लिए—प्रशसा प्राप्त करने के लिए ही करता है। इसी लिए यह भावना त्याज्य है। मेरी माता के कथन मे भले ही कुछ अतिशयोक्ति हो, किन्तु उस मे तथ्याश अवश्य था।

माता और दादी मे इस प्रकार की लडाई प्राय: सदैव ही होती रहती

थी। यह कोई नई बात नही थी । किन्तु उनकी लड़ाई अधिक देर टिकती नही थी। वह बीच मे आजाने वाले तूफान की तरह होती थी। एक दूसरे के विरुद्ध मन मे जो विष-सग्रह हो जाता था उसे वे इस प्रकार उगल देती थी। और इस रूप मे वह गंदगी दूर होते ही फिर दोनो के मन निर्मल हो जाते थे। जो आधी उठती वह शान्त होने के लिए ही उठती है। रोग भी शरीर मे की गंदगी बाहर निकालने के लिए ही उत्पन्न होते है। मृत्यु भी पुनर्जीवन के लिए ही आती है।

मेरी माँ चुप हो गई। उससे बोला नही गया। दादी फिर भी बीच-बीच मे कुछ न कुछ कहती ही जाती थी। "कहती है—दूसरो के घर काम करती हो! मेरे हाथ है, मै जहां चाहूगी काम करूंगी! तू कौन मुझ पर दबाव डालने और सख्ती करने वाली? तुझे क्यो मेरी ईर्ष्या होती है? मुझे लोग बुलाते है तो तू क्यो मन ही मन कुढती है?"

किन्तु माता का मुँह बन्द ही रहा। इसी लिए थोडी देर के बाद दादी भी चुप हो गई। चित्त स्थिर होते ही माता ने दादी के पास जाकर कहा "मै भूली, हो काकी! जो मुझे नही कहना चाहिए था, वह मै बोल गई। भला, तुम्हे भला-बुरा कहने वाली मै कौन? तुम मुझ से कितनी बड़ी हो! किन्तु आज कल इन सब झझट, चिन्ता और दु:ख-दर्दो के कारण मेरा चित्त ठिकाने नही रहता, और इसी कारण मै आवेश मे आकर न जाने क्या क्या कह जाती हू। मै अपना भान ही भूल जाती हूं। मुझे इस बात का ध्यान तक नही रहता कि किससे क्या कह रही हूं। धिक् है मुझे! ऐसा जीना भी किस काम का! मुझे क्षमा करो काकी!"

"अरी, ऐसी अमंगल वाणी क्यो मुख से निकालती है कि मुझे जीकर क्या करना है? तेरे बच्चे अभी छोटे है। यदि तू न रही तो उनकी सार-सम्भाल ही कौन करेगा? तू कई दिनों तक जीती रह; यशोदा! लडको-बच्चो के विवाह होने के बाद बहुएँ घर आने दे और उनकी सेवा का सुख भोग! व्यर्थ ही उल्टे-सीधे विचार मन मे मत ला। अरी, तू जब बोलने लगती है तो मुझे भी आवेश आ जाता है, किन्तु फिर पीछे से बुरा लगता है।" इस प्रकार दादी ने हृदय हल्का कर दिया।

"तुम खरे के यहां अवश्य जाओ, काकी! तुमने कहलवा दिया है

कि "मै आती हू।" यह काम तो कल भी हो सकता है। चक्की पुती हुई रहने से कोई अडचन नही पडेगी। उस पर दूसरी कोई चीज न पीसने से काम चल जायगा। मैं तुम्हारे लिए चाय बना देती हू, जिससे वहा परिश्रम करने पर तुम्हारा श्वास न फूलने लगे। आज बाहर बहुत ठंडी हवा चल रही है।" इस प्रकार माता ने उस प्रकरण को मधुर बना दिया।

उन दिनो घर मे चाय थोड़ी बहुत रहती ही थी। क्योंकि कभी कोई बीमार होता या किसी को दमा शुरू हो जाता; तो माँ उसे चाय बना कर पिलाती थी। माता ने दादी को उसका बडा रामपात्र भर कर चाय पिलाई और उसका क्रोध दूर हो गया। वह खरे के घर जाते हुए बोली "जाती हूं यशोदा! नाराज मत होना, मन में बुरा न मानना।"

इस पर माता ने कहा "तुम्ही अपने मन मे कोई बात मत लाना। किसी भी रूप में क्यो न हो, तुम मुझ से अवस्था मे बहुत बडी हो। मै तो तुम्हारे लिए बहू की तरह हू; लड़की की तरह हूं। मेरी बात पर ध्यान मत देना।"

दादी चली गई और माँ घर का काम करने लगी। मित्रो! मेरी माता पूर्ण निर्दोष नही थी। किन्तु ससार मे दोष किस मे नही होते? भूल किस से नही होती? निर्दोष तो केवल परमात्मा ही हो सकता है। बाकी तो सभी को भूल और दोषो के आभूषण पहन कर ही उस जगन्माता की सेवा मे पहुँचना है! भूल करना मनुष्य का भूषण है और क्षमा करना देवता का। मेरी माता के हाथो भूले होती थी, किन्तु वह उनका मार्जन भी कर लेती थी। भूले करने मे ही वह गौरव नही मानती थी।"

---

२३ आनंदमयी दिवाली

दिवाली नजदीक आ रही थी। स्कूलो मे छुट्टिया हो चुकी थी। मै दापोली मे घर से पास ही पढता था, इस लिए छुट्टिया शुरू होते ही घर पहुँच गया। मेरे और छोटे भाई के लिए पिताजी ने एक-एक नया कुर्ता बनवाया। किन्तु उनकी खुद के पहनने की धोती बहुत फट गई

थी। माता ने उसे कई बार सीकर कितनी ही जगह पेवन्द भी लगा दिये थे। किन्तु अब तो वह इतनी जीर्ण-शीर्ण हो कर गल गई थी कि उसे सीना कठिन हो गया था। हमारे लिए उन्होंने नये कपड़े बनवा दिये, परन्तु अपने लिए नई धोती तक नही खरीदी।

माँ को भी बहुत बुरा लग रहा था, परन्तु वह बेचारी क्या कर सकती थी ? उसके पास कहां पैसे रक्खे थे ? कई दिनो से उसे भी तो नई साड़ी नही मिल सकी थी। यद्यपि उसे अपनी दशा पर इतना खेद नही हो रहा था, किन्तु मेरे पिता की दीनता देखकर उसका जी विकल हो उठता था। प्रतिदिन ही धोती का फटा हुआ भाग सामने की तह मे छिपाकर पिताजी दिन काट रहे थे।

बम्बई-पूना की तरफ के लोग प्रायः दिवाली पर घर आया करते है। उन्ही दिनो समुद्र मे स्टीमर भी चलने आरम्भ हो जाते है। समुद्र उन दिनो शान्त रहता है। बम्बई से घर आने वाले लोग साथ मे बच्चों के लिए पटाखे, खिलौने और नये वस्त्रादि भी लाते हैं। मेरा बड़ा भाई पूना मे मामा के यहां रह कर पढ़ता था; वह घर नही आ रहा था। किन्तु पूना से कोई व्यक्ति हमारे गाँव में आया था, उसके हाथ मामा ने मेरी माता के लिए भैया-दूज के तीन रुपये, और हम लोगो के लिए भी मेवे-मिठाई भेजे थे।

उन तीन रुपयो को देख कर माता बहुत प्रसन्न हुई। उसने सबके कुशल समाचार पूछे। इसके बाद रुपये दे कर वह व्यक्ति चला गया। हम माता को घेर कर खड़े हो गये, और मामा का भेजा हुआ मेवा-मिठाई मांगने लगे। वहां से खुर्मानियां (जर्दालू) और पीपरमेण्ट की टिकिया आदि आये थे। माता ने एक-एक जर्दालू और दो-दो टिकिया हम लोगो को दी। मेरा छोटा भाई दो जर्दालू पाने के लिए अड़ गया। माता ने कहां "अरे, वह सब तुम्हारे लिए ही तो है। क्या आज ही सब समाप्त कर देना है ? थोड़ा-थोड़ा खाया तो तुम्हारे लिए कई दिनो तक काम देगा !" इस पर वह बोला "अच्छा, कम से कम एक टिकिया तो और दे, और इसे बदल दे। मुझे गुलाबी रंग की टिकिया चाहिए"। माता ने उसकी टिकिया बदल दी और एक नई टिकिया और भी दे दी। हम आँगन मे खेलने लगे।

पुराने चिथडो की गेद बनाई थी, उसके साथ ही धप्पा-मार भी खेल रहे थ।

माता ने वह सब सामग्री भडरिये मे ऐसे बदोबस्त के साथ रख दी, जिसमे कि चीटिया उसे न खा सके। इसके कुछ देर बाद उसने मुझे बुलाया। मै घर मे गया तो उसने कहा कि "उस अमृतलाल सेठ की दूकान पर जाकर पूछ कि नये धोती जोड़े की कीमत क्या होगी? उनके लिए लेना है, यह बात सेठजी से कह देना। यदि पूछें कि वे घर पर है, तो कह देना–बाहर गॉव गये है, कल आवेगे। मुझे पूछ आने को कह गये थे, इस लिए आया हूं।"

मै तत्काल ही अमृत सेठ की दूकान पर पहुँचा। वहा उनके मोहन और बद्री नाम के दो लडके थे। मोहन ने पूछा "क्यो श्याम! क्या चाहिए? तस्बीरे (चित्र) मांगने आया है, क्यो?"

मैंने कहा "नही, जब तू देता ही नही, तब मै तुझ से क्यो मागू? मैं अब कभी तुझ से चित्र-तस्बीरे मागने नही आऊंगा। आज तो मै धोती जोड़े का भाव पूछने आया हू।"

उसने पूछा "किस के लिए चाहिए धोती जोड़ा? तेरे लिए?"

मैने कहा "नही, पिताजी के लिए। अच्छा लम्बा-चौड़ा होना चाहिए। पोत भी अच्छा होना चाहिए, और कीमत उस जोड़े की क्या होगी? यदि दो-तीन नमूने दे सके तो मै घर जाकर पसद करा लाऊगा।"

मोहन मारवाड़ी ने दो-तीन तरह के धोती जोडे मुझे दिये। अमृत सेठ ने कहा "दिखला कर झटपट ले आना, हो श्याम।"

इस पर मैने ठसक के साथ कहा "हा-हा, घबराते क्यो हो। हम उन्हे घर थोडे ही रखलेगे? और रखे भी तो उनकी कीमत देगे।"

इस पर सेठजी ने खीज कर कहा "तेरे पास पैसो की थैली भर गई जान पडती है। बाप के पास तो घिसी पाई भी नही है।" मुझे ये शब्द सुनकर बडा दु ख हुआ। अमृतलाल सेठ का हम पर कर्ज था; इसी लिए उन्होने ऐसे मर्म-वचन कहे थे। सच है, स्वाभिमान-पूर्वक जीवित रहने की इच्छा करने वाला मर भले ही जाय, परन्तु कर्ज भूल कर भी न करे।

मै नमूने की धोतिया लेकर घर आया और, माता को दिखाई ॥

उनमे से एक जोडा माता ने पसद किया। कीमत भी मामूली ही थी। तीन-साढे तीन रुपये तक का था। माता ने वे रुपये दे कर कहा कि "इसे ले आना और बाकी के वापस कर देना।" तदनुसार दो जोड़ वापस कर पसंद किया हुआ जोडा मै खरीद लाया। माता ने उसकी दोनो धोतिया अलग-अलग की, और प्रत्येक सिरे पर कुंकुम की अगुली लगाई।

इसके बाद पिताजी बाहर से आये; किन्तु उन्हे इस बात का कुछ भी पता नही था। दिवाली के दिन प्रात काल मागलिक-स्नान करने के बाद माता वह नई धोती पहनने के लिए पिताजी को देने वाली थी। हम सबने इस बात को जानते हुए भी प्रकट नही किया। इस प्रकार माता के कौतुक मे हम उसके पुत्र भी शामिल हो गये थे।

कल ही दिवाली थी। हमने पँवारिया की फलिया लाकर उनमें के इन्द्रजौ निकाले। उन्हे पीस कर माता ने हमारे शरीर पर लगाने का उबटन तैयार कर दिया। पैरो तले नरकासुर को कुचलने के लिए हमने कचरिया ढूढकर इकट्ठी की। आँगन को झाड़ बुहार कर साफ़ कर लिया। यथार्थ में गदगी दूर करने का नाम ही नरकासुर-वध है। क्योकि नरक ही असुर (राक्षस) है। नरक का अर्थ है गदगी। भला, इस गदगी से बढकर राक्षस कौन हो सकता है? राक्षस तो सौ-पचास आदमियो को ही खा सकता है; किन्तु इस गदगी से उत्पन्न रोगरूपी राक्षस तो लाखों प्राणियो को खाकर भी तृप्त नही होता। इसी लिए कहा जाता है कि गदगी के जैसा कोई शत्रु नही। चौमासे मे चारो ओर गंदगी बढ जाती है। मल-मूत्र, गोबर, कूड़ा, कर्कट आदि चारो ओर पड़े हुए सडते रहते है। इस गदगी को दूर करने का नाम ही नरकासुर का वध करना है। इसमे भी मजे की बात यह है कि सत्यभामा ने नरकासुर का वध किया। उसने भगवान कृष्ण से कहा कि "आपसे यह नही मरेगा। अन्त को मैं ही इसे मारूगी।" और यथार्थ में गंदगी दूर कर के स्वच्छता निर्माण करना स्त्रियो के ही हाथ में होता भी है। पुरुष-वर्ग घर में गंदगी करता है और स्त्रियाँ उसे साफ़ करती है। स्त्रियो के अन्यत्र चले जाने पर जब पुरुषो के हाथ मे घर के सब सूत्र होते है, तब वे न तो पूरा झाड़ू ही लगाते और न चूल्हे-चौके की ही सफाई करते है। न गोबर से लीपते

और न बर्तन ही ठीक तरह से साफ करते है । इसी प्रकार लेम्प-चिमनी आदि भी कभी नही पोछते ! चार ही दिन में वे घर को घूरे जैसा बना देते है । किन्तु स्त्रियाँ उस घर को आईने की तरह साफ रखती है । नरकासुर को सत्यभामा ही मार सकती है। गदगी को स्त्रियाँ ही दूर कर सकती है । किन्तु आज-कल की स्त्रियाँ घर मे की गदगी को रास्ते मे फैंक देती है! पर राक्षस को रास्ते मे रखना भी है तो बुरा ही। इस लिए उसे रास्ते मे कभी न फैंक कर म्युनिसिपालिटी की रखी हुई कोठियो या पेटियो मे ही डालना चाहिए।

हम सब घर-द्वार की सफाई मे जुटे हुए थे । माता ने तुलसी की नई क्यारी बना कर तैयार की थी । इसी प्रकार नये सिकोरे (दीये) भी धो कर उसने तैयार रखे थ। रुई की वत्तियाँ भी बना ली गई थी। सध्या-समय हमने दिए सुलगा कर जगह-जगह रख दिये। सबेरे जल्दी उठना था, इस लिए हम सब लडके-बच्चे शीघ्र सो गये। किन्तु माता बहुत देर तक काम करती रही; उसने उबटन आदि तैयार कर लिया था।

वडे सबेरे उठ कर माता ने बाहर के चूल्हे मे आग सुलगाई और पानी गर्म रक्खा। इसके वाद अपना स्नान समाप्त कर वह हम मे से एक-एक को उठाने लगी। तैल के साथ उसने हमारे शरीर पर उबटन लगाया। इसके पहले उसने तैल की पाच बूदें पृथ्वी पर डाली। स्नान के लिए भी उसने हमे खूब गर्म पानी दिया। पिताजी भी हमसे पहले ही उठ कर देवपूजा के लिए पुष्प लेने चले गये थे। हमारे स्नान निपट जाने के बाद पिताजी स्नान करने लिए गये।

हमने घर के देवता को प्रणाम किया और मदिर मे भी हो आये। माता ने पिताजी के स्नान के लिए गर्म पानी दिया; और उन्होने भी अभ्यग स्नान कर लिया। पुराना रेशमी पीताम्बर पहन कर उन्होने देव-पूजन किया। देव-प्रतिमाओ को भी उन्होने सुगन्धित तैल लगा कर गर्म जल से ही स्नान कराया। वैसे प्रतिदिन उन बेचारो को ठडे पानी के ही अभिषेक-द्वारा कुडकुड़ाया जाता था; किन्तु आज उन्हे भी गर्म पानी मिला। यथाविधि पूजन हो जाने पर देवता के सम्मुख गुँजिएँ और अनारसे का नैवेद्य रखा गया। प्रात.काल से ही देवी के उपासक भिक्षा के लिए

अम्बा माता के गीत गाते हुए घूम रहे थे.। वे लोग पाई, पैसा, पौवे (पोहे) और गुँजिए मागते फिरते थे। हमने भी उन्हे ये सब वस्तुएँ भिक्षा मे दी। इसके बाद पिताजी ने हमे पुकार कर देवता का प्रसाद दिया। प्रतिदिन के नियमानुसार वे सूर्य-नमस्कार कर के मदिर में पूजा के लिए गये और थोड़ी देर मे लौट आये।

आते ही उन्होने पूछा "मेरी धोती कहा है। आज वह कही दिखाई नही देती। कहा गई ?"

माता ने कहा "मैंने उसके दो अंगौछे बना लिये हैं। वह कितनी फट गई थी!"

"तब मैं क्या पहनूगा ? वह तो अभी और महिना-भर काम दे सकती थी!"

"लेकिन उसका भी कहा तक अन्त देखा जाता? उस धोती को धोने हुए मुझे प्रतिदिन शर्म आती थी और बुरा लगता था।"

"मुझे भी तो उसे पहनते हुए लज्जा लगती थी; परन्तु किया क्या जाय ? हमे शर्म लगने से कही आसमान पैसे थोड़े ही बर्सा देता है।"

"यह धोती पहनिये आज।" यो कह कर माता ने नई धोती आगे बढाई!

"यह कहा से आई? कौन लाया?" पिताजी ने आश्चर्य से पूछा।

"अमृतलाल सेठ के यहा से मँगवाई!"

"परन्तु वह तो मुझे मागने पर भी उधार नही देता था। कई बार मागने पर भी जब उसने इन्कार कर दिया तब मैं निराश हो गया। उसके पास जाने पर पहला प्रश्न ही उसका यह रहता है कि "पिछली बाकी कैसे वसूल ोगी; इसी की मुझे चिन्ता लग रही है। तुम्हें उधार दे कर मैंने धोखा उठाया।' जान पड़ता है तू खुद जा कर ले आई है।"

"नही, मैंने उसे खरीद कर मँगवाया और श्याम खुद जा कर लाया है।"

"परन्तु श्याम के पास से कहा से आये?" उन्होने पूछा।

"मैंने दिये!"

"तेरे पास कहा से आये?"

"पूना से भैया-दूज की भेट के भैया ने उस कृष्णराव के हाथ भेजे थे।"

"कृष्णराव काले! कब आया पूना से?" उन्होंने पूछा।

"अभी दो दिन हुए, वह आया है।"

"परतु मेरे लिए धोती मँगवाने की अपेक्षा तुझे अपने लिए साडी मँगवा लेनी चाहिए थी। वह भी तो बहुत फट गई है। तेरे भाई की भेजी हुई भेंट पर तेरा ही अधिकार हो सकता है। उसे लेने का मुझे क्या हक है!"

"परतु आप मे और मुझ में क्या कोई भिन्नता है? इतने वर्ष साथ रह कर गृह-ससार चलाया, सुख-दुख भोगे, अच्छे-बुरे अनुभव किये। इतने पर भी क्या हम परस्पर अलग ही रहेगे? मेरा जो कुछ है वह सब आप ही का तो है; और आप का जो कुछ है सो मेरा ही है। अभी मेरी साड़ी पहनने जैसी है। उसीमें मुझे आनन्द है, प्रसन्नता है। मैंने इसे कुंकुम की बिंदी लगा दी है।"

"किन्तु मैं नई धोती पहनू तो मेरे साथ तुझे भी तो नई साड़ी पहनानी चाहिए; क्या यह विचार मुझे नही आता होगा? इस भेद-भाव से मुझे बुरा नहीं लगता होगा? तुझे आनन्द हो रहा है, परन्तु मुझे दु.ख होता है। तूने तो अपने चित्त की प्रसन्नता का साधन कर लिया, परन्तु मेरे लिए.... ...!" उनसे अधिक बोला न जा सका।

"मेरी प्रसन्नता भी तो आप ही की है। आपको बाहर के चार आदमियो में आना-जाना पडता है। गंगाधरजी के यहा आज चौसर खेलने बुलावेगे; वहा आपको जाना चाहिए। मुझे कहा किसी के घर जाना है? आगे जब सुविधा हो तो पहले मेरे लिए ही साड़ी ला दीजियेगा। इस प्रकार व्यर्थ ही चित्त को दु खित मत कीजिये। आज दिवाली है। आज तो सबको हँसना चाहिए, आनन्द मे रहना चाहिए। कम से कम हमें प्रसन्न करने के लिए ही आप हँसे और आनन्दित हो।"

"अरे, तुझ जैसी जीवन-संगिनी और ऐसे गुणवान एव सुशील मृदुभाषी पुत्रो को पाकर भी क्या मै प्रसन्न न होऊंगा? मै आज दरिद्री नहीं, वरन् धनाढ्यो से भी अधिक धनवान हू। तब फिर मै क्यो न हर्षित

होऊंगा, क्यो न सुख का अनुभव करूंगा? ला वह धोती।" यो कहकर उन्होने माता के हाथ मे से धोती ली और उसे पहनकर देवता को प्रणाम किया।

पिताजी को नई धोती पहने देख कर हमें भी बडा आनन्द हुआ। किन्तु सच्ची प्रसन्नता यदि किसी को हुई हो तो केवल माता को ही। वह आनन्द स्वयं अनुभव की बात हो सकती है। प्रेम-पूर्वक किये गये त्याग का आनन्द—उसका स्वाद त्याग करते रहने से ही अनुभव मे आ सकता है। एक बार उसका चस्का भर लग जाना चाहिए।

---

२४ अर्धनारी नटेश्वर

मई महिने की छुट्टी मे मै घर आया था। उस समय मै चौथी कक्षा में था। घर जाने पर माता को मुझ से काम-काज मे बड़ी सहायता मिलती थी; क्योकि वह बेचारी हमेशा बीमार ही बनी रहती थी। एक दिन बुखार आता और दूसरे दिन उसके उतरते ही वह फिर काम मे लग जाती। बुखार आते ही पड जाती और उसके उतरते ही फिर वह उठ खड़ी होती। किन्तु उस समय वह बहुत निर्बल हो गई थी। इसी लिए मेरे आने से उसे सन्तोष हो जाता था। मै उसे पानी भरने, कपडे धोने, झाड-बुहार करने आदि प्रत्येक काम मे मदद करता था। कभी-कभी रात को चक्की-पीसने मे भी मै सहायता करता था। उसके हाथ-पैर दबाना तो मेरे छुट्टी के दिन का निश्चित काम था ही।

एक रात को जब कि बाहर अच्छी चादनी खिली हुई थी, हम सब भोजनादि से निवृत्त हो चुके थे, और पिताजी कही बाहर चले गये थे, तथा छोटे भाई सो रहे थे, एवं माता भी चौका-बर्तन कर चुकी थी; अचानक उसने मुझे बुलाकर पूछा "श्याम! थोडा-सा पीसना है रे! तेरे हाथ तो नही दूखते? संध्या-समय ही तूने जमीन खोद कर खट्टी भाजी के लिए क्यारी तैयार की है; इस लिए यदि हाथ दूखते हो तो रहने दे!"

मैंने कहा "नही, मेरे हाथ बिल्कुल नही दूखते । साथ ही चक्की के हत्थे पर तू भी तो हाथ रखे ही गी । तेरे प्रेममय हाथ के स्पर्श-मात्र से मेरे शरीर मे शक्ति आ जाती है । चल ! क्या. मै. आँगन मे थैले पर चक्की उठा कर रक्खू ?"

माता ने कहा "हा, बेटा ! रख दे !"

मैंने चक्की उठा कर आँगन में रख दी । माता पीसने का अनाज ले आई। दूसरे दिन खट्टे चील्हे बनाने थे । मुझे वे बहुत अच्छे लगते है । माँ-बेटे आँगन मे बैठे चक्की चला रहे थे और ऊपर आकाश से चद्रमा अमृत की वर्षा कर रहा था । शीतल-मद समीर बह रहा था । माता गीत गाती हुई उसमे "श्याम बालक"के रूप मे मेरा नाम भी जोडती जाती थी । मुझे वे गीत सुन कर बडी प्रसन्नता हो रही थी ।

चक्की-पीसने का मुझे बचपन से ही अभ्यास है। क्योकि इसके द्वारा माता की सेवा की जा सकती है । माता के साथ पीसते हुए मैंने चक्की में अनाज डालना भी सीख लिया था ।

इधर हम माँ-बेटे चक्की चला ही रहे थे कि इतने मे रात को चक्की की आवाज सुन कर पडौसिन जानकी मौसी वहा आ गई !

"अरे, यह क्या ? श्याम चक्की चला रहा है ? मैंने सोचा कि देखू तो सही आज रात को अकेले ही तुम कैसे पीसने को बैठ गई ? अरे, यह क्या करता है श्याम ! तू तो अंगरेजी पढता है नँ ?" जानकी मौसी ने पूछा ।

मैंने माँ से पूछा "क्यो माँ ! पीसने मे हाथ लगा देने से क्या बुराई हो गई ?"

माँ ने कहा "अरे, ये तो वैसे ही हँसी कर रही है । तुझ पर इनका प्रेम है, इसी लिए तो ये तुझे देखने चली आई । भला, काम करने वाले को कभी कोई बुरा कह भी सकता है ? और मुझे, अपनी माँ को, मदद करने मे किस बात की शर्म । माता की मदद करने वाले की जो हँसी उड़ावे, उसे जगली (असभ्य) समझना चाहिए ! तूने "भक्तिविजय" ग्रथ मे नही पढा था कि जनाबाई के साथ प्रत्यक्ष भगवान पाण्डुरग ने आकर चक्की पीसी थी ?"

"हा, सच है माँ! परन्तु क्या यह बात सत्य होगी? ईश्वर कबीरदास का कपडा बुनते; जनाबाई के साथ चक्की पीसते, कपड़े धोते, नामदेव के पीछे खडे हो कर कीर्तन मे ताल बजाते, और नाचते थे! क्या ये सब बातें सत्य है माँ?" मैने पूछा।

"बैठो न जानकीबाई! यो खड़ी क्यो रह गई!" इस प्रकार जानकी मौसी को बैठाते हुए माँ ने मुझ से कहा "श्याम! यह सब बातें सत्य ही होनी चाहिए। जिनकी ईश्वर पर श्रद्धा होती है, और मन में उसका निरन्तर स्मरण करते हुए जो सब काम करते है, उनकी सहायता वह अवश्य करता है। तू जो मेरी सहायता करता है, यह भी उस ईश्वर की प्रेरणा से ही कर रहा है। मई का महिना आते ही वह परमात्मा मानो तेरे रूप मे मेरी मदद करने के लिए आ जाता है। वह अनेक रूप मे भक्तो की सहायता करने के लिए उद्यत् रहता है। कभी श्याम के रूप में तो कभी जानकीबाई के रूप मे।

"तो क्या वह परमात्मा मुझे मिल सकेगा?" मैने एकदम पूछा।

"पुण्यवान को मिलता है। खूब पुण्यकार्य करने और सबके उपयोग (काम) मे आने से अवश्य परमात्मा मिल सकते है।" इस प्रकार माता ने उत्तर दिया और तब जानकी मौसी ने मुझसे कहा,

"क्या तेरा बिचार साधु-बाबाजी बनने का है? तो फिर अंगरेजी क्यो पढ रहा है? अरे, अगरेजी पढ़ कर अच्छी-सी नौकरी करना और तब वहा माँ को अपने साथ ले जा कर रखना, समझा!"

मैने कहा "हा, मुझे साधु होने, भक्त बनने की बड़ी अभिलाषा है। माँ! बालयोगी ध्रुव भी तो केवल 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जप करते-करते परमात्मा को पा गया था! क्या मै भी यदि इसी मंत्र का जप करने लगू तो परमात्मा मुझे मिल सकेगा?"

माँ ने कहा "बेटा! ध्रुव की पूर्व-पुण्याई—तपस्या कितनी महान् थी! उसका संकल्प कितना दृढ था! पिता के राज्य देने पर भी वह वापस नही लौटा! इतना दृढ वैराग्य कहां से लाया जाय? इसी लिए इस जन्म में अच्छे बनने का प्रयत्न कर; तो आगे चलकर किसी जन्म मे तुझे भी परमात्मा का दर्शन हो सकता है।"

जानकी मौसी ने कहा "श्याम छोड़ दे तू, मैं चक्की पीसने में हाथ लगाती हूं। तू थक गया होगा।"

इस पर मैंने कहा "माँ, मेरे बदले तू ही छोड़ दे तो मैं जानकी मौसी के साथ अभी सब पीस डालता हूं। मौसी! मुझे अब चक्की में दाने डालना भी आ गया है। आँखें बंद कर के भी मैं डाल सकता हूं। इसमें मैं होशियार हो गया हूं। माँ, छोड़ दे न थोड़ी देर के लिए तेरा हाथ!"

माता ने हाथ छोड़ दिया और मैं मौसी के साथ चक्की पीसने लगा। उसमें दाने भी मैं ही डाल रहा था। पीसते-पीसते मैंने पूछा "क्यों मौसी! कैसा आ रहा है आटा! आँखों में आँजने पर भी नहीं चुभ सकता! देखो न, कितना बारीक है?"

यह सुन मौसी ने मेरी माता से कहा "बहन! श्याम को तो तुमने बिल्कुल लड़की ही बना दिया है!"

माता ने कहा "मेरे घर में मदद देने वाला दूसरा है भी कौन? अभी बहू थोड़े ही आ गई है घर में! श्याम यदि मदद न करेगा तो फिर दूसरा कौन आवेगा? जानकीबाई! कभी-कभी स्त्रियों को पुरुषों के काम भी तो करने पड़ते हैं। यदि पुरुष स्त्रियों के काम करने लगें तो इसमें कोई बुराई थोड़े ही है। श्याम, दाल-चावल बीनने में मेरी मदद करता है, कपड़े धोने, बर्तन धो कर पोंछने आदि सभी कामों में मेरा हाथ बँटाता है। उस दिन तो इसने मेरी साड़ी भी धोई थी! मैंने कहा 'श्याम! तुझे लोग हँसेंगे' तो इसने उत्तर दिया माँ, तेरी साड़ी धोने में ही मुझे यथार्थ आनन्द प्राप्त हो सकता है। जब मैं उस साड़ी की चौतही को ओढ़ता हूं; तो उसे धोने में मुझे क्यों शर्म आनी चाहिए?' जानकीबाई, इसे किसी भी बात में बुरा नहीं लगता। इसे मैंने लड़की जैसा बना दिया तो भी यह प्रसन्न है!"

मित्रो! माता के वे स्फूर्तिमय शब्द मुझे आज भी स्मरण होते हैं। पुरुषों के हृदय में कोमलता, प्रेम, सेवावृत्ति, कष्ट-सहन करने की तत्परता, सहनशीलता और चुपचाप काम करते रहने की शक्ति आदि भाव उत्पन्न हुए बिना उनका पूर्ण-विकास हो सकने की बात नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार स्त्रियों के हृदय में धैर्य, अवसर आने पर कठोर होने एवं घर

में पुरुष-वर्ग के न होने पर दृढता-पूर्वक घर का प्रबंध करने आदि के गुण उत्पन्न होने पर ही उनका पूर्ण-विकास हो सकता है। इसी को मैं विवाह कहता हूं। विवाह कर के यही साधना की जाती है। विवाह कर के पुरुष कोमलता सीखता है, हृदय के गुण सीखता है, और स्त्री बुद्धि के गुण सीखती है। विवाह का अर्थ है, हृदय, बुद्धि और भावना और विचारों का मधुर मिश्रण, मधुर सहयोग। पुरुषो के हृदय मे स्त्रियो के और स्त्रियों में पुरुषो के गुणो का आविर्भाव होने का नाम ही विवाह है। अर्ध नारी-नटेश्वर ही मानव-जाति का आदर्श है। अकेला पुरुष जिस प्रकार अपूर्ण है, उसी प्रकार अकेली स्त्री भी अपूर्ण ही है। किन्तु दोनो एक साथ मिलकर पूर्ण व्यक्ति का निर्माण करते है। दो अपूर्णों के विवाह से दो पूर्ण जीव तैयार होते हैं। माता इस प्रकार उपदेश दे कर मानो मेरे लिए अलग से विवाह की आवश्यकता ही नही रख रही थी। प्रेम, दया, कष्ट, सेवा आदि स्त्रीत्व के गुणो से ही वह मेरा विवाह कर देना चाहती थी!

---

२५ सोमवती अमावस

जो अमावास्या सोमवार को आती है, उसे सोमवती कहते है। उस दिन सोमवती के व्रतवाली सौभाग्यवती ब्राह्मणियां पीपल की पूजा करती है। इसी प्रकार उस दिन कोई भी वस्तु १०८ की संख्या में देवता को अर्पण की जाती है। फिर भले ही वे १०८ पान हो या १०८ आम अथवा १०८ रुपये, १०८ पैसे, १०८ केले, १०८ वस्त्र, १०८ नारियल, १०८ पेड़े या १०८ साड़िया, कुछ भी क्यो न हो। जितकी जैसी शक्ति हो तदनुसार वह वस्तु दान करता है। जिनका जो उपाध्याय (कुल-गुरु) होता है, उसे वे सब वस्तुएँ मिलती है। किन्तु वह खुद ही उन सब चीजों को अपने घर मे नही रख लेता, वरन् पीपल के चबूतरे पर अन्य जो उपाध्याय बैठते हैं, उन सब को बराबर बाँट देता है। यह बहुत ही अच्छी प्रथा है। इस का निर्माण त्याग की भित्ती पर किया गया है;

और इ ी कारण उपाध्यायो मे परस्पर द्वेष या ईर्ष्या करने का अवसर भी नही आ सकता।

मेरी माता जब संयुक्त-परिवार मे थी, भरेपूरे घर मे धन-जन-सम्पन्न अवस्था में थी, तभी उसने सोमवती का व्रत ले लिया था। और उसने अपनी अच्छी दशा मे १०८ चवन्निया, १०८ पानबीड़े, १०८ पेड़े आदि के द्वारा सोमवती व्रत सम्पन्न किये थे। किन्तु आज तो हम गरिबी मे थे। उसे खुद ही जब पहनने के लिए फटी साडी काम मे लानी पडती थी, तब वह १०८ साडी अथवा धोतियाँ कहा से लाकर देती ? उसे ही जब खाने को यथेप्ट नही मिलता था, तब वह दूसरो को क्या दे सकती थी ? साथ ही सोमवती का व्रत सहसा छोडा भी नही जा सकता ! इधर घर मे भी पति से वह किस मुँह से कोई वस्तु माग सकती थी ? बेचारे पति (मेरे पिता) के पास था ही क्या ?

किन्तु उन दिनो बड़े दिन की छुट्टियो मे मैं घर पर ही था। उसी अवसर में सोमवती आ गई। मैंने माता से पूछा कि "इस बार सोमवती पर तू किस वस्तु से परिक्रमा देगी ? तूने क्या निश्चय किया है। जानकी मौसी तो १०८ सुपारियो से परिक्रमा करेगी !"

माता ने कहा "बेटा, मैं सुपारियो से परिक्रमा एक बार कर चुकी हू। उस समय सीता बुआ ने कच्ची सुपारियाँ भेज दी थी।

"तो फिर तू किस वस्तु से प्रदक्षिणा करेगी ? केवल दो ही दिन तो रह गये हैं; अब तो अवश्य कुछ न कुछ निश्चय कर लेना चाहिए ! क्यो माँ ! क्या १०८ गुड का मतलब गुड की १०८ बट्टियाँ और १०८ तैल का मतलब १०८ डिब्बे तैल देने का होता है ?

यह सुन माता ने कहा कि "यदि कोई १०८ गुड की बट्टियाँ, १०८ डिब्बे तैल के दे सकता हो तब तो कहना ही क्या है; किन्तु यदि वह व्यक्ति गरीब हुआ, तो यह निश्चय करेगा कि मैं १०८ छटाक या १०८ आधपाव या पाव के परिमाण से ये वस्तुएँ प्रदक्षिणा मे चढाऊगा । कोई सवामन गुड़ या तैल भी चढाता है। साराश, कोई कितना ही सामान ले, उसके १०८ भाग करने पडते हैं।"

मैंने पूछा "तो माँ, तू १०८ छटाक गुड से प्रदक्षिणा क्यो नही देती !"

"किन्तु वेटा श्याम, घर में तो विष खाने को भी एक कौड़ी नही; अरे! गले में फाँसी लगाने को रस्सी का टुकड़ा तक नही, तब भला गुड के लिए पैसे कहां से आ सकते हैं ? अपने घर मे पैसो का क्या कोई वृक्ष लगा हुआ है; जिसे हिलाते ही पैसो का ढेर लग जायगा ! हम गरीब लोग है श्याम !"

इस पर फिर मैंने पूछा "यदि १०८ आँवले मिल जाँय तो ?"

माता ने कहा " आँवले से प्रदक्षिणा भी मैं कर चुकी हूं। वे सोवली (गाँव) से ले आये थे ! वहा से तुकाराम ने दे दिये थे।"

यह सुन मैं वोला "यदि १०८ चीये (इमली के वीज) से परिक्रमा की जाय तो ठीक न होगा।"

माता ने कहा "ठीक क्यो न होगा, परन्तु लोग हँसी करेंगे।"

"किन्तु लोगो के हँसने हमारा क्या विगडता है! जो हँसेगा उसीके तो दात दिखाई देंगे ? लोगो का क्या जाता है; और कोई हमे कुछ देने को थोडे ही वैठा है ? हँसने को सभी तैयार हैं, किन्तु मदद करने को एक भी तैयार नही होगा ! अस्तु। परमात्मा तो नही हँसेगा, वह तो अप्रसन्न नही होगा ?"

माता ने कहा "श्याम! परमात्मा भला क्यो कर अप्रसन्न हो सकता है ? उसने तो श्रद्धा-भक्ति से भेट किये हुए केले के छिलके और चावल की चूरी तक वड़े स्वाद से ग्रहण की है। यही नही वरन् हाथ वढा-वढाकर और मुँह से तारीफ कर कर के उसने इन वस्तुओ को खाया; और थाली चाटने पर भी उन्हे तृप्ति न हुई। उन्ही भगवान् ने सुदामा के तदुल का इस प्रकार प्रेम से भोग लगाया, मानो कई दिन के भूखे और उपवास किये हुए हो! रुक्मिणी को मागने पर भी एक मुट्ठी चावल तक नही दिये। और यह सच ही है कि परमात्मा तो हमेशा भूखा ही रहता है ! उसे प्रेम और भक्ति-भाव से कौन भेट चढाता है ? लाखो मे एक-आध ही प्रेम-पूर्वक उसे यदि कुछ भेट करता है तो वही उसके पेट मे पहुँच पाता है ! भूखे भगवान को द्रौपदी के यहा की भाजी की पत्ती खा कर ही तृप्ति की डकार आ गई थी। अरे, यदि प्रेम-पूर्वक पानी भी पिलाया जाय तो वह दूध के समुद्र से वढ़ कर हो जाता है। शवरी के जूँठे वेर राम ने किस प्रकार प्रेम

से खाये, यह कथा भी तू रामायण मे पढ चुका है! परमात्मा को सब वस्तुएँ स्वीकार हो सकती है। आवश्यकता है केवल भक्ति-भाव के घी-शकर को उसमे मिलाने की। उसमे हृदय की आर्द्रता होने से काम चल सकता है। फिर भले ही वे १०८ चीये (इमली के बीज) तो क्या पत्थर भी यदि भेंट किये जायँ, तो वे भी उसे मिश्री की डली के समान मीठे लगेगे। प्रेम से भेंट किये हुए ककड को भी वह चूसने लग जायगा। यहा तक कि एक जन्म ही नही, सौ जन्म तक उनका स्वाद लेता हुआ वह यही कहेगा कि 'भक्त ने मुझे अपूर्व मेवा भेंट किया है; जो न तो जल्दी से फूटता है और न शीघ्र पिघल पाता है। एक-एक ककड वह वर्षो तक मुँह मे रखे रहेगा!' बेटा, श्याम! परमात्मा, को जो कुछ भी वस्तु भेंट की जाय, वह अन्त करण-पूर्वक करनी चाहिए। भला, मुझ मे द्रौपदी या शबरी की तरह भक्ति कहा है! मै कैसे उस भक्ति-भाव से चीये (इमली के बीज) तर कर के उसे भेंट कर सकती हू? बेटा, हमारी योग्यता उस दर्जे की नही है!"

"तो फिर तू किस वस्तु से प्रदक्षिणा देगी? कुछ तो निश्चय किया ही होगा?" इस प्रकार मैंने फिर पूछा।

इस पर माता ने कहा "इस बार मैं १०८ फूल चढाना चाहती हू। फूल जैसी निर्मल, शुद्ध और सुन्दर वस्तु और क्या हो सकती है? इसी लिए मैंने १०८ पुष्प से प्रदक्षिणा देने का निश्चय किया है।"

यह सुन मै बोला "माता, इस पर तो सारे ही भट्ट (ब्राह्मण) लोग हँसेगे और चबूतरे पर आई हुई स्त्रियाँ भी तेरी फजीहत करेगी। उपाध्याय-जी भी वे फूल नही लेगे।"

माता ने कहा "श्याम! जो कुछ अर्पण किया जाता है वह देवता-परमेश्वर के लिए होता है, किसी भट्टजी या उपाध्याय के लिए नही! परमात्मा के चरणो मे सब कुछ अर्पण किया जा सकता है। उसके चरणो मे अर्पण किये हुए फूल यदि किसी भट्टजी को लेना होगे, और उन्हे वह ईश्वर का महान् प्रसाद समझता होगा-तो ले जायगा, नही तो वे ईश्वर के चरणो मे तो अर्पित रहेगे ही। जब हम और कोई वस्तु नही दे सकते तो क्या करे! जो दिया जा सकता है, वही तो देगे!"

"तो फिर किस वृक्ष के १०८ पुष्प अर्पण करने का सोचा है? यहा

अच्छे फूल भी तो नही मिलते है ? नही, तो मै समझता हू, १०८ पत्ते अर्पण करना ही अच्छा है ! तुलसी या बेल-पत्र अथवा दूर्वाङकुर के १०८ पत्ते भी तो भेट किये जा सकते है। माँ, देवताओ को फूल की अपेक्षा पत्तिया ही अधिक पसद क्यो है ? कितनी ही प्रकार के पुष्प चढा देने पर भी उनके लिए तुलसी, बेल-पत्र या दूब की आवश्यकता तो रहती ही है। भगवान विष्णु के लिए तुलसी-पत्र और शकर-महादेव के लिए बेल-पत्र एव गणपति के लिए दूर्वाङकुर ही विशेष प्रिय वस्तुएँ है। किन्तु उन्हे ये अधिक प्रिय क्यो है ?"

इस पर माँ ने कहा "ये वस्तुएँ लाने मे विशेष कष्ट नही उठाना पडता। ये जहा भी चाहे मिल सकती है। थोडे-से जल के सीचने से ही इनका काम चल सकता है। फूल तो निश्चित ऋतु मे ही मिल सकते है; किन्तु पत्ते तो हमेशा ही मौजूद है। जब तक वृक्ष जीवित है, तब तक पत्तिया मिलना कठिन नही है। पत्तियो का अभाव अधिकतर नही होता; इसी लिए ऋषि-मुनि एव सन्त-महात्माओ ने बतला दिया कि परमात्मा को ये पत्तिया ही अधिक प्रिय है। जिससे कि भक्तिभाव-पूर्वक ये चीजे देवता को अर्पण करने मे भक्त को विशेष कष्ट न उठाना पडे। मुझ जैसी गरीब स्त्री को तो ये सादी पत्तिया अर्पण करने मे कोई लज्जा अनुभव नही करनी चाहिए। दूसरो की ओर से देवता को अर्पण किये हुए रुपये, खन (जरी का वस्त्र) या नारियल आदि देख कर किसी के मन मे मत्सर (द्वेष) भाव उत्पन्न न हो, इस लिए सन्त-पुरुषो ने निश्चय कर दिया कि देवता को पत्ते भी प्रिय है। धनाढच के लिए अपनी सम्पत्ति का गर्व करने की आवश्यकता नही; और न गरीब के लिए अपनी गरिबी पर लज्जित होन की ही आवश्यकता है ! यही इस पत्र-पूजा का आशय है। धनाढच व्यक्ति चाहे कितनी ही बडी दक्षिणा दे, तो भी उसे ऊपर से तुलसी-पत्र तो रखना ही पड़ता है ! इसमे भी उद्देश्य यही है कि धनाढच को अपनी ओर से दी हुई वस्तु के बहुत अधिक या मूल्यवान होने का अभिमान न हो। बल्कि वह यही समझे कि मैंने केवल एक तुलसी-पत्र ही दान किया है। गणपति, हरतालिका और मगलागौरी की पूजा में तो इन पत्तियो की सब से पहले आवश्यकता होती है। ये सादी और सुन्दर पत्तिया उन्हे विशेष प्रिय है। मै आगे किसी समय १०८ तुलसी-पत्र द्वारा प्रदक्षिणा करने ही वाली हू।"

इस पर मैंने अधीर हो कर पूछा "तो फिर इस वार तू काहे के फूल चढाना चाहती है ? झटपट वतला दे नँ ? "

माता ने उत्तर दिया "परसो मैंने उनसे कहा था कि इस वार सोमवती पर अच्छे सुगन्धित पुष्प-द्वारा प्रदक्षिणा करने का सोचा है ! गेंदा, कनेर या सफेद चपे के फूल तो यहा मिलते ही है ? किन्तु यदि अच्छे सुगन्धित पुष्प कही मिल सके, तो प्रयत्न कीजिये ।"

"तो क्या पिताजी इसी लिए वाहर गाँव गये है ? "

"हा, वे इसी लिए जालगाँव गये हैं । वहा सेठजी का एक वहुत वडा वगीचा है । उसमे हरे चपे के फूल हैं । यदि उसके १०८ फूल मिल सके तो वडा अच्छा होगा, इसी लिए वे इतनी दूर गये है । वे वोले 'अपने पास खर्च करने को पैसे नहीं तो क्या हुआ, चलने को भगवान ने पाँव तो दिये है' इस प्रकार उत्तर दे कर वे जालगाँव गये है ! "

मित्रो ! चपे अनेक प्रकार के होते हं । सफेद, हरा, स्वर्ण-चंपा और नाग-चपा आदि । इनमे सफेद चपे को छोड शेप सभी विशेप-रूप से सुगन्धित होते है । स्वर्ण-चपे की सुगन्ध वहुत तीव्र होती है । किन्तु नाग-चपे की वास मधुर होती है । चारो ओर चार शुभ्र स्वच्छ चौडी पँखडिया और वीच मे पीला पराग-पुज होता है । यह फूल वहुत ही सुदर दिखाई देना है ।

इस प्रकार गरीबी मे रह कर भी अपना ध्येयवाद वतलाने और तदनु-सार आचरण करने वाली मेरी माता थी । जो वस्तु पति न दे सके, वही उससे मागकर उसे रुलाने या खिन्न करने वाली वह नही थी । वह पति को लजाने या उसका सिर नीचा करने वाली पत्नी नही थी । उससे सादे फूल मात्र ही मागने वाली, किन्तु यदि प्रयत्न-पूर्वक वे कुछ दूर जाने से मिल सके तो उन्ही को लाने के लिए निवेदन करने वाली, पति को भी ध्येय-वाद सिखाने वाली, ईश्वर के लिए परिश्रम करने वाली वह साध्वी थी ।"

२६ प्रभु की समदर्शिता

सायकाल के चार-पाच बजने का समय था। छुट्टी होने से मैं भी घर आया था। माता उस समय देव-दर्शन के लिए मंदिर मे गई थी। किन्तु मैं घर ही पर था। माता के मदिर से लौटते ही मैंने पूछा "क्या मैं भी थोडी देर के लिए बाहर हो आऊं? कमलाकर या शिवराम के घर जाऊगा, यदि बापू यहा आवे तो उसे उन्हीं के घर भेज देना!"

माता ने कहा "तू भले ही अपने मित्रो से मिलने के लिए जा; किन्तु जाने से पहले मेरा एक काम अवश्य करदे। बालकराम दादा के दरवाजे के पास एक महारिन बैठी हुई है। बिल्कुल बूढी है बेचारी! उसके सिर पर का लकडी का गट्ठा नीचे जमीन पर पड़ा हुआ है। वह उसके सिर पर रख देना है। वह बेचारी बिल्कुल अशक्त और बीमार दिखाई देती है। इस लिए उसके सिर पर वह गट्ठा उठाकर रख दे; और यहा आकर स्नान कर ले। मैं तेरे लिए पानी लाकर रखती हूं।"

"किन्तु माँ, यदि लोग मुझे ऐसा करते देखेंगे तो हँसेंगे, इतना ही नही, मारने को भी दौडेंगे! चिल्ला कर कान फोड देंगे। तो भी क्या मैं वहा जाऊ? क्या सचमुच वहा जाकर उसके सिर पर गट्ठा रखवा दू?" मैंने पूछा।

"लोगो से कह देना कि 'मैं घर जाकर स्नान कर लूगा। वह बेचारी कब तक यहा बैठ कर किसी महार के आने की राह देखती रहेगी? लकडी का गट्ठा बेचकर उसे दूर महार-वाडे तक वापस जाना होगा!' इत्यादि बाते कह कर घर आ जाना।"

मैं तो केवल माता की आज्ञा पालन करना जानता था। इस लिए उसी क्षण चल दिया। चलते हुए भी मैं उस बूढी महारिन को यह दिखलाना चाहता था, कि मैं अपने रास्ते से ही जा रहा हू, खास उसीके लिए गट्ठा उठवाने को नही आया हू। इसी लिए मैंने उसके पास जाकर पूछा "क्योरी

वुढिया, क्या यह गट्ठा तेरे सिर पर उठा देना है। ले मैं उठाता हू।" यो कह कर मैं उस गट्ठे को एक तरफ से उठाने लगा।

किन्तु वह वेचारी मुझे ऐसा करते देख भयभीत हो कर निवेदन करने लगी "नही भैया; तुम वामन लोग। कोई अगर देख लेगा तो मुझे मारेगा! नही दादा, जा वावा। अभी कोई न कोई महार-वाडे की तरफ से आता ही होगा, वह उठा कर सिर पर रख देगा। तू अपने रास्ते से घर जा भैया।"

"अरी, मैं घर जाकर स्नान कर लूगा। ले उठ और सम्हाल गट्ठे को।" यो कह कर मैंने वह गट्ठा उसके सिर पर चढा दिया।

मुझे इस प्रकार उसकी मदद करते देख कही से श्रीघर भट्टजी टपक् पडे, और चिल्लाकर कहने लगे "अरे श्याम! वह महारिन थी नँ? उसे तूने छी लिया? क्या इतने ही मे अंग्रेजी पढकर साहव वन गया। भाऊराव से कहना पडेगा।" उनके इन शब्दो को सुन पास ही के घर में से एक महाशय और भी वाहर निकल आये और कहने लगे "श्याम, तू वहुत इतरा गया है। तुझे कुछ भी शर्म है या नही।"

मैंने उनसे कहा "घर जाकर मैं स्नान कर लूगा। केवल घर मे जाने से ही घर भ्रष्ट नही हो जायगा। वह वेचारी कव तक यहा वैठी हुई राह देखती रहती? उसे वापस जाते-जाते अँधेरा (शाम) हो जायगा। नदी में हो कर जाना पडेगा! मै अभी जाकर स्नान कर लेता हू। 'स्नानात् शुद्धि' का मंत्र मुझे भी मालूम है।"

इसके वाद मैं घर आया तो माता ने पूछा "उस वुढिया को तू इधर ही वुलाकर ले आ। कहा दूर जायगी वह वेचारी, इतना वडा गट्ठा उठा कर। फिर कही रास्ते मे गिर जायगा। अपने यहा भी तो ईंधन समाप्त हो चुका है, यही ले लेगे। जा झटपट उसे वुलाकर ले आ!"

तत्काल ही मैंने पुकारा 'अरी, ओ। गट्ठेवाली।' आवाज को सुन कर वह हमारे घर के आहाते मे आई और माता ने उसका गट्ठा गिरवालिया। उसने वुढिया को सवा सेर चावल देने का विचार किया, और मैंने तत्काल कोठार मे से चावल निकाल कर उसके पल्ले में डाल दिया। इसके वाद माता ने उससे पूछा "वूढी माँ, क्या तू वीमार है?"

उसने कहा "हां माई; बुखार बडे जोर का आता है। क्या करे, पेट के लिए भी तो कुछ करना चाहिए!"

इस पर माता ने फिर पूछा "दो-पहर का भात बचा है, ठंडा है। दे दू क्या तुझे?"

उसने अत्यन्त दीन-भाव से कहा "दे दो माई! भगवान तुम्हारा बहुत भला करे! गरीबो का संसार मे कोई नही है। तुम्ही लोगों का तो आसरा है।"

माता ने एक पत्तल पर वह बचा हुआ भात लाकर रक्खा और मैंने उसे उठा कर बुढ़िया को दे दिया। उसने बडे प्रेम से वही आँगन के एक कोने में बैठ कर वह भात खा लिया। इसके बाद बोली —"थोड़ा-सा पानी भी पिला दो बाबा!" तत्काल ही मैंने एक लोटे मे पानी लेकर दूर से उसे पिला दिया, और वह आशीर्वाद देती हुई चली गई।

इसके बाद माता ने मुझे स्नान करने के लिए कहा और केल के वृक्ष के पास बैठा कर ऊपर से मेरे शरीर पर पानी डाल दिया। इस प्रकार सारा शरीर भीग जाने पर मै दूसरे एक पत्थर पर जा बैठा। वहां मैंने अपने हाथो से पानी लेकर अच्छी तरह स्नान किया। स्नान कर के मैं घर में गया और माता से कहा "माँ, उस दिन जो खरे साहब के यहां ज्योनार हुई; वहाँ भी एक गरीब महारनी मण्डप के दरवाजे पर खड़ी हुई भीख माग रही थी। हम लोग उस समय मण्डप के नीचे बैठे हुए भोजन कर रहे थे। पूरन-पोली* परोसी जा रही थी, और लोगो से भोजन मे आग्रह भी किया जा रहा था। भास्कर भट्ट से तो इतना अधिक आग्रह किया गया कि वे क्रुद्ध हो कर उठ खडे हुए, तब आपटेजी ने उन्हे समझा कर बैठाया। किन्तु बाहर खडी हुई उस महारनी को किसी ने रोटी का एक टुकडा नही दिया। वह बेचारी धूप में तिलमिला रही थी। जब कि पंक्ति मे बैठे हुए लोगो पर पानी से भीगे पखो-द्वारा हवा की जा रही थी। खस की सुगन्ध-वाला पानी सब को पिलाया जा रहा था, किन्तु उस गरीब भिखारिनी के चिल्लाने पर भी कोई ध्यान नही दे रहा था। वह ग्रास-भर अन्न माँग

* चने की दाल को गुड के पानी के साथ उबालकर पत्थर पर पीसने के बाद उस लुगदी को लोई मे रख कर बनाई हुई रोटी। —अनु०

रही थी; किन्तु उसे उतना-सा अन्न और घूट-भर पानी तक किसी ने नही दिया। इतना ही नही वरन् एक सज्जन-जिन का नाम मै नही जानता, वे वम्वई में नौकरी करते है—पीताम्वर पहने हुए परोस रहे थे; वे एकदम क्रुद्ध हो कर मण्डप से वाहर गये और उस भिखारिनी को धिक्कारते हुए कहने लगे "शर्म नही आती तुझे, इस समय भीख मागते हुए।' अभी ब्राह्मणो का भोजन भी समाप्त नही हुआ और तू आकर चिल्लाने लगी! जा, अभी। ब्राह्मणो का भोजन समाप्त हो जाने पर जूँठन उठा ले जाना। भीतर ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे है और वाहर से तू चिल्ला रही है! तुम लोग वहुत सिर चढ गये हो! हटती है या फेंकू जूता!" यो कह कर सचमुच ही उस पीताम्वर-धारी व्यक्ति ने जूता उठाया। यह देख वह वेचारी 'मत मार रे दादा, मै यह चली' यो कहती हुई वहासे तत्काल ही चुपचाप चली गई। माँ, ये लोग वम्वई मे ईरानियो के होटलो मे खाते और दूसरो के जूते तक साफ करते है, किन्तु यहा हमारे गाँव मे आ कर इतनी ऐठ दिखाते है। वह वेचारी गरीव महारनी तेरे सामने कह रही थी नँ कि 'गरीवो का कोई नही' सो यह वात सत्य है। माँ, यदि कल को महार का कोई लडका तहसीलदार वन कर आ जाय, तो उसे यही पीताम्वर-धारी अपने घर वुला कर वडे आदर से भोजन करावेगे और हार-फूल से स्वागत करेगे। उसका इत्रपान करेगे, और अपने को धन्य समझेंगे! तो क्या माता! सत्ता और सम्पत्ति के सामने सिर झुकाना ही इन लोगों का धर्म है? क्या यही इनके परमात्मा है? हाथ में जूता उठा लेने से इनका पीताम्वर अपवित्र नही हुआ? पैरो मे जूते पहन कर हाथ मे ये पीताम्वर लिए हुए मौज से चले जाते है, किन्तु जिन्होने ये जूते वना कर इनके पाँव मे पहनाये है, उनसे घृणा करते और उनकी छाया भी अपने ऊपर पडने देना नही चाहते। माँ, यह कैसी मनोवृत्ति है री! यह कैसी पवित्रता और किस प्रकार का धर्म है? क्या परमात्मा को इनका यह पाखण्ड सहन हो सकता है? इनके लिए तो एकमात्र पैसा ही परमात्मा है; क्यो माँ!"

माता ने कहा "वेटा! संसार मे सव लोग पैसे और सम्पत्ति को ही सिर झुकाते है। उन पंढरीनाथ वावा की कहानी में वतलाया गया है न कि, वे

जब गरीब थे, तब उन्हे सब लोग पड्या-पंड्या कर के बुलाते थे। किन्तु जब वे बाहर जाकर पढने-लिखने के बाद वकील बन गये और अपार धन कमा कर घर लौटे, तब उन्होने सोमेश्वर-महादेव मे बहुत बडा उत्सव मनाया। उसी दिन से लोग उन्हे 'पढरीनाथ बाबा' कहने लगे। एक दिन वे किसी के घर मिलने गये, तो वहा उन्हे बैठने के लिए पाट दिया गया। किन्तु उन्होने उसे दूर हटा कर कहा 'भाई, तुमने यह पाट (आसन) मुझे नही, मेरी सम्पत्ति को दिया है, इस लिए, यह सोने की पहुँची निकाल कर मै इस पाट पर रखता हू। मेरे लिए तो यह जमीन ही अच्छी है। तुम लोग तो सम्पत्ति का सम्मान करते हो, मनुष्य का नही। मनुष्य के हृदयस्थ देवता का आदर नही करते, अन्तःकरण की धनाढ्यता का सम्मान नही करते। तुम्हारे लिए तो ये सफेद और पीली धातु के टुकडे एवं कागजी नोट ही पूज्य है।' बेटा, इस प्रकार उत्तर देकर वे लोगो का अज्ञान दूर किया करते थे। महार या माग जैसे गरीब अछूत (हरिजन) के पास पैसा न होने से हम उन्हे दूर रखते है, किन्तु कल को यदि ये ही धनाढ्य हो जायें; तो फिर महार माग बन जायँगे। किन्तु श्याम! भले ही कोई महार हो या माग, हमें बराबर उसकी सहायता करनी चाहिए, और घर आकर स्नान कर लेना चाहिए, क्योकि हमें समाज मे रहना है। समाज की निन्दा का हम सामना नही कर सकते, इसी लिए इन्हे पापी समझते है, इनसे छू जाने के कारण नही। किन्तु पापी तो हम सब ही है।"

"सच है, पाप से किसका छुटकारा हुआ है? इस ससार मे छाती पर हाथ रख कर कौन कह सकता है कि 'मै निष्पाप हू'। अपने शारीरिक-श्रम और खरे पसीने की कमाई एव प्रामाणिक उद्योग-द्वारा रोटी कमाने वाले महार-माग ही अधिक पुण्यवान है, सच है न माँ?" इस प्रकार मैने पूछा।

"श्याम हमारा वह जो विठनाका की तरफ का खेत है, वह भी असल में महार का ही है। मुझे सब मालूम है। पहले किसी समय उसे आधा मन गल्ला (अनाज) दिया गया था। उसका सवाया-ड्योढा कर के हमने वह खेत छीन लिया है। बेटा परमेश्वर के सामने हम्ही पापी सिद्ध

होगे। हमे सिर नीचा कर के खडा रहना पडेगा, समझा!" इस प्रकार खिन्न हो कर माता ने अपने भाव प्रकट किये।

"माता! दामाजी के लिए क्या परमात्मा स्वय बिठू महार नही बन गया? यदि ईश्वर महार को घृणित या पापी समझता तो स्वय उसका रूप क्यो धारण करता?"

माता ने कहा "श्याम! परमात्मा को सभी जीव पवित्र जान पडते है। उसने मछली का रूप धारण किया, कछुए का रूप लिया। शूकर का और सिंह तक का रूप धारण किया। इसका मतलब यही है कि परमात्मा के लिए सारे ही आकार (शरीर) पवित्र है। ईश्वर ब्राह्मण के शरीर में है, मछली के शरीर में है, और महार के शरीर में भी है। वह गजेन्द्र की पुकार सुन नगे पैर दौडता है, तो भक्त के लिए घोडे का खुर्रा करता और गाये तक चराता है। उसे कुब्जा भी प्रिय है और शबरी भी। उसे गुह निषाद प्यारा है, और जटायु पक्षी एव हनुमान वानर भी प्रिय है। श्याम! ईश्वर को सभी प्रिय है; क्योकि सब उसीके बनाये हुए है! जैसे तू मेरा है, इस लिए मुझे प्रिय है, उसी प्रकार हम सब उस ईश्वर के है, इस लिए हम सब उसे प्रिय है। मुझे जो अच्छा लगे, वही तू करता है, वैसे ही हम सबको उस ईश्वर के प्रिय कार्य करने के लिए प्रयत्न-शील रहना चाहिए। किन्तु श्याम, जिसका अपने माता-पिता पर या भाई-बहन पर प्रेम नही है, वह महार, माग (हरिजन) के साथ कैसे प्रेम कर सकेगा! इस लिए पहले हमे घर के सब लोगो पर प्रेम करना चाहिए; इसके बाद तो एकनाथ महाराज की तरह महार की लड़की को भी हृदय से लगा लेने की शक्ति हममें आ सकती है। जब प्रेम का समुद्र हृदय मे नही समा सकेगा, तब वह उफन् कर सब की ओर फैल जायगा। इस लिए बेटा, सब के प्रति हृदय मे प्रेम-भाव रक्खो! इससे अधिक मै तुझे क्या कह सकती हूं। पुराणो मे कहा गया है कि ईश्वर सर्वत्र है! मुझ पगली को क्या मालूम! मै क्या जान सकती हू? तू जब बडा होगा, तब तुझे सब कुछ ज्ञात हो जायगा!"

इस प्रकार माता की बाते सुनते-सुनते शाम हो गई। इतने ही में

किसीने मुझे पुकारा "श्याम! ओ श्याम!" इस पुकार को सुनते ही मै बाहर चल दिया।

मित्रो! आओ, हम ऊच-नीच या खरे-खोटे का वाद अथवा सिद्धान्त ही दूर करदे; और इस वात को हृदय मे अकित करले कि समाज-सेवा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति पवित्र है। ऐसा जब तक नही होता, तब तक मै तो यहि कहूंगा कि .—

भरत-भूमि में शेष नही, अब ईश्वर का कुछ अंश रहा।
फल गया है अंधकार चहुँ ओर न रवि अवतंस रहा॥
जहा नही है दया, स्नेह, हरि-धाम उसे किस भांति कहें।
बन्धुभाव हो जहां न तिलभर प्रभु कैसे उस ठौर रहें!
मदिर में वह नहीं, न मूरति में उसका आभास कहीं।
प्राणिमात्र में उसका दर्शन पा सकते हम सदा यहीं॥*

---

२७ बंधुप्रेम की सीख

मई महिने की छुट्टी थी। हम सब भाई-बहन उस समय घर पर ही इकट्ठे हो गये थे। पूना मे मामा के घर रह कर पढ़ने वाला मेरा बड़ा भाई भी घर आया था। वह पूना मे चेचक निकल आने से बहुत दिनो तक बीमार रहा था। उसके सारे ही शरीर पर सीतला के दाने निकल आये थे। कही भी तिल रखने तक के लिए जगह नहीं थी। बडी कठिनाई से उसके प्राण बच सके। मै तो दापोली मे घर से पास ही

---

* माझ्या भारति या देव तो मुळि नुरला।
सगळा अंधार रे भारतान्तरि भरला॥ माझ्या०॥
नाहि दया स्नेह तिथें देव का असे।
बन्धुभाव तिळ न, तिथें प्रभु कसा बसे।
देव मंदिरीं ना। देव अंतरीं ना।
देव तो अजि मेला॥ माझ्या०॥

रह कर पढता था, इस लिए प्रत्येक छुटी में घर आ जाता था। शनिवार-रविवार को इच्छा होते ही मै घर हो आता था। किन्तु मेरा वड़ा भाई दो वर्ष मे एक बार घर आता था। इस समय भी वह दो वर्ष वाद ही आया था, और कठिन वीमारी से अशक्त हो कर आया था।

चेचक (सीतला) की वीमारी से उठने वाले मनुष्य के शरीर मे गर्मी बहुत बढ जाती है। माता (चेचक) की बडी गर्मी रहती है। इस लिए उस समय रोगी के पेट मे कोई ठण्डी वस्तु पहुँचाने की विशेष आवश्यकता होती है। ऐसी दशा मे गुलकद देना सवसे अच्छा है। किन्तु वहा गाँव मे हमारे घर गुलकन्द कहा से आ सकता था? उसके लिए पैसे कहा से लाये जाते? फिर भी मेरी गुणमयी माता ने इस के लिए गरीबो का ही एक उपाय खोज निकाला।

कादा (प्याज) वहुत ठण्डा होता है। साथ ही वह सस्ता और पौष्टिक भी होता है। डॉक्टरो के मतानुसार उसमे 'फॉस्फरस' होता है। जेल मे रहते समय हम कादे (प्याज) को राष्ट्रीय-खाद्य कहते थे। क्योकि वह प्राय हर समय मिल सकता था। कादा (प्याज) रोटी खाने वाले मावलो (दक्षिणी पहाडो मे रहने वाली भीलो की ही एक जाति) ने कैसे-कैसे पराक्रम किये है! यथेष्ट शारीरिक श्रम करने वाले के लिए भी कांदे (प्याज) से कोई हानि नही होती, केवल वौद्धिक-श्रम करने वाले के लिए ही वह अच्छा नही है।

कादे (प्याज) के गुणधर्म चाहे जो हो; किन्तु मेरी माता ने तो कुछ प्याज ले कर उन्हे थोडी देर तक भाफ मे रखा और उनका ऊपरी छिल का निकाल कर गुड़ की चाशनी मे डाल दिया। यह "कादा-पॉक" वहुत ठण्डा बताया जाता है। मेरी माता वडे भय्या को उस पाक मे से दो-तीन कादे प्रतिदिन खिलाने लगी।

एक दिन मैने माता से कहा "माँ, मुझे तू उस पाक मे से एक भी कादा मत देना, समझी! मै तो तेरे लिए अन-मानैता लडका हू ही, जो कुछ है सो दादा के लिए है। कादा-पॉक भी उसीके लिए है। भात (चावल) पर घी भी उसीको ज्यादा परोसा जाता है, दही भी उसी को अधिक मिलता है; हमे भला, ये सव चीजे क्यों मिलने लगी, हम

तेरे कौन होते है। हम तो पास रहते है, बार-बार घर आते रहते है, हमे कौन पूछता है ? सच है, पास रहने वाला कोने मे बैठाया जाता है और दूर रहने वाला स्वप्न मे दिखाई देता है। अच्छा है भाई, दादा की पाँचो उँगलिया घी मे है। मुझे भी यदि चेचक (माता) निकलती तो वड़ा अच्छा होता। ऐसा होनेपर आज मुझे भी कादा-पॉक तो मिलता, दूध-दही मिलता और यथेष्ट गाय का घी भी मिलता!"

मेरी वात सुन कर दादा को बुरा लगा। किन्तु वह वहुत ही उदार चित्तवाला भाई था। पढने में उसे भी वडा कष्ट सहना पडता था। किन्तु वह चुपचाप सव सहन करता था। मेरी तरह उपद्रवी और कुचेष्टी वह न था। उसका स्वभाव शान्त और धीमा था। जिस प्रकार समुद्र भीतर ही भीतर वडवानल से जलता रहता है; उसी प्रकार वह भी भीतर-मन मे दु.ख और अपमान से जलता रहता था, किन्तु मुँह से कभी एक अक्षर तक न निकालता था। साथ ही वह अपने मन की व्यथा किसीसे कहता भी न था। उसकी यह धारणा थी कि अपना दु.ख या अपनी करुण-कहानी दूसरे को सुना कर क्यो व्यर्थ के लिए दुखी किया जाय ? अस्तु।

मेरी वात सुन कर दादा ने माँ से कहा "सच है माता, मुझे अकेले ही ये सव चीजे खाते हुए शर्म लगती है! कल से मुझे ये सव चीजे मत देना। यदि सवको देती हो तो मुझे भी देना। चेचक तो निकल गई, अव क्या रक्खा है ? वरनी में जितना भी पॉक वचा है, उसे चार दिन हम सव मिल कर खाएँगे।"

माता ने कुछ अप्रसन्न-सी हो कर कहा "अरे, तुम क्या कोई मेरे सौतेले लड़के हो? श्याम! इस प्रकार के आक्षेप-भरे शब्द तू क्यो मुख से निकालता है? उस वेचारे के पाँव के तलवो और आँखो मे दिनरात जलन होती है, रात को भी वह तडपता रहता है, उसे नीन्द नही आती; क्या ये सव वाते तू नही जानता है? उसे थोड़ी-सी ठण्डक मिले, इसी लिए तो यह दवाई—गरीवी का उपाय—तैयार की है। अरे क्या ? खाने के लिए तूने जन्म लिया है? कहता है मुझे चेचक (माता) क्यो नही निकली? श्याम! अरे, इस तरह कोई वोलता भी है? परमात्मा को क्या प्रतीत होगा? अच्छा भला, हृष्ट-पुष्ट शरीर मिला है, तो तुझे विना काम के

भूतो का स्मरण होता है। ऐसा नही कहना चाहिए श्याम! अब तू क्या छोटा बच्चा है? और फिर ये पोथी-पुराण क्यो पढ कर सुनाता है? राम पर लक्ष्मण का, और भरत का कितना प्रेम था! क्या उनकी कथाएँ तूने व्यर्थ ही पढी है? अरे, उनमे से कोई गुण भी तो ग्रहण करना चाहिए नँ? वह तेरा ही तो बडा भाई है, या कोई पराया है? अरे, पराये का भी द्वेष नही करना चाहिए। पराया भी यदि बीमार हो तो जो कुछ हो सके उसे देना चाहिए। तू जब घर आता है, तब क्या तेरे पाँव मे तेल मै नही लगाती? गर्म पानी से तेरे पाँव नही धुलाती? घर आने पर तुझे कोई अच्छी-सी मीठी चीज बना कर नही खिलाती? नारियल-पाक या इसी तरह की कोई मिठाई तुझे साथ ले जाने के लिए नही बना देती? भला, बडे भाई का कोई इस प्रकार द्वेष करता भी है? इससे तो जान पडता है कि बडे होने पर तुम एक दूसरे का मुँह भी नही देखोगे! बेटा श्याम! ऐसा न करना, समझे!"

दादा ने कहा "माँ, तू व्यर्थ ही अपने चित्त को दुखी करती है। श्याम के मन मे ऐसी कोई बात नही है। हा, तो अभी तू हमे नाश्ता देने वाली थी नँ! लाऊ क्या केल के पत्ते तोड कर?"

माता ने कहा "जा रे श्याम, ला पत्ते तोड़ कर। देखना, नये कोमल पत्ते मत काटना। वह हँसिया ले, और ऊपर के बडे पत्ते काट कर ले आ।"

मै गया और केल के पत्ते जो ऊचे चले गये थे, काट कर घर ले आया। मेरे छोटे भाई ने केल का मोटा-सा डठल देख कर कहा "दादा, वह डठल मुझे बजाने के लिए दे दे। मै फट्फटा बनाऊगा।"

माता नाश्ता बनाने लगी। थोडी ही देर मे हम गर्मा-गरम नाश्ता उडाने लगे। ऊपर से मक्खन परोसा जाने से उसका स्वाद बहुत बढिया हो गया था। इतने ही मे माता ने कहा "अरे, प्रात काल तुलसी को मक्खन-मिश्री का जो नैवेद्य रखा था, वह वही सीपी मे रखा होगा, उसे भी लेलो। मेरी माता प्रतिदिन सवेरे तुलसी के सम्मुख मक्खन-मिश्री का नैवेद्य रखती थी। दादा ने बरनी में से 'कादे-पॉक' ला कर नाश्ते के साथ सब की पत्तल पर रख दिया। माता ने कहा "श्याम! कल मत मागना समझे!

तुम्हारे भाई पर तुम्हारी ही नजर न लगनी चाहिए! समझ गया नँ? श्याम! अब तुझे समझदार बनना चाहिए।"

किन्तु मे उस दिन सबेरे से ही रूठा हुआ था। किसी से भी मै अच्छी तरह नही बोला। दादा ने मुझे गुल्ली-डंडा या गेद-बल्ला खेलने को बुलाया, परन्तु मै नही गया। तब वह छोटे भाई के साथ धनुष्य-बाण से खेलने लगा। छोटे भाई ने छाते की तीली को घिस कर बाण बना लिया था। दादा निशाने लगा रहा था। वह पौधो पर बाण चलाता और उनमे से रस—दूध—टपकने लगता। यह देख मैंने गुस्से मे आकर कहा "दादा, तू उन अबोले वृक्षो को क्यो कष्ट पहुँचाता है? उनके शरीर मे से रक्त क्यो निकालता है?"

यह सुन दादा ने कहा "तो फिर तू मेरे साथ गेद-बल्ला खेलने आता है?"

किन्तु इसके जवाब मे मैं यह कहता हुआ सन्नाटे से निकल गया कि "मेरे क्या जूते को गरज पड़ी है? मै नही आता जा।" भाई के साथ मेरा प्रेम नही था, किन्तु वृक्ष-पौधो पर मै प्रेम दिखाना चाहता था। वह केवल वचना (पाखड) ही थी। जो भाई मे प्रेम नही करता वह वृक्ष और पौधो से कैसे प्रेम कर सकता है?

दो-पहर का भोजन हो चुकने के बाद दादा लेटा हुआ था। वह अपने पाँव के तलवे हाथो से सुहला रहा था। उसके तलवो मे निरन्तर जलन हो रही थी। आज इतने वर्ष हो जाने पर भी उसकी जलन कम नही हुई थी, उसमे भी फिर इस समय तो वह चेचक की बीमारी से उठा था। मैं प्रतिदिन दादा के पैरो पर खडा हो कर उन्हें दबाता और इससे उसे आराम मिलता था। किन्तु उस दिन तो मै रूठा हुआ था। दादा मेरी ओर देख रहा था; मूक-स्वर मे मुझे बुला रहा था। किन्तु मैंने निश्चय कर लिया था कि आज उसके पाँव हर्गिज नही दबाऊंगा। मैं दुष्ट हो गया था। उस दिन मेरे हृदय का सारा ही प्रेम मर गया था! उस दिन मै पत्थर हो गया था। अन्त में दादा ने मुझे पुकार कर कहा "श्याम आज तू मेरे पैरो पर खडा हो कर उन्हे नही दबावेगा? मुझे तुझ से इसके लिए कहते हुए बड़ा सकोच होता है। प्रतिदिन ही तुझ से कब तक यह

काम लेता रहू ! किन्तु, श्याम ! पूना चले जाने पर मै थोडे ही तुझ से इसके लिए कहने आऊगा ! तू यहा है, इसी लिए कहता हू ! जरा पैरो से दबादे तो भैया !"

दादा के करुण-शब्दो से मै भीतर ही भीतर पिघल रहा था। परन्तु मेरे मन मे तो अहंकार भरा हुआ था। वह अभी नही पिघला था। बर्फ के पहाड जैसे सूर्य-किरणो से पिघल जाते है, उसी प्रकार अहंकार का पर्वत प्रेम के स्पर्श से पिघल कर वह जाता है। किन्तु उस समय तो मै हठ धारण कर चुका था, निश्चय कर चुका था। इसी लिए मैने दादा के शब्दो पर ध्यान नही दिया। मै अपने स्थान से हिला तक नही !

माता उस समय भोजन कर रही थी, और उसके कान पर दादा के वे करुण शब्द पड रहे थे। वह बेचारी हाथ धोकर वहा आई। उस समय भी उसने देखा कि मै अपने स्थान से हिला तक नही हू। उसने दादा के पास जाकर कहा "गजू ! (गजानन) मै दबाती हू तेरे पॉव, बेटा ! तू उसे क्यो कहता है ? उसे क्यो कष्ट देता है ? वह तेरा कौन है ? सगा भाई होने पर भी स्वभाव का भेद तो है ही।" यो कह कर सचमुच ही वह दादा के पैर दबाने लगी। उधर चौके मे जूँठन और रसोई के बर्तन आदि ज्यो के त्यो पडे हुए थे। टोकरे-भर बर्तन माँजने के थे; किन्तु माता ने उन्हे वैसे ही पडे रहने दिया। केवल रसोई-घर का दरवाजा बन्द कर के वह दादा की सेवा के लिए आ गई थी। मेरी उस प्रेममूर्ति, त्यागमयी एव कष्टसहिष्णु माता, उस उदार और महान् हृदय वाली माता ने मुझ से एक शब्द तक नही कहा। वह मुझ पर जरा भी नाराज नही हुई !

अन्त को मै ही लज्जित हुआ और मेरा सारा अहकार दूर हो गया। मैने माता के पास जाकर कहा "माँ, तू जा। मै दादा के पैर दबाता हू। जा झट्, तुझे घर का सब काम करना है।"

इस पर माता ने कहा "यदि तू दबाता ही है तो अच्छी तरह और धीरे-धीरे दबा, बेगारी की तरह पाप टालने के जैसा मत करना। इसे नीद आ जाने तक दबाना और तब खेलने के लिए चले जाना। अरे, यह तेरा ही तो दादा है न श्याम !" यो कह कर माता चली गई। जूँठन पर गोबर से लीप कर वह बर्तन माँजने के लिए बाहर आई। इधर मै दादा के

पैरो पर खड़ा हो कर दवा रहा था। अपने पैरो की उगलियो से उसके तलवो को सुहला रहा था। अन्त मे मेरे उस उदार एवं निरहकारी दादा को नीद आ गई।

मेरा गुस्सा उतर चुका था। ज्यो-ज्यो सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, त्यों-त्यो मेरा क्रोध भी अस्त होता जा रहा था। संध्या के बाद रात्रि का भोजन हो चुकने पर माता ने चौका-वर्तन कर डाला। हम लोग ऑगन मे वैठे हुए थे। तुलसी पर रखी हुई गलती अभी टपक रही थी। गर्मी के दिनो मे एक मटके या कलसे के पेंदे मे बारीक-सा छेद कर के उसमे पानी भर कर तुलसी पर लटका दिया जाता है, और आते-जाते हुए उसमे पानी डालते रहते है। उसे गलती कहते है। जैसी कि शिवजी के मदिर मे प्राय. देखने को मिल सकती है। इससे तुलसी को ठण्डक मिलती है और धूप के कारण वह कुम्हलाने नही पाती। तुलसी के पास घी का दीपक भी जल रहा था। किन्तु ऑगन मे दीपक की जरूरत थी ही नही; क्योकि वहा तो खासी चादनी छिटक रही थी। मेरे दादा के निर्मल मन की तरह शुभ्र चद्रिका फैली हुई थी। दादा, मै, पुरुषोत्तम और छोटा भैय्या, हम सब आँगन मे वैठे हुए थे। दूधवाली दादी और माता भी वैठी हुई थी। पडौसिन जानकी मौसी भी आगई थी। भीगे हुए 'वाल' (धान्य-विशेष) के बीज निकाले जा रहे थे। थोडी ही देर के बाद मैने माता से कहा " माँ तू वह अभिमन्यु-वाला गीत सुना! मुझे वह वहुत अच्छा लगता है :—

अभिमन्यू गिर पड़ा भूमि पर चक्रव्यूह में फँसकर।
सात वीर ने मारा छल से, तदपि गिरा वह हँसकर॥ १॥
गुरुवर द्रोणाचार्य रचित था, विकट व्यूह वह भारी।
फिर भी वीर घुस पड़ा उसमें, जरा न हिम्मत हारी॥ २॥*

हां, तो इसके आगे क्या है? गाती है न माँ! भगवान कृष्ण और अर्जुन उस रात को रण-भूमि पर घायल अभिमन्यु का शरीर ढूढने के

* पडला अभिमन्यु, मन्युवीर रणीं। चक्रव्यूह रचिला द्रोणांनीं
पडला अभिमन्यु।

लिए जाते है और अभिमन्यु पढ़ा हुआ मन्द-स्वर में कृष्ण-कृष्ण उच्चारण कर रहा है। उस मधुर-ध्वनि पर से वे दोनो जान लेते है कि अभिमन्यु यही कहीं होगा! ...अहा कैसा सुन्दर गीत है! गाती है न माँ।"

माता ने कहा "अरे, आज तो दादी ही बढिया गीत सुनाने वाली है। आज उन्हीका गीत सुनो! हा, गाओ नँ वह चिन्दी (पट्टी) का गीत! मैंने भी कई दिन से वह गीत नही सुना है।" इस प्रकार माता ने हमारी दादी से अनुरोध किया। यह बात मै पहले ही बता चुका हूं कि हमारी उस दूधवाली दादी को अनेक प्रकार के गीत आते थे। किन्तु वह चिन्दी (पट्टी) वाला गीत मैंने कभी नही सुना था। इस लिए यह सोचकर कि वह योंही कोई गाना होगा, मैंने कहा "नही वह नही, चिन्दी का कोई भिखारी गीत होगा! उससे तो अच्छा पीताम्बर वाला कोई गीत सुनाओ दादी।" दादी ने कहा "अरे श्याम! तू जरा सुन तो सही। उस चिन्दी के गीत मे भी पीताम्बर और साड़ियां ही है।"

दादी गाने लगी। उसका स्वर बहुत मधुर था। वह यथा-स्थान जोर देकर एवं हाथ-मुँह हिला कर गा रही थी। वह भावनामय हो कर गीत गा रही थी। विषय से एकरूप हो कर गा रही थी। उसका प्रारंभिक पद इस प्रकार था :—

द्रौपदी के बंधु माधव कृष्णचन्द्र मुरारि रे!*

यह गीत जिसने बनाया, वह कोई महान् कवि होना चाहिए। इसमें अत्यन्त सहृदयता-पूर्ण एवं रम्य-कल्पना भरी हुई है। कृष्ण का द्रौपदी पर हार्दिक प्रेम था, और द्रौपदी भी कृष्ण के प्रति अचल स्नेह रखती थी। अर्जुन और कृष्ण दोनो ही एक रूप होने से अर्जुन का नाम भी कृष्ण ही है, उसी प्रकार कृष्ण और द्रौपदी में भी अभिन्नता होने से इनका अद्वैत-भाव दिखलाने के लिए ही द्रौपदी को कृष्णा भी कहा जाता है। इस गीत मे कवि ने घटना-प्रसग की बड़े ही सुन्दर-रूप मे कल्पना की है। कृष्ण का अपनी सगी बहन सुभद्रा पर उतना प्रेम नही था, जितना कि द्रौपदी पर (जोकि

* द्रौपदीसि बन्धु शोभे नारायण।

मानी हुई बहन थी)। इसका कारण क्या हो सकता है? इसी शंका का कवि ने अपने इस गीत मे निरसन किया है।

घटना इस प्रकार है कि एक दिन तीनो लोक मे विचरने वाले नारदजी ब्रह्म-वीणा कांधे पर रख कर भक्ति-भाव से स्तुति करते हुए भगवान कृष्ण के पास आये। नारदजी तीनो लोक, अर्थात् सुर, नर और असुर तीनो के लोक मे, अथवा—सात्त्विक, राजस, तामस या श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ इस प्रकार के तीनो लोक मे भ्रमण करते रहते थे। इसी कारण उन्हे अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त होते थे; और नाना प्रकार के दृश्य भी देखने को मिलते थे। किसी की महिमा बढ़ाना और किसी का गर्व दूर करना, और यदि किसी कोने मे कोई सुगन्धित पुष्प खिला हुआ हो तो उसकी सुगन्ध सर्वत्र फैलाना, आदि उनके नित्य के काम थे। उनका सब जगह सम्मान होता था, क्योकि वे नि.स्पृह थे। साथ ही वे सबके कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्न-शील भी रहते थे।

उन दिनो भगवान कृष्ण पाण्डवो के यहां मेहमान बन कर आये थे। नारदजी को देखते ही कृष्णचद्र उठे और उनसे प्रेम-पूर्वक गले मिले। कुशल-प्रश्नादि हो जाने पर नारदजीने कहा "भगवान, मै आज आपसे अपनी एक शका का समाधान करने आया हूं। मै सर्वत्र यही कहता फिरता हू कि भगवान कृष्ण समदर्शी और नि.पक्षपाती है। किन्तु एक स्थान पर किसी ने मुझ से कहा कि "नारदजी! बस रहने दो तुम्हारे कृष्ण की स्तुति। अरे, सगी छोटी बहन की अपेक्षा उस मानी हुई बहन पर ही उनका विशेष प्रेम है। भला, यह कैसी समदृष्टि है? सो भगवान मै इसका क्या उत्तर देता? इसी लिए विचार किया कि स्वतः आपके ही पास पहुँच कर इस शका का समाधान कराना ठीक होगा! अत. आप इस भेद-भाव का रहस्य मुझे समझाइये। अपनी सगी बहन जो सुभद्रा है, उस पर आप का प्रेम कम क्यो है, सो बतलाइये।"

भगवान ने कहा "नारदजी, मै निष्क्रिय हूं। जो मुझे अपनी ओर खीचता है, उसीकी ओर मै चला जाता हूं। हवा चारो ओर चलती है, परन्तु मकान बन्द कर के बैठने वाला या घर की सब खिड़कियाँ बन्द कर लेने वाला यदि यह कहे कि 'हवा केवल खिड़की-दरवाजे खुले

रखने वाले के ही घर मे क्यो जाती है, मेरे घर मे क्यो नही आती ?' तो क्या उसका यह कहना ठीक समझा जायगा ? जिसने अपने सब खिड़की-दरवाजे खुले रक्खे है, उसके घर में ही वायु और प्रकाश का प्रवेश होगा ! जितने द्वार खोले जायेगे, उतनी ही हवा और रोशनी भीतर प्रवेश कर सकेगी। ठीक यही दशा मेरी भी है। द्रौपदी की डोर बलवान होगी, अत' उसने मुझे खीच लिया। सुभद्रा की डोर टूटी हुई होगी या मजबूत न होगी तो इसके लिए मै क्या करू ? मैं तो स्वत. निष्क्रिय हू। मेरा सच्चा स्वरूप '**लोकों में निस्पृह सदा अजित मै, अंतः उदासीन मै**'* जैसा ही है। किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा परीक्षा कर के देखने की हो तो जैसा मैं बतलाता हू, उस प्रकार थोड़ी-सी देर के लिए प्रयत्न करो। अर्थात् इसी क्षण सुभद्रा के पास दौड़ते हुए जाकर कहना कि 'कृष्ण की उगली कट गई है, उस पर बाँधने के लिए कपडे की एक चिन्दी दो।' यदि वह दे दे तो ले आना; और न दे तो द्रौपदी से जाकर मागना।"

नारदजी चले और प्रथमत' सुभद्रा के पास पहुँचे। इन्हे आते देख सुभद्रा ने बडे प्रेम से सत्कार किया, और पूछा "कहिये नारदजी ! कैलास पर, ब्रह्म-लोक मे या पाताल लोक मे क्या-क्या हो रहा है। कही कोई नई बात देखी हो, तो सुनाइये। आप का यह अच्छा धन्धा है; उठाई वीणा और चल दिये। जहा जी चाहा पहुँच गये। किन्तु इस तरह घूमते हुए उकताहट भी कभी नही होती होगी ! क्योंकि नित्य नये प्रदेश मे विचरण करते रहते हो। आज नन्दनवन मे तो कल मधुवन मे, किन्तु आज ऐसी जल्दी क्या है ? बैठते क्यो नही ?"

नारदजी ने कहा "सुभद्रा बहन, बैठने का समय नहीं है। भगवान कृष्ण की उगली कट गई है, धग्-धग् रक्त निकल रहा है। उनकी उगली पर बाँधने के लिए कपड़े की एक चिन्दी चाहिए।"

इस पर सुभद्रा ने उत्तर दिया "अरे, तुमने ऐसी वस्तु मांगी है, जो बिना ढूढे मिलना कठिन है। भला, मै चिन्दी कहां खोजू ! यह पीताम्बर उन्होने उत्तर-दिग्विजय के समय ला कर दिया था, और यह साड़ी कुति-भोज राजा ने भेट-स्वरूप भेजा थी। नारदजी इस समय तो घर मे कपड़े

***लोकीं निःस्पृह मीं सदा अजित मीं चित्तीं उदासीन मीं।**

की चिन्दी मिल सकना असम्भव है। यह बहुमूल्य साडी और वह शाल .... नही नारदजी, घर मे चिन्दी नही है !"

"अच्छा, तो मै द्रौपदी देवी के यहा जाता हू।" यो कह कर नारदजी चल दिये।

द्रौपदी 'कृष्ण-कृष्ण' गुनगुनाती हुई फूलो का हार गूथ रही थी। नारदजी को देखते ही एकदम उठ खडी हुई और वडे प्रेम से उनका स्वागत करते हुए वोली "आओ नारद ! यह हार मै तुम्हे ही पहना देती हूं। आओ, वैठो इस आसन पर। आज-कल भैया कृष्ण यही है, उन्हीसे मिलने आये हो, क्या ? उन्हीके आसपास तुम सब भौरे की तरह एकत्रित हो जाते हो ! किन्तु देखना, सारे ही कृष्ण को मत लूट लेना, थोडा-सा मेरे लिए भी छोडना, समझे !"

यह सुन नारदजी ने घवराते हुए कहा "द्रौपदी, यह समय हँसी-ठट्ठा का नही है। वात-चीत करने के लिए भी समय नही है। भगवान कृष्ण की एक उगली कट गई है, उस पर बाँधने को चिन्दी चाहिए"

"क्या सचमुच ? कितनी कट गई है ? अरे-अरे मेरे भैया की उगली कट गई !" यो कहते हुए उसने अपने शरीर पर धारण किए हुए पीताम्बर मे से ही फाड कर एक चिन्दी नारद को दे दी।

देह पर का जरि पिताम्बर तुरत दीन्हा फाड़ि रे।
द्रौपदी के बन्धु माधव कृष्णचन्द्र मुरारि रे॥*

दादी ने वह गाना इतने भाव-पूर्ण स्वर मे गाया कि सुनते-सुनते मै तल्लीन हो गया। दाने छीलना तक भूल गया।

गीत समाप्त होते ही माता ने पूछा "क्यो श्याम ! गीत पसद आया ? तूने अच्छी तरह ध्यान से सुना है नँ ?"

मै माता के उद्देश्य को समझ गया और वोला "माँ, आज तूने दादी से यही गीत गाने के लिए क्यो कहा, सो वतलाऊ ?"

माता वोली "हा, वतला ! क्या तू मन की बात भी जानने लग गया है ?"

---

*भरजरि ग पितांबर दिला फाडून। द्रौपदीसि बंधू शोभे नारायण॥

मैंने कहा "आज दो-पहर को मै दादा के पैरो पर खड़ा हो कर उन्हें नहीं दबा रहा था। सवेरे उसे कादा-पॉक खाने नही देता था, जैसे सुभद्रा सगी वहन होते हुए भी भगवान के लिए एक चिन्दी तक फाड कर न दे सकी; उसी प्रकार मै सगा भाई होते हुए भी अपने दादा से प्रेम नही करता॥ यही बात मुझे इस गीत-द्वारा बतला देना तुझे अभीष्ट था; क्यो यही बात है नँ? मुझे लज्जित करने के लिए ही तूने दादी को यह गीत सुनाने के लिए कहा था? सचमुच यही बात थी नँ माँ; मेरा अनुमान मिथ्या तो नही है?"

माता ने कहा " हा; परन्तु तुझे लज्जित करने के लिए नही वरन् बंधु-प्रेम सिखलाने के लिए ही!" मै एकदम उठा और सीधा अपने दादा के पास गया। वहा जाकर मैंने उसके हाथो पर हाथ रख कर गद्गद् स्वर में कहा " दादा, मै आज से तेरी किसी भी बात के लिए नाही न करूगा। मै तेरे साथ प्रेम करूगा, तेरी भक्ति-सेवा करूगा। मेरे दो-पहर के अपराध के लिए क्षमा कर!"

दादा ने कहा "श्याम! यह तू क्या कर रहा है? क्षमा किस बात की मागता है? मै तो दो-पहर की बात को भूल भी गया था। जिस प्रकार आकाश मे बादल क्षणभर ही टिकते है, उसी प्रकार तेरा क्रोध भी क्षणस्थायी होता है। तेरे मनमौजी स्वभाव का मुझे पता है; और इसीके साथ-साथ मै यह भी अच्छी तरह जानता हू कि तेरा हृदय स्फटिक की तरह निर्मल है। माँ हम कभी एक दूसरे से दूर न होंगे, एक दूसरे को नही भूलेंगे। यदि क्षणभर के लिए कभी लड-झगड भी लिये, तो भी फिर एक दूसरे के गले लग जायँगे"

माता ने कहा " तुम परस्पर प्रेम करो; इसीमे हमारा और परमात्मा का आनन्द है।"

---

२८ उदार पितृहृदय

हमारे घर उस समय गाय जनी थी। इस लिए माता ने गाय के दूध का चीका (अच्छे दूध मे मीठा और नव-प्रसूता गाय का दूध मिला कर उसे गर्म करते और फट जाने पर उसे जमा कर वर्फी-नुमा काट कर खाते है।) बनाया था। उस समय माता मुझे याद कर रही थी। क्योकि चीका मुझे वहुत पसद है। जब मै बच्चा था, तब राधा ग्वालिन यदि उसके घर 'चीका' होता; तो अवश्य लाकर मुझे दिया करती थी। किन्तु वह बेचारी थोडे ही दिनो बाद मर गई! माता ने पिताजी से कहा "यदि कोई आने-जाने वाला होता तो उसके हाथ श्याम के लिए चीका भेज देती!" यह सुन पिताजी बोले "किसी आने-जाने वाले की राह देखने का क्या काम, मै खुद ही लेकर चला जाता हू। घर की गाय का चीका पाकर श्याम को बडी प्रसन्नता होगी। कल सवेरे जल्दी उठ कर मै खुद ले जाऊगा। परन्तु किस बर्तन मे ले जाना ठीक होगा?"

माता ने कहा "उस सेर-भर नाप वाले बर्तन मे बना दूगी, उसे ही किनारे तक चीके से भरा हुआ ले जाना ठीक कर रहेगा।"

प्रात काल माता ने बढिया चीका तैयार किया और उसे ले कर पिताजी पैदल ही मेरे पास आने के लिए दापोली चल दिये।

स्कूल मे दो-पहर की छुट्टी हो चुकी थी, और पिंजरे मे बन्द पक्षी की तरह सभी लड़के बाहर निकल आये थे; अथवा वाडे मे घिरे हुए बछड़े बाहर खुले मैदान मे खुली हवा मे खेल रहे थे। पाठशाला के चारो ओर घनी झाडी थी। कलमी आम के पेडो मे बहुत नीचे से शाखाएँ फूटने लगती है। वे शाखाएँ जमीन से टिक कर ऐसा भास कराती है, मानो भू-माता के गले लग कर आलिंगन कर रही है। इसी लिए दो-पहर की छुट्टी मे लडके इन्ही आम की शाखाओ पर कूद-फाद कर खेला करते थे। उस समय वे एक प्रकार से बन्दर ही बन कर उड़िया लगाने लगते और छुट्टी का समय आनन्द से विताते थे।

उस समय लडके इधर-उधर भटक रहे थे। कोई घर से लाया हुआ

नाश्ता उडा रहा था, तो कोई आम की शाखा पर बैठा हुआ गा रहा था। कोई लम्बी डाली पर बैठ कर झूल रहा था, तो कोई दूसरा खेल खेल रहा था। कोई पढ रहा था और कोई वृक्ष की छाया मे लेटा हुआ था। इसी प्रकार कोई भीतर पाठशाला मे ही बैठ कर पुस्तक पढ रहा था। किन्तु मै अपने एक साथी को लिये हुए वृक्ष के नीचे बैठा कविताएँ सुना रहा था। मुझे बहुत-सी कविताएँ मुखाग्र थी। लगभग सारा ही 'नवनीत' (काव्य-सग्रह) कठस्थ था। सस्कृत के स्तोत्र गगालहरी, महिम्नस्तोत्र आदि भी याद थे। साथ ही मुझे खुद भी कविता बनाने का शौक था। 'ओवी' (दोहे की तरह का पद्य) तो मै बहुत ही शीघ्रता से बना लेता था। ओवी, अभग, दिण्डी, साकी, आदि के समान छोटे-छोटे और सुगम वृत्त क्वचित् ही कही दिखाई देगे। ये जन्मजात मराठी-वृत्त (पद्य-छद) है। मै अकेला एक ओर होता और दूसरे सब लड़के दूसरी ओर। फिर भी मै उनसे अच्छी कविता सुना कर बाजी मार ले जाता था। लडके मजाक में मुझे 'बाल-कवि' कहते थे।

इधर हम अपने काव्यालाप मे लगे हुए थे, कि इतने ही मे कुछ लड़के "श्याम, अरे ओ श्याम!" की आवाज लगाते हुए वहा आ पहुँचे। उनमे से एक ने मुझ से कहा "श्याम! तुझे कोई खोज रहा है। वह पूछ रहा है "हमारा श्याम कहा है?" इतने ही मे मेरे पिताजी खुद मुझे खोजते-खोजते वहा आ पहुँचे।

मैने पूछा "भाईजी, आप यहा कैसे आये? अब हमारी घटी होने वाली है। मै घर पर ही आपसे मिल लेता।" पिताजी की वह अस्त-व्यस्त वेशभूषा देख कर मुझे शर्म लग रही थी। उन दिनो मै अगरेजी पाठशाला मे पढते हुए लडको के बीच विचरता था। अन्य किसी बात का महत्त्व न समझ सकने पर भी साफ-स्वच्छ और फेशनेबल पोषाक की महत्ता मै अवश्य समझने लगा था। अत उस समय छह कोस पैदल चल कर आने वाले पिताजी के हार्दिक-प्रेम का मुझे ध्यान नही हुआ; और मेरी दृष्टि उनकी देहाती वेश-भूषा की ओर ही गई। मै उस समय अधा हो रहा था। आधुनिक-शिक्षा के कारण मेरे हृदय का विकास नही बरन् सकोच ही हो रहा था। उस शिक्षा-द्वारा अंतर्दृष्टि प्राप्त होने के बदले मै अधिकाधिक

बहिर्दृष्टि होता जाता था। शिक्षा के द्वारा वस्तु के अंतरग मे जाने के बदले मे उसके बाह्य-स्वरूप पर ही मुग्ध हो रहा था। जो शिक्षा मनुष्य को दूसरे के अत करण मे प्रवेश नही कराती; दूसरे के हृदय-मंदिर की सत्य-सृष्टि नही दिखाती, वह शिक्षा शिक्षा ही नही कही जा सकती। शिक्षा के द्वारा तो प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति एक प्रकार से ज्ञानमदिर ही जान पड़ना चाहिए। इन सब बाह्य आकारों के भीतर जो दिव्य और भव्य सृष्टि होती है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन होना चाहिए। ऐसा जब तक नही होता, अस्पष्ट-रूप से भी नही होता, तब तक प्राप्त की हुई सब शिक्षा व्यर्थ समझनी चाहिए। हृदय का विकास एक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण एव जीवन मे सुन्दरता और कोमलता लाने वाली वस्तु है।

छह कोस पैदल चलकर पिताजी आये। किन्तु क्यो आये? वह चौका उसकी एक वर्फी अपने पुत्र को (मुझे) देने के लिए! कितना नि.स्वार्थ प्रेम! उस प्रेम मे उन्हे यह सब कष्ट भी आनद-प्रद जान पडता था। और सच्चा प्रेम भी उसीका नाम है, जिसमे अनंत कष्ट, विपत्तियां और सकट भी मधुर प्रतीत होते हैं। इस प्रकार का दिव्य प्रेम मुझे बाल्यावस्था मे प्राप्त हुआ था। किन्तु आज तो मै अपने माता-पिता के उस दिव्य-प्रेम मे भी दोष ढूढने लगूगा। यदि उन्होंने अपने गाँव के ही किसी गरीब लड़के को वह चौका दे दिया होता? या किसी हरिजन-बालक को वह स्वादिष्ट खाद्य दिया होता; तो उसे कितना आनन्द होता? पडौसी के बच्चे उन्हे श्याम के रूप मे क्यो नही जान पड़ते? अमुक आकार और अमुक रग का, अमुक नाम वाला विशिष्ट नामरूपात्मक मिट्टी का एक लौदा ही उन्हे अपना क्यों जान पडा?

किन्तु यह महान् और व्यापक दृष्टि एकदम ही प्राप्त नही हो जाती। मनुष्य धीरे-धीरे ही बढता और आसक्तिमय जीवन से निरासक्त जीवन की ओर मुड़ता जाता है। मेरे माता-पिता मुझे अपरिमित प्रेम-रस का पान कराते थे; इसी लिए आज मै उसका कुछ अश दूसरों को भेट कर सकता हूं। उस समय मेरे अत करण में प्रेम के बीज बोये जा रहे थे, उन्हीमें से आज यह अकुर निकल रहा है। मेरे अनजाने में और स्वत. भी अज्ञात-भाव से वे भोले माता-पिता मेरे जीवन मे, मेरी हृदय-वाटिका मे कोमल और

प्रेममयी भावना के बीज बो रहे थे, उसके पौधे लगा रहे थे। इसी लिए आज मेरे जीवन मे थोडा-सा आनन्द दिखाई दे रहा है, कुछ सुगन्ध मिल रही है। वह उजाड या रुक्ष अथवा बीभत्स नही है।

मुझे यही चिंता हो रही थी कि पिताजी को देखकर लडके मेरी हँसी उड़ावेगे और कहेगे "क्योरे, क्या वही तेरे पिता थे? अहा! कैसी विचित्र पगडी बाँधे हुए थे, और कैसा उनका कोट था!" किन्तु पिताजी के हृदय की ओर मै बिल्कुल ही नही देख रहा था। मुझे तो अपनी ही चिन्ता थी। अपनी ही प्रतिष्ठा की रक्षा का मै विचार कर रहा था। हम सब आज कल 'अहवेद' हो रहे है। न हम द्विवेदी है न त्रिवेदी और न चतुर्वेदी। हम सब तो केवल एकवेदी हो रहे है और उस वेद का नाम है 'अह'। निरंतर हम अपना ही विचार करते रहते है। अपने सम्मान, अपनी प्रतिष्ठा, अपने सुख और अपनी महत्ता, अपनी इज्जत और जो कुछ भी चिता है वह सब अपनी ही। इसी कारण आज हम बडे नही बन सकते है। भला, जो अपने आपको नही भूल सकता, वह दूसरो से क्या प्रेम करेगा?

पिताजी ने कहा "श्याम, तेरी माता ने यह 'चीका' तेरे लिए भेजा है; और इसी लिए मै खुद इसे ले कर आया हूं। सो तू अपने मित्रो के साथ इसे खाकर बर्तन मुझे वापस दे दे। यो कह कर वह छोटी-सी पतीली उन्होने मेरे सिपुर्द कर दी। दूसरे लडके मेरी ओर देखते हुए खिल-खिला कर हँस रहे थे। इससे मै बहुत लज्जित हुआ। इतने ही मे पिताजी फिर बोल उठे "श्याम! इस तरह बैठा हुआ देख क्या रहा है? झटपट समाप्त कर डाल! इसमे शर्माने को क्या हुआ? आओ, लड़को! तुम-भी लो! श्याम को अकेले खाते हुए शर्म लगती होगी! और अकेले को खाना भी तो नही चाहिए। चार मित्रो को दे कर ही खाना उचित है।" तब तक दूसरे सब लडके चल दिये थे; केवल मेरे मित्र ही वहा ठहरे थे। उनमे से एक ढीठ लडका आगे बढा और उसने बर्तन पर बँधा हुआ कपड़ा खोलकर कहा "आओ श्याम, आओ मित्रो, हम सब मिलकर अभी इसे समाप्त कर देते है। यो कहकर हम सब उस पर टूट पडे। पिताजी वृक्ष की छाया में एक ओर लेटकर सुस्ताने लगे। उन्होने वह चीका नही लिया।

हम उन्हे देते रहे; किन्तु उन्होने कहा "तुम्ही खाओ। लड़को के खाने मे ही आनद और मजा है।"

हमने थोडी ही देर मे उसे खाकर समाप्त कर दिया। वहुत ही स्वादिष्ट वना था वह। उधर थक जाने के कारण पिताजी को नीद लग गई, इतने ही में घंटी वजी और पिताजी जग पड़े। उन्होने पूछा "क्यो श्याम, खा चुके? लाओ वह वर्तन, मैं जाते हुए नदी पर साफ कर लूगा।" हमने वह वर्तन वैसा ही उन्हे दे दिया, और तत्काल पिताजी जाने के लिए उठ खडे हुए। जाते-जाते उन्होने कहा "श्याम, अच्छी तरह पाठ याद करना और स्वास्थ्य को सम्हाले रहना। गाय का नया वच्चा अच्छा है।" इसके वाद वे उधर चले गये और हम स्कूल मे।

मुझे अपनी दशा पर शर्म आ रही थी कि ऐसे प्रेमी माता-पिता का मैं कैसा कृतघ्न लडका हूँ। मैं मन ही मन यही तो सोच रहा था। घटना तो हो चुकी; किन्तु अंत करण मे वही वारवार खटक रही थी। केवल चीके जैसी साधारण-सी वस्तु लेकर छह कोस पैदल आने और उसका एक कण भी स्वत न खाते हुए वापस छह कोस जाने वाले प्रेमी पिता एवं उन्हे भेजनेवाली मेरी प्रेममयी माता, दोनो के अनन्त शुद्ध प्रेम-रूपी ऋण से मैं कैसे मुक्त हो सकूगा? यदि मै अपने सैकडो, भाई-वहनो के साथ इसी प्रकार निरपेक्ष प्रेम कर सका, तो भले ही उससे कुछ उऋण हो सकता हू, अन्यथा नही।

---

२९ "सांव सदाशिव जल बर्सो"

इस वर्ष पहले तो अच्छी वर्षा हो गई, किन्तु वाद मे पानी वरसना बिलकुल वन्द हो गया। खेतो मे अनाज अच्छी तरह जम चुका था; किन्तु पीछे से धूप के कारण जमीन सूख गई। गड्ढ़ो और नालो का पानी भी सूख गया और बीड़ का घास भी सूखने लगा। लोगो को चिन्ता हो चली। किसान लोग आशाभरी द्रष्टि से आकाश की ओर

देखने लगे। वे इस बात के लिए उत्सुक हो रहे थे कि कही कोई काला बादल तो नही दिखाई दे रहा है? वर्पा कृषि का—किंबहुना ससार का मुख्य आधार है। वर्षा के ही कारण ससार चल रहा है। यदि वर्षा न हो तो कुछ न हो। जीवन के लिए जल की आवश्यकता है, इसी कारण जल को जीवन कहा गया है। मुझे कभी-कभी सस्कृत भाषा की महत्ता का विशेष रूप से भान होता है। उस मे पृथ्वी, जल आदि के लिए जो शब्द रखे गये है, वे कितने काव्यमय है? पृथ्वी के लिए 'क्षमा' शब्द की जिसने योजना की; वह कितना महान् कवि होना चाहिए! इसी प्रकार जल के लिए जिसने 'जीवन' शब्द की योजना की, उस का हृदय भी कितना विशाल होना चाहिए! जल के लिए और भी कई मृदु और मधुर नामो की सस्कृत भापा मे योजना की गई है। जिन पूर्वजो ने उसे अमृत, पय, जीवन आदि सुन्दर नामो से अभिहित किया, उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। यदि जल को अमृत न कहा जाय तो फिर अमृत और क्या हो सकता है? कुम्हिलाये हुए पौधे या फूल पर थोडासा पानी छीटते ही एकदम उसमे जीवन-कला, प्रफुल्लता दिखाई देने लगती है! सूखे हुए घास पर थोड़ासा पानी छीटते ही वह एकदम ताजा हो जाता है। इस प्रकार मरते हुए को जीवन देने वाला एक मात्र जल ही हो सकता है। थोडा-सा पानी पीते ही तत्काल थकावट दूर हो जाती है। चैतन्य आ जाता है। जल को वैदिक ऋषियो ने माता के नाम से भी सबोधन किया है। माता बच्चे को दूध पिलाती है, किन्तु दूध से भी पानी का दर्जा बड़ा है। पानी की हमेशा जरूरत रहती है। जल-रूपी रस की तो जन्म से ले कर मृत्युपर्यंत आवश्यकता रहती है। इसी लिए उन ऋषियो ने जल को प्रेम-मयी माता के समान बताया है। पानी मे जो जीवनी-शक्ति है, वह अन्य किस वस्तु मे हो सकती है? जल की महिमा का यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है? उसमे भी फिर वह निरुपाधि है! उसका कोई रग नही, आकार नही और न उसमे कोई गध ही है। उसमे जो रग मिलाया जाय अथवा जैसी सुगन्ध डाली जाय, वैसा ही वह बन जाता है। इस प्रकार जल मानो प्रत्यक्ष परमेश्वर का ही एक रूप है।

हा, तो उस वर्ष पानी न बरसने से खेती सूखने लगी। जब अवर्षण

(सूखे) के चिन्ह दिखाई देने लगे, तो इस संकट को टालने और वर्षा होने के लिए अपने गाँव के शिवजी को जल मे डुबो देने विषयक प्राचीन प्रथा से काम लेने की बात सोची गई। इस कार्य मे शिवजी की पिण्डी को जल मे डुबो देने के लिए मदिर का समग्र भीतरी भाग जल से भर दिया जाता है। ब्राह्मण लोग रुद्रपाठ करते है और कुछ व्यक्ति हाडे भर-भर कर पानी लाकर मदिर मे डालते रहते है। सात दिनो तक अहो-रात्र यह अभिषेक होता है। यदि सात दिन से भी काम नही चला, तो फिर वर्षा होने तक गाँव भर के ब्राह्मण पारी-पारी से रुद्राभिषेक करते है। जिन-जिन को रुद्र-पाठ करना आता है, उनकी सूची बनाकर समय बाँध दिया जाता है। इसी प्रकार पानी भरने की पारी भी निश्चित कर दी जाती है। उस दिन शिवालय मे बडी भीड़ हो रही थी। रुद्र का गभीर स्वर सुनाई दे रहा था। वैसे भी रुद्रसूक्त अत्यत गभीर, तेजस्वी और उदात्त है। उस कवि-ऋषि के सम्मुख सारा ब्रह्माण्ड विद्यमान प्रतीत होता है। साथ ही यह भी जान पडता है कि सारी सृष्टि उसके नेत्रो के सामने से सपाटे के साथ चली जा रही है। सृष्टि के समस्त मनुष्यो की आवश्यकताएँ उसके सामने उपस्थित है। वह मानो विश्व के साथ एकरूप होता-सा जान पडता है। मेरे पिता भी रुद्रपाठ जानते थे, अतएव उनकी पारी रात को बारह बजे बाद की रखी गई थी।

माता ने मुझसे कहा "अरे, तू मंदिर में जाकर पानी भरने का ही काम क्यो नही करता? जा वहाँ!"

इस पर मैंने उत्तर दिया, "परतु मुझ से वे बडे-बड़े हाडे क्यो कर उठ सकेंगे?"

यह सुन माता ने कहा "तो तू घर से यह छोटी कलसी क्यो नही ले जाता? यह भी नही तो लोटा ले जाने से भी काम चल सकेगा। बावली में से एक-एक लोटा जलभर कर लाना और महादेवजी पर चढ़ा देना। गणपति की बावली मे उतरना भी सरल है। सीधी सीढियां बनी हुई है। जा, वह लोटा ले जा।"

मैंने कहा "इतना-सा लोटा लेकर क्या जाऊं! तू तो कह देगी कि वह सुराही या पचपात्र ही लेजा। परतु लोग तो मेरी हँसी करेगे नँ?"

इस प्रकार मैंने नाराजगी प्रकट की ।

किन्तु माता ने फिर भी यही कहा कि "श्याम ! इससे तो कोई भी तेरी हँसी नही करेगा; किन्तु यदि तू बडा कलसा उठाने लगा तो अवश्य लोग तेरे कार्य पर हँसेगे । अपनी शक्ति से बाहर का काम करना भी बुरा है; और जितना हम कर सकते है उतना भी न करके आलसी की तरह बैठना भी बुरा है । यह सारे गाँव का काम है । तुझे रुद्रपाठ करना नही आता, तो केवल जल ही चढ़ा । इस काम मे तेरा भाग तुझे पूर्ण करना चाहिए। प्रत्येक को इसमे यथा-शक्ति हाथ बँटाना ही चाहिए । काम से मुँह छिपाना बुरा है । गोवर्धन पर्वत को जब भगवान कृष्ण ने उठाया; तो प्रत्येक ग्वाल-बाल ने उसके नीचे अपनी अपनी लठियो का सहारा दिया था । क्या उन सबकी शक्ति बराबर थी ? फिर तो तू व्यर्थ ही इतने पोथी-पत्रे पढ़ता है । इस प्रकार कोरे पढने से क्या लाभ ? सारी बुद्धि गोबर मे मिल जायगी । वह समुद्र का पुल बनाने की बात क्या तू भूल गया ? उसके लिए जब हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि सभी बडे-बडे बानर पर्वत उठा उठाकर ला रहे थे, तब एक छोटीसी गिलहरी की भी इच्छा हुई कि समुद्र का पुल बनाने मे मैं भी भगवान रामचंद्र की कुछ सहायता करू ! क्योकि यह बड़ा पवित्र कार्य है । रावण का विनाश सारे ससार के हित के लिए आवश्यक है । इस लिए समग्र संसार की ओर से उस काम मे सहायता देना आवश्यक था । यही सोच कर वह छोटी गिलहरी समुद्र की रेत मे लोटने लगी, और इस तरह उसके शरीर अथवा रोमावली मे बालू के जो कण लग जाते उन्हे ले जाकर वह सेतु के निकट बदन झाड़कर गिरा देती। इस प्रकार उसमे जितनी शक्ति थी उतना वह काम कर रही थी । ठीक उसी तरह तुझे भी यदि मोटा हाडा न उठाया जा सके तो कलसी लेकर जाना चाहिए; और उससे यदि थक जाय तो लोटा भर-भर कर पानी लाना चाहिए । और वह भी न उठ सके तो ग्लास भर-भर कर शंकर पर जल चढ़ाना चाहिए । जा बेटा, तुझे कहां तक समझाती रहू !" इस प्रकार माता ने बडे प्रेम से मुझे उत्साहित किया ।

अंत को मै उठ खड़ा हुआ और छोटी-सी कलसी उठाकर मदिर में गया । वहां कई लड़के पानी भर-भर कर ला रहे थे और भगवान् शकर को

जल मे मूद रहे थे। बाहर मंडप मे रुद्राभिषेक के मत्र पढे जा रहे थे। लगातार पानी के हाडे उँडेले जा रहे थे। बडा गंभीर दृश्य था। मुझ से भी छोटे-छोटे लड़के पानी भर कर ला रहे थे। मैं भी उनमें मिल गया। प्रथमत: मुझे शर्म-सी लगने लगी। इस पर एक भट्टजी ने मुझ से कहा "क्यों श्याम, क्या तू आज ही आया है। अग्रेजी पढता है, इस लिए तुझे शर्म लगती होगी, क्यो ? किन्तु मैंने कोई उत्तर नही दिया। छोटे-छोटे लड़के पानी भर कर लाते हुए मत्र-पाठ करते जाते थे। किन्तु वह कोई वेदमंत्र नही था। सस्कृत नही, भाषा का ही मत्र था।

हे शिव, शंभो वर्षा कर! वर दे, हमको हर्षा कर।
खेती-बारी खूब पके। पैसे का दो सेर बिके॥ *

यही उन का मंत्र था। अच्छी वर्षा हो, खेती-बारी मे अच्छा और यथेष्ट अन्न उत्पन्न हो। खूब सस्ताई हो, यही बात वे लडके शिवजी से माँग रहे थे। मुझे प्रथमत. लज्जा प्रतीत होने लगी। उधर संस्कृत मे रुद्रपाठ नही आता था, इधर यह बालमत्र बोलने भी शर्म लगती थी। किन्तु उन लड़को के उत्साह के कारण मेरी लज्जा दूर हो गई। मै भी जोरजोर से उनके स्वर मे स्वर मिलाकर गाने लगा। इतना ही नही उनके साथ मिलकर नाचने भी लगा।

इस प्रकार सामुदायिक कार्य मे हमसे जो कुछ हो सके, वह काम अवश्य करना चाहिए। इसमे शर्म किस बात की? चीटी को चीटी के समान काम करना चाहिए और हाथी को हाथी के समान।

---

* सांव सदाशिव पाउस दे। शेतेभाते पिकूं दे। पैशानें पायली विकूं दे।

३० बड़ा बनने के लिए चोरी

हमारे गाँव से कुछ दूर 'लाटवण' नामक फड़के इनामदार का गाँव है। वहा उनके वशज आज भी रहते हैं। हरिपत फड़के सरदार एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए है, उन्ही के वशज ये लोग है। मेरे पिता के साथ उनका वड़ा घरोपा था। लाटवण के वलवतराव फडके हमेशा पिताजी के पास आते-जाते रहते थे। हम लडको के साथ भी वे वडे प्रेम से गप्पें लडाया करते थे। उन्हे अहकार जरा भी न था। अत्यत सीधे और भोले सज्जन थे। मै जव वात ही वात मे उनकी उगली मे से अगूठी निकालकर छिपा देता; तव वे कहने लगते "श्याम! क्या तुझे अगूठी चाहिए, और उनके इतना पूछने पर मै उस अगूठी को अपनी उंगलियो मे पहनने लगता था। किन्तु वह मेरी एक भी उगली मे न वैठती और ढीली होने से गिर जाती! तव वे हँसकर कहते 'अरे, पहले तू कुछ मोटा-तगड़ा हो, तव वह तेरी उगली मे आ सकेगी।'

उन दिनो मै दापोली से घर आया था, और वलवंतरावजी एव अन्य कोई मेहमान भी हमारे घर पर ठहरे हुए थे। दापोली मे मुझे पुस्तकादि पढने का शौक लग गया था; किन्तु वहा अच्छी पुस्तके पढने के लिए नही मिलती थी। दाभोळकर-मडली की पुस्तके मै पढा करता, परन्तु वे मेरी समझ मे नही आती थी। स्पेन्सर का जो चरित्र मैने पढ़ा था, उसका कुछ अग मुझे आज भी स्मरण है। उन्ही दिनो श्रीयुत भास्कर विष्णु फड़के 'रामतीर्थ-ग्रथावली' खडश: प्रकाशित करने लगे थे। मुझ पर श्री. फड़के के लेखो का वहुत प्रभाव पडा है। उनकी तेजस्वी, सोज्ज्वल और आवेश-युक्त मराठी भाषा मेरे हृदय को गुद्गुदा देती थी। रामतीर्थ के ग्रथ मानो मैने कठस्थ से कर लिए थे। किन्तु उस समय मुझे सव भाग मिल नही सके थे। वाद में अपने किसी रिश्तेदार के घर एक दिन मुझे उसका एक भाग देखने को मिला और वह मुझे वहुत पसद आया। किन्तु उन महाशय ने वह ग्रथ मेरे हाथ मे से छीनते हुए कहा "अरे, तू इस मे क्या समझ सकता है?" मुझे इस पर वहुत वुरा लगा।

कदाचित् उनकी अपेक्षा मैं ही उसे अच्छी तरह समझ सकता था; क्योंकि मैं सहृदय था, कवि-हृदय था। माता-पिता ने मेरी मनोभूमिका तैयार की थी। मराठी के पोथी-पुराणादि पढकर मेरा अत करण प्रेम-मय, भक्तिपूर्ण एवं श्रद्धा और भावनायुक्त हो गया था। मैंने सोचा, किसी प्रकार यह ग्रथ खरीद लिया जाय! किन्तु पैसे कहा से आवे? अपने कोर्स की ही पूरी पुस्तके मेरे पास नही थी। अगरेजी पढ रहा था, किन्तु एक भी कोष-ग्रंथ मेरे पास नही था। अदाज से ही मैं शब्दो के अर्थ निकाल लेता था। फिर भी मुझे यही प्रतीत हुआ कि रामतीर्थ के सब ग्रथ अपने पास होने चाहिए।

हमारे यहा आये हुए मेहमान के जेब मे खूब पैसे थे। नोटों की एक गड्डी-सी थी, इस लिए उसमे से केवल एक नोट निकाल लेने की बात मैंने सोची। यद्यपि दूसरे के रुपये-पैसे चुराना पाप था, किन्तु वह पाप कर के भी मैंने उत्तम पुस्तक पढने का पुण्य कमाने की बात सोची!

इसके बाद मैंने चुपके से एक नोट निकाल लिया। रात को जब वे महाशय अपने रुपये-पैसे-नोट गिन रहे थे, तब मैं अपने छोटे भाई को श्लोक सिखा रहा था —

आश, ये मुझे, हे प्रभो सदा।
दे दयानिधे, बुद्धि तू भली॥*

अर्थात् उसे तो अच्छी बुद्धि माँगने के लिए श्लोक सिखा रहा था, और स्वयं चोरी किये हुए बैठा था। मेरे पिता और वे मेहमान दोनो ही पास-पास बैठे हुए थे। उन्होने बारम्बार नोट गिने, किन्तु पाच रुपये का एक नोट कम था!

उन्होंने पिताजी से कहा "भाऊराव पाच रुपये कम पडते हैं; एक नोट नही मिलता।"

इस पर पिताजी ने कहा "अच्छी तरह जेबो को टटोल लिया है? किसी को दिया तो नही; याद कर लीजिये।" इधर उक्त बातचीत को सुन मेरा श्लोक सिखाना बन्द हो गया।

---

* आस ही तुझी फार लागली। दे दयानिधे बुद्धि चांगली॥

चोर को भला कहा शाति (चैन) मिल सकती है? घर मे माता भोजन कर रही थी, अतएव मै उसके पास जाकर इधर-उधर की वाते करने लगा।

"माँ, तेरे लिए इतने से भात से क्या होगा? क्या आज वचा नही?" इस प्रकार मैने प्रेम से पूछा। इसपर उसने कहा "अरे वेटा, मुझे भूख ही कहा है? जैसे-तैसे चार ग्रास पेट मे डाल लेती हूं। क्योकि घर का सारा कामकाज भी तो होना चाहिए? पेट मे पानी पीने के लिए कुछ आधार चाहिए नँ! अव तो सव का ध्यान इसी ओर लगा है कि तुम कव झटपट वड़े होते हो!"

मैने कहा "हा, माता! मै सचमुच ही वडा वनूगा और खूव पढूगा और ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करूगा।"

"अवश्य पढ लिख कर सुशिक्षित हो और अच्छे विदान् वनो। क्योकि वहुत पढे-लिखे लोग प्राय विगड जाते है, इस लिए भय लगता है। सो, वहुत पढ-लिख न सको और वहुत वडे न भी वन सको, तो भी स्वभाव से अच्छे रहो। मेरे वच्चे वडे न हो तो हानि नही, परन्तु गुणवान होने चाहिए। यही मै परमात्मा से प्रार्थना करती रहती हू।" इस प्रकार माता ने मुझे उपदेश किया। वह प्रेममयी, उदार माता कितनी मधुर वाणी मे शिक्षा दे रही थी? मुझे रह रह-कर इसी वात पर आश्चर्य होता था कि उस अशिक्षिता माता के हृदय मे इस प्रकार के अच्छे विचार कहां से उत्पन्न होते है! हज़रत मुहम्मद साहव से अरव के लोग कहा करते कि "यदि तुम ईश्वर के पैगम्बर हो तो कोई चमत्कार दिखाओ!" इस पर वे यही उत्तर देते थे कि "जव सारा ससार ही चमत्कार-मय है, तव मै और नया चमत्कार किस लिये दिखलाऊं? समुद्र पर जव तुम्हारी नावे हवा के द्वारा चलती है; तो क्या यह चमत्कार नही है? उस अथाह और विशाल समुद्र के वक्षःस्थल पर वे निर्भय हो कर फूल की तरह नाचती है, इधर-उधर डौलती है, यह क्या चमत्कार नही है? जंगल मे गये हुए मूक (गूगे) पशु स्वयं तुम्हारे घर प्रेम-सहित वापस आजाते है, यह क्या चमत्कार नही है? रेतीले मैदान मे जल-रूपी अमृत के सरोवर दिखाई देना क्या चमत्कार नही है; और उसी रेगिस्ता मे खजूर के मधुर फल-युक्त वृक्ष उत्पन्न होते दिखाई देना क्या

-चमत्कार नही है ?" इस प्रकार उदाहरण देते हुए अन्त मे वे कहते हैं कि -"मुझ जैसे जगली के मुख से खुदा कुरान-शरीफ का उच्चारण कराता है, -यह क्या चमत्कार नही है ?" मित्रो, इसी प्रकार वह परमेश्वर मेरी -माता के मुख से भी कुरान का उच्चारण करा रहा था। कुरान का अर्थ है (हृदय) निचोड कर निकले हुए उद्‌गार। माता मुझ से ये शब्द वडी हार्दिक भावना से कहती थी। उसके शब्द हृदय निचोड़ कर निकले हुए होते थे। हृदय-गुहा-मदिर मे विराजित जो पवित्र शंकर की -पिण्डी (आत्मा) है, उसी की वह ध्वनि होती थी। उसके वचन ही मेरे लिए श्रुति-स्मृति थे।

"वड़ा न भी वन सके तो भी गुणवान अवश्य वनना।" कितने उदार शब्द है। उस समय इन शब्दों को सुनते हुए मेरे हृदय मे विच्छू-से डंक मार रहे थे; मुझे साँप-से डस रहे थे। मित्रो! इंग्लैण्ड मे ट्यूडर नाम -के राजा हुए, उनके शासन-काल में खुफिया पुलिस का बड़ा दौर-दौरा -था। एक इतिहासकार ने उस समय की स्थिति का वर्णन किया है कि "उस समय प्रत्येक तकिये के नीचे विच्छू होता था।" अर्थात् कहीं भी निश्चिन्त-भाव से सिर टिकाने के लिए जगह नहीं थी। ठीक उसी तरह हमारे हृदय-साम्राज्य मे भी अनेक विच्छू है, जो हमें सुख से सोने नही देते! वे बरावर हमारे पीछे लगे ही रहते है। भले ही हम पाताल मे चले जायँ, यहा तक कि मर भी जायँ तो भी ये गुप्त-दूत पीछे पड़े ही रहते है। भले-वुरे के ज्ञान की सुई हमेशा चुभती ही रहती है।

हां, तो उन सज्जन की वात सुन कर पिताजी ने कहा "घर मे भी कोई नही आया, यह तो चमत्कार ही समझना चाहिए।" इसपर वलवन्तराव वोले "श्याम आदि से पूछो कि घर मे कोई वाहर का लड़का तो नही आया था? आज-कल के लड़के वहुत खराव होते है। आज-कल कई लड़कों को वुरी आदते लग जाती है। उन्हे वचपन से ही पान या विड़ी-तम्बाकू -खाने-पीने की आदत पड जाती है। इस लिए जरा श्याम को वुला कर पूछा तो जाय! श्याम! अरे ओ श्याम! जरा यहा तो आना!"

आवाज सुन कर मैं उनके पास जा खड़ा हुआ; और पूछने लगा "क्या -कहते हो?"

इस पर वलवन्तराव ने पूछा " तेरा कोई मित्रादि यहा आया था ? एक नोट गुम हो गया है।"

मैने कहा " नही साहव ! मै खुद ही आज वाहर खेलने चला गया था। सायंकाल को आया हूं। यहा दूसरा कोई नही आया ! "

यह सुन पिताजी वोले " श्याम ! तूने तो नही लिया है वह नोट ! यदि लिया हो तो कह दे !"

इस पर वलवन्तराव बोले " छि: यह कैसे लेगा; और क्यो लेगा ?"

इतने मे माता भी हाथ धोकर वहा आ पहुँची। उसे भी यह सारा किस्सा मालूम हुआ ! पिताजी के हृदय मे वडी वेदना हो रही थी। उनके घर मे से नोट गायव हो जाना यथार्थ मे अत्यन्त लज्जा का विषय था। इस लिए उन्होने फिर पूछा " श्याम ! क्या सचमुच ही तूने वह नोट नहीं लिया ? कपास-वक्स आदि के लिये लिया हो तो कह दे। तू उस दिन इसी के लिए पैसे माँग भी रहा था !"

इस पर माता ने कहा " नही जी, श्याम कभी ऐसा नही कर सकता। यह नाराज हो जाय या रूठ भले ही जाय, किन्तु किसी की वस्तु को भूल कर भी हाथ नही लगाता ! यह वात इसमे वहुत अच्छी है। इतने पर भी यदि कभी कुछ कर लेता है, तो उसे स्वीकार करने मे भी संकोच नही करता। यह किसी वात को छिपाता नही। उस दिन एक वर्फी घर मे से ले ली थी, किन्तु पूछने पर तत्काल उस वात को स्वीकार कर लिया और वतला दिया कि " हा, मैने ली है। " श्याम कभी इनका नोट नही ले सकता; और यदि लिया होगा तो अभी स्वीकार कर लेगा ! क्यो श्याम ! तूने तो नही न हाथ लगाया उनके जेव को ?"

अहा ! माता का मुझ पर कितना दृढ विश्वास ! 'प्रथम तो यह लेगा ही नही और ले भी लिया तो स्वीकार कर लेगा।' उसकी मुझ पर कैसी अटल श्रद्धा ! तव क्या मै माता के साथ विश्वासघात करूं ? सन्त तुकाराम ने एक अभग में कहा है :—" विश्वासीची धन्य जाति " अर्थात् जिस पर विश्वास किया जा सकता है, उसकी जाति धन्य है, वे लोग धन्य है। मेरे असत्य का किला ढह चला। माता के सरल किन्तु श्रद्धामय शब्दो ने उस भित्ति-हीन दुर्ग को गिराकर भूमिसात् कर दिया।

मेरी आँखो मे पानी आ गया। उन दुर्बल अश्रुओ के प्रवाह मे पाप-रूपी पर्वत वह गया। यह देख माता ने कहा "श्याम, रोता क्यो है? मैंने यह थोड़े ही कहा कि तूने नोट लिया है! तू कभी नहीं ले सकता। मैं अच्छी तरह जानती हू! मैंने तो योही पूछा था।"

किन्तु माता के इन विश्वास-युक्त शब्दों ने मुझे और भी अधिक द्रवित कर दिया। मैं एकदम उसके पास गया और करुण-भाव से रोते हुए मैंने कहा "माँ! तेरे इस चोर श्याम ने ही वह नोट लिया है। ले यह है वह नोट! माँ...!"

मुझ से अधिक न बोला जा सका। माता को भी बहुत बुरा लगा। उसने कितने अटल विश्वास के साथ कहा था कि 'मेरा श्याम कभी किसी की वस्तु को हाथ नही लगाता!' मेरे लिए उसके हृदय में जो अहंकार या अभिमान था, वह दूर हो गया। किन्तु सर्वथा ही नहीं चला गया। ईश्वर ने उसकी लज्जा रख ली। क्योकि उसने कहा था 'यह कभी लेगा नहीं; और भूल से ले भी लिया तो स्वीकार कर लेगा!' इस प्रकार जो भी उसका पुत्र कसौटी पर पूरा तो नही उतारा, किन्तु आधा तो खरा सिद्ध हुआ ही।

अपराध स्वीकार कर लेने पर माता ने मुझे समझाते हुए कहा "श्याम! अब फिर कभी किसी की वस्तु को हाथ न लगाना। यही तेरा पहला और अन्तिम अपराध होना चाहिए। तूने स्वीकार कर लिया, यह बड़ा अच्छा किया! जा, आगे ऐसी भूल मत करना!"

बलवन्तराव को मेरी इस बात पर बड़ा आश्चर्य और आनंद हुआ। उन्होंने प्रसन्नता से मुझे एक रुपया दिया। किन्तु वह भी मैंने तत्काल माता के हाथ पर रख दिया।

इसके बाद माता ने पूछा "श्याम! तूने वह नोट क्यों चुराया था?"

मैंने कहा "माँ, बड़ा आदमी बनने, पुस्तकें पढ़कर बड़ा बनने के लिए"।

"अरे, किन्तु पहली ही पुस्तक मे तूने पढा था न कि 'चोरी कभी नहीं करना चाहिए!' जब इस बात को पढ़कर भी शिक्षा नहीं ग्रहण की; तो फिर आगे दूसरी पुस्तकों की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती

है ?" यद्यपि माता ने ये शब्द अत्यंत सामान्य भाव से कहे थ; किन्तु उनमे बडा मर्म भरा हुआ था !

बन्धुओ ! पतंजली के महाभाष्य मे ऐसा एक वाक्य बतलाते है कि "एक. शब्द. सम्यक् ज्ञात: स्वर्गे लोके कामधुग्भवति"। अर्थात् एक ही शब्द का यदि मनुष्य को भली-भाति ज्ञान हो जाय, तो उसकी मोक्ष हो सकती है; किन्तु वह 'सम्यक् ज्ञात' अच्छी तरह समझा हुआ होना चाहिए। केवल तोते की तरह पढ़ा या रटा हुआ नही। क्योकि जो बात अच्छी तरह समझ मे आ जाती है, उसे हम व्यवहार मे लाते है, आचरण मे लाते है। जैसे छोटा बच्चा लेम्प या लालटैन को हाथ से पकडना चाहता है, किन्तु उसका काँच गर्म होता है, अतएव माता बच्चे को दूर हटा देती है। किन्तु वह फिर उसी के पास जाता है। तब अन्त मे माता उससे कहती है 'अच्छा, लगा हाथ।' इस पर जब वह बच्चा हाथ लगाता है तो हाथ जल जाता है, फिर वह भूल कर भी उसको हाथ नही लगाता। उसका ज्ञान पक्का हो जाता है। महात्मा तुकाराम ने इसी लिए ज्ञान को सद्गुण कहा है। संस्कृत मे भी परम-ज्ञान की अनुभूति का अर्थ है अनुभव। हम जीवन मे जो कुछ अनुभव करते हैं उसी का नाम ज्ञान है।

"चोरी कभी न करनी चाहिए" यह वाक्य मै पहली पुस्तक मे ही पढ चुका था, किन्तु इसे गुना-सीखा नही था। सत्य, दया, प्रेम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आदि छोटे-छोटे शब्द है। हम तत्काल ही इनका उच्चारण कर डालते है; किन्तु इनकी अनुभूति होने के लिए सैकडो जन्म भी पर्याप्त नही हो सकते!"

---

३१ तू आयु में बड़ा नहीं...मन से

मई महिने की छुट्टी समाप्त हो जाने पर मै फिर दापोली चला गया। स्कूल खुल चुका था। वर्षा आरभ हुई और तप्त-भूमि को मेघ शात करने लगे। तपी हुई भूमि पर पानी गिरने से सुगन्ध निकलती

है। वर्षा आरभ होते ही मिट्टी मे से एक मधुर सुगन्ध छूटने लगती है। उसी समय 'गधवती पृथ्वी' की यथार्थता का अनुभव होता है। फूल और फल मे जो रस, गध और एक खास प्रकार का स्वाद होता है, वह सब इस पृथ्वी माता का ही दिया हुआ हार्दिक प्रसाद होता है।

घर से दापोली आते समय मै इस बार एक बात का निश्चय कर के आया था। अर्थात् छुट्टियो मे घर रहते समय एक दिन छोटा भाई नये कुर्ते के लिए हठ धारण कर बैठा था। उस समय उसे समझाते हुए माता ने कहा था "तेरे भाई बड़े होगे और जब नौकरी-धंधा करेगे, तब तेरे लिए छह-छह महिने मे नये-नये कुर्ते सिलवा दिया करेगे; अभी से हठ कर बैठना अच्छा नही।" मित्रो! मेरे बचपन मे आजकल की तरह कपड़ो का तूफान खडा नही हो पाया था। मै खुद कई दिनो तक कोट का नाम भी नही जानता था। कुर्ता भी वर्ष दो वर्ष मे एक बार नया मिल पाता था। ठण्ड के दिनो मे हम धोती की चौतही करके गले मे बाँध लेते और पाठ-शाला मे चले जाते थे। उस समय न तो मफ्लर थे और न जाकिट, तब फिर चेस्टर और गर्म ओव्हर-कोट तो होते ही कहा से? किन्तु अब तो शहरो मे ही नही छोटे-छोटे गाँवों मे भी मनुष्य के लिए अनेक प्रकार के कपड़ो की आवश्यकता होने लगी है। हवा और रोशनी (प्रकाश) का शरीर से जितना अधिक स्पर्श हो, उतना ही वह लाभप्रद होता है। क्योकि वायु और प्रकाश के रूप मे प्रत्यक्ष परमेश्वर ही; मानो हमारे शरीर को स्वच्छ और निरोग करने के लिए स्पर्श करता है। किन्तु हम ऐसे अभागे है कि उस सृष्टि-देवी, प्रकृति-माता का पवित्र हाथ ही अपने शरीर से नहीं लगने देते। परिणाम-स्वरूप हमे अनेक प्रकार की व्याधियो मे फँस जाना पडता है। एक रशियन डाक्टर का कथन ह कि "ससार के अधिकाश रोग निरर्थक कपडो से उत्पन्न होते है।" रूस मे यदि अधिक ठण्ड (सर्दी) न हो, तो लडके केवल लंगोट बाँधकर ही स्कूल मे जाते है। कपड़े कम उपयोग मे लाने की नई रीति रशिया निर्माण कर रहा है। अर्थात् विचार की आँखो से रशिया जीवन पर द्रष्टि डालने और तदनुसार चलने का भी प्रयत्न कर रहा है।

मेरे छोटे भाई का कुर्ता फट गया था और माता ने उसमे दो-तीन

जगह पेबन्द भी लगा दिये थे; किन्तु फिर भी मैंने इस बार यही निश्चय किया कि छोटे भाई के लिए अवश्य नया कुर्ता बनवाकर ले जाऊगा। पर इसके लिए पैसे कहा से आवेगे, यही सबसे बडी चिंता थी।

मेरे पिता कोर्ट-कचहरी के काम से बारम्बार दापोली आते रहते थे। दरिद्रता बढती जाने पर भी कज्जे-दलाली पीछा नही छोड़ रही थी। यह भी एक प्रकार का व्यसन ही होता है। कई लोगो को कोर्ट-कचहरी के बिना चैन ही नही पडती। अपने मामले खत्म हो जाने पर वे दूसरो के झगडे-मामले लडने के लिए अपने सिर ले लेते है। वे लोग प्राय इस शर्त पर मुकदमे लडने का ठेका ले लेते है कि "यदि मामला जीत गये तो उसमे से अमुक रकम हम लेगे, और यदि हार गये तो जो कुछ खर्च लगेगा वह हमारा।" ऐसे कई व्यक्ति मैंने देखे है।

हा, तो पिताजी जब-जब दापोली आते; तब मुझे आने दो आने मिठाई के लिए दे जाते थे। अतएव उन पैसो मे से एक पाई भी मैंने खर्च न करने का निश्चय कर लिया। ज्येष्ठ मास मे हमारा स्कूल खुला था और गणेश-चतुर्थी (भाद्रपद शु ४) को अभी तीन महिने बाकी थे। इस अवधि मे मेरे पास मिठाई के पैसे एक रुपये के लगभग जमा हो सकते थे। इस लिए मैंने उस रुपये से भाई के लिए नया 'कोट या कुर्ता बनवाकर ले जाने का निश्चय कर लिया।

अब मेरी द्रष्टि अपने ध्येय पर जमी हुई थी। प्रतिदिन पैसे गिन रहा था। गणेश-चतुर्थी निकट आती चली। उस समय तक मेरे पास एक रुपया दो आने जमा हो गये थे। गौरी-गणेश के लिए नये कपडे बनवाये जाते है। घर मे बाल-बच्चो के लिए भी माता-पिता नये कपडे बनवाते है; किन्तु मेरे भाई के लिए कौन कपड़े बनवा सकता है? इसी लिए मैंने निश्चय किया कि उसके लिए कपडे मै बनवाऊगा।

मै दर्जी के पास गया और साथ मे अपने भाई की अवस्था के एक लड़के को ले गया। उसके बदन के नाप का कोट सीने के लिए दिया। दो वार (गज) कपड़ा और आधा वार अस्तर लाकर दे दिया। कोट तैयार हो गया और मेरे पास के पैसो से ही सारा खर्च पूरा हो गया।

जब वह कोट मैंने हाथ मे लिया तो मेरी आँखो से आँसू टपक

रहे थे। नये कपड़े पर मगल सूचक कुंकुम लगाते है, किन्तु मैंने उस कोट पर प्रेम-रूपी अश्रु-जल का सिंचन किया।

जब मै घर को चला तो रास्ते में पानी ने भी यही प्रण कर लिया था कि मै बस, आज ही बरस कर रहूगा। दापोली मे जिनके यहा मै रहता था, वे बोले "बरसते पानी मे घर मत जा। नदी-नाले पूर जा रहे होगे। पिसई के नाले और सोडेघर के नद मे प्राय उतार नही है। इस लिए हमारी बात मान और आज घर मत जा।" परन्तु मैंने किसी की भी बात नही सुनी। मेरे हृदय मे तो प्रेम का नाला पूर जा रहा था। वह इन साधारण पानी के नदी-नालो की पर्वाह क्यो करने लगा!

छोटे भाई के लिए नया कोट लेकर मै चल दिया। यदि पख होते तो मै एकदम उडकर घर पहुँच जाता। फिर भी चलने मे मुझे नाम-मात्र को भी श्रम नहीं जान पड़ता था। मै तो अपने सुखस्वप्न मे निमग्न था। माता को कोट देखकर कितना आनद होगा, इसी कल्पना मे मै विचरण कर रहा था। एक उड़ता साप मेरे पैरो के पास होकर उड गया। यह साप कोकण मे 'नानेटी' कहलाता है। इसका रग हरा होता है और यह प्राय एक जगह से उछल कर दूसरी जगह गिर जाता है। मुझे इससे कुछ भय-सा प्रतीत हुआ, और मै सावधान होकर चलने लगा। पिसई का नाला दोनो किनारे से लगा हुआ वह रहा था। उसमे उतरने का रास्ता नही था और पानी मे खिंचाव भी बहुत था; किन्तु फिर भी मै थोड़ी देर ठहरा और माता का नाम लेकर पानी मे उतर ही तो पड़ा। हाथ मे लाठी थी। पहले लाठी रखता और तब उसके सहारे आगे पाँव बढाता था। बीच मे जाकर तो मै बिल्कुल ही बह जाने की स्थिति मे पहुँच गया था; किन्तु फिर मै कैसे किनारे लगा, यह भगवान ही जाने। कदाचित् मेरा प्रेम ही मुझे पार लगा रहा था। क्योंकि जिस प्रकार अन्य नदी नालो से मिलने के लिए प्रेमावेश मे बहने वाला वह नाला था, उसी प्रकार मै भी था। तब भला, वह मुझे कैसे डुबा सकता था? मै भी तो अपने भाई से मिलने के लिए जा रहा था। उस नाले के जितना ही मैंभी तो उत्सुक था; दौड़ लगा रहा था? उस नाले की तरह मेरा भी तो अन्त करण उमड़ रहा था।

मार्ग मे ककड़ (गिट्टी) घुल कर ऊपर निकल आने से काँटे की तरह

मेरे पैरो मे चुभते थे। किन्तु उनकी ओर मेरा ध्यान नही था। अँधेरा होने से पहले घर पहुँच जाने का मै पूरा-पूरा प्रयत्न कर रहा था। किन्तु मार्ग मे ही अँधेरा हो गया। आकाश में वादल गरज रहे थे, विजली भी चमक रही थी। पानी जोरो से वह रहा था, और इस प्रकार उन पच भूतो की नृत्य-लीला मे होकर मै आगे वढ़ा जा रहा था।

अन्त मे जैसे-तैसे एक वार मै घर आ पहुँचा। सारा शरीर-कपडे आदि पानी से तर हो रहे थे। घर जाते ही मैने वाहर से पुकारा 'माँ!' उस समय वड़ी सर्दी लग रही थी। पिताजी सध्या कर रहे थे; और माता ने हाथ सेकने के लिए अगीठी मे अगारे भर कर उनके पास रख दिये थे।

"दादा आया! माँ, भैया आगया!" यो कहकर छोटे भाई ने द्वार खोल दिया, और दोनो छोटे भाई मुझ से लिपट गये।

माता ने पूछा "ऐसी वर्षा मे तू क्यो आया श्याम! सारा भीग गया नँ?"

इधर तव तक पिताजी ने पूछा "क्या सोडेघर के नाले मे पानी नही था?"

मैने दोनो को उत्तर देते हुए कहा "खूव था। परन्तु मै जैसे-तैसे आगया।"

इस पर माता ने कहा "गणपति की कृपा! अच्छा, पहले ये सव कपड़े निकाल दे और गर्म पानी से स्नान कर। मै तव तक कपडे सूखने डाल देती हू।" यो कहकर माता पानी रखने गई और मै कपडे उतारने लगा?

इधर मै स्नान के लिए गया, उधर छोटे भाइयों ने मेरी गठडी खोली। छोटे वच्चो मे यह आदत होती ही है। उनको जान पड़ता है कि वाहर से आने वाला हमारे लिए कुछ न कुछ अवश्य लाया होगा! किन्तु मै अपने भाइयो के लिए क्या लाता? कौनसी मिठाई लाता? या क्या खिलौना लाता? कौनसी रगीन चित्र की पुस्तक लाता? और कहा से लाता? मै तो गरीव था!

किन्तु मेरे भाइयो को उस गठड़ी मे अपने काम की चीज मिल ही गई! वह कोट उनके हाथ लग गया। नया कोट! वह कोट नही था, वह हृदय था, प्रेम था। वह माता की फलवती शिक्षा थी!

तत्काल ही छोटा भाई कोट लेकर मेरे पास आया और बोला "दादा! यह छोटा-सा कोट किसका है? यह नया कोट किसके लिए?"

इस पर मैंने कहा "फिर बताऊंगा, अभी घर मे ले जा।"

यह सुन वह माता के पास ले जा कर पूछने लगा "माँ, यह देख नया कोट। यह दादा के शरीर का नही है। यह तो मेरे ही लिये लाया है नँ, क्यो माँ?"

माता ने मुझे सूखी धोती पहनने को दी, और तब मैं हाथ-पाँव सेकने के लिए चूल्हे के पास जा बैठा। इसके बाद उसने पूछा "श्याम! यह छोटा-सा कोट किसका है?"

तब तक पिताजी कहने लगे "क्या मोरेश्वरजी जोशी के यहा देने का है? केम्प के गूंगे दर्जी ने भेजा होगा क्यो?"

मैंने कहा "नही, यह तो मैं पुरुषोत्तम के लिए सिलवा कर लाया हू।"

यह सुन पिताजी पूछने लगे "इस के लिए पैसे कहां से लाया? क्या किसी से कर्ज (उधार) लिये? या फीस के बचा लिये?"

साथ ही माता ने चिंता-पूर्वक पूछा "किसी के पैसे-कौड़ी को तो हाथ नही न लगाया?"

इस पर मैंने कहा "माँ, उस दिन तूने कहा कि 'यह तेरा पहला और अंतिम अपराध होना चाहिए,' सो क्या मैं इस बात को भूल सकता हू? मैंने कर्ज भी नही लिया और न किसी के पैसे चुरा कर ही लाया हू और न फीस के पैसे ही खर्च किये हैं।"

वह सुन पिताजी ने पूछा "तो क्या उधार सिलवा कर लाया है?"

मैंने कहा "नही पिताजी, आप जब-जब दापोली आते और मुझे मिठाई के लिए आने, दो आने दे जाते थे, वे सब मैंने खर्च न कर के इकठ्ठे किये। पिछले तीन महिने के जो पैसे जमा हुए उसी से यह कोट सिलवा कर लाया हू। माँ, पुरुषोत्तम से कहा करती थी कि 'तेरे दादा बडे होगे, तब तेरे लिए नये कोट-कुर्ते सिलवा दिया करेगे।' उसी समय से मैंने निश्चय कर लिया था कि इस बार गणेशोत्सव के समय तेरे लिए अवश्य कोट सिलवाकर लाऊगा। पुरुषोत्तम! देख तो, तेरे बदन मे ठीक से आता है या नहीं?"

उसने तत्काल ही कोट पहन कर प्रसन्नता से कहा "देख दादा! मेरे बदन मे बहुत अच्छा बैठा! और इसमे तो भीतर भी जेब है। अब मेरी पेन्सिल न खोने पावेगी। माँ, देख तो कैसा अच्छा है।"

मेरे मुँह से ये सब बाते सुन कर माता गद्गद हो गई। उसने कहा श्याम! तू अवस्था मे बडा नही और न पैसे की दृष्टि से ही अभी बडा बन सका है; साथ ही तेरी शिक्षा भी अभी अधिक नही हुई है, फिर भी तू मन से तो आज ही बड़ा बन गया है। बच्चो! यही प्रेम-भाव तुम जीवन भर रखना। हे भगवान, इस प्रेम-भाव पर किसी की नजर न लगे!"

पिताजी ने भी प्रेम-पूर्वक मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए मन ही मन' आशीर्वाद दिया। उनके उस हाथ फिराने मे ही सारा उपदेश था, समस्त श्रुतिया थी।

इसके बाद पुरुषोत्तम ने पूछा "माँ, इसे कुँकुम् लगाऊ?"

इस पर उसने कहा "बेटा, इसे अभी तो तह कर के रख दे। सवेरे कुकुम लगा कर देवता को प्रणाम करने के बाद पहनना। यह नया कोट पहनकर गणपति लेने को जाना।"

---

३२ लाड़घर का तामस्तीर्थ

राजा को आज घर लौट जाना था। उसे इस बात के लिए खेद हो रहा था कि, श्याम की माता की समस्त स्मृतिया सुनने का अवसर उसे न मिल सका। किन्तु कर्तव्य अत्यत कठोर-धर्म होता है। कर्तव्य-पालन के लिए समस्त मोह छोड देने पड़ते है। अच्छी बातो का मोह भी त्यागना पड़ता है। मोह केवल 'बुरी बातो का ही नही होता, अच्छी बातो का भी मनुष्य को मोह हो जाता है।

"श्याम! अब हम फिर कब मिल सकेगे? तेरी रसभरी वाणी फिर कब सुनने को मिलेगी? भाई! तू माता के जो संस्मरण सुनाता है, वे साधारण-से होने पर भी उन मे तू सुन्दर धर्म, अपूर्व

उपदेश ग्रथित कर देता है। भगवान कृष्ण के छोटे-से मुँह मे जिस प्रकार यशोदा को सारा संसार दिखलाई दिया, उसी प्रकार तेरी इन छोटी-छोटी कहानियो मे भी धर्म और सस्कृति का विशाल दर्शन होता है। श्याम! कल मैंने राम से यही कहा था कि यह कथा-मय धर्म है, या ये धर्ममय कथाएँ है। और सचमुच ही तू इन कहानियो के रूप मे धर्म का उपदेश करता है; अथवा यो कहे कि धर्म-मयी कहानियाँ सुनाता है। इनके द्वारा तू यह वतला देता है कि हमारे नित्य के सामान्य जीवन मे भी हम कितना आनन्द और कहा तक की सहृदयता ला सकते है! क्यो, यह बात ठीक है नँ? जीवन के इस मार्ग मे भी सुख और सपत्ति का टोटा नही है। भाई-वहन के प्रेम, पशु-पक्षियो के प्रेम और प्राणिमात्र के प्रति प्रेमभाव रखने से जीवन समृद्ध, सुन्दर और श्री-सपन्न किया जा सकता है। श्याम! तेरे संस्मरण सुनते-सुनते मै कितनी ही वार तो रो पड़ा। उस रात को तू प्रेम का वर्णन करता था, और वतला रहा था कि प्रेम के लिए तू किस प्रकार लालायित हो उठा था। उस समय मै भी गद्‌गद हो गया था। श्याम! अव कहा ऐसी वाते सुनने को मिलेगी? तू तो मानो श्याम-सुन्दर कृष्ण की ही मुरली न वजाता हो! क्यो ठीक है नँ?"

मैंने उसका समाधान करते हुए कहा "राजा, अतिशयोक्ति करने की तो तेरी आदत ही है। तेरा मुझ पर प्रेम है, इस लिए तुझे मेरी सभी वातो अच्छाई दीखती हें। मुझ मे तो केवल एक ही गुण है, और वह है अन्तर्वेदना। इसी के कारण सारी वाते सुन्दर हो जाती है। जव मै कीर्तन करता हू तो सगीत-गायन की कमी को मै अपनी उत्कटता और अन्तर्वेदना के द्वारा पूरा कर लेता हूं। राजा, मेरे पास और है ही क्या? कुछ भी तो नही; सचमुच कुछ भी तो नही। मै यो ही वोलता हुआ ढेला हू। काम तो सव तुम्ही लोग करते हो। मै तो कहानी सुनाता हूं, कथाएँ कहता रहता हूँ। मै निरा वाग्वीर हू, जव कि तुम लोग प्रत्यक्ष कर्मवीर हो! राजाराम! मै सच कहता हू कि अव तक मन ही मन कितनी ही वार मै अपना सिर तुम लोगो के चरणो मे नवाँ चुका हू। शिवराम, नामदेव, रामचंद्र आदि सव दिन भर कितना काम करते रहते है? तुम लोग जो भी मुझे वड़प्पन दे

रहे हो, तथापि मै अच्छी तरह जानता हू कि मेरे पास कुछ भी नही है। तुम पत्थर को सिन्दूर लगा कर प्रणाम कर रहे हो।"

इतने ही में राम आ गया। उसके आते ही श्याम ने पूछा "क्यो राम ! क्या गाडी आ गई ?'

राम ने कहा, "नही। विचार बदल गया है। अभी न जाकर रात की गाड़ी से जाने का निश्चय हुआ है। दादाजी ने कहा कि आज रात का सस्मरण सुन कर ही जाएँगे। राजा, रात को ही जाना ठीक होगा। कोई अधिक देर न होगी !"

"जैसी ईश्वरेच्छा" राजा ने उत्तर दिया।

सायकाल हो चला था। आकाश में अनत रगो की प्रदर्शिनी रची जा रही थी। लाल, नीले, पीले आदि सभी रगो का सुन्दर सम्मेलन दिखाई दे रहा था। नदी-किनारे बैठे हुए श्याम और राजा बातें कर रहे थे। बोलते-बोलते दोनो चुप हो गये ! वे एक दूसरे का हाथ थामे हुए थे; दोनो ने हाथ छोड दिये। ग्वाले गाय-भैस चरा कर वापस लौट रहे थे। कोई भैस की पीठ पर-बैठा हुआ था तो कोई अलगोजा बजा रहा था।

थोड़ी ही देर में राजा ने कहा "श्याम ! चलो अब लौट चले !"

"राजा ! ऐसा सुन्दर सृष्टि-दर्शन होने पर तो यही इच्छा होती है कि, अब कही जाने की अपेक्षा यही बैठे रहे और सृष्टि मे मिल जावे। सृष्टि के मूक किन्तु महान् सिन्धु में अपने जीवन-रूपी बिंदु को मिला दे।" इस प्रकार बोलते हुए श्याम के होट थर्रा रहे थे। उस समय श्याम मानो मूर्तिमान भावना और मूर्तिमान उत्कटता के रूप में था।

अन्त को दोनो मित्र लौट आये। आश्रम की चादनी (छत) पर लोग इकट्ठे होने लगे। उधर आकाश-रूपी छत पर एक एक तारा चमकने लगा, और थोडी ही देर मे सारा आकाश खिल उठा। इधर आश्रम की छत भी एक-एक कर के मनुष्यो से पूरी भर गई। प्रार्थना आरभ हुई और बीस मिनट मे समाप्त हो गई। इसके बाद भी क्षण-भर के लिए सब लोग आँखे बद किये बैठे रहे। श्याम ने अपनी कहानी सुनाना आरभ किया :—

"हमारे बचपन मे जब कि माता के शरीर के जोडो मे दर्द होता था, तब 'लाड़घर' की देवी की मनौती की गई थी। दापोली तालुके में समुद्र-

किनारे लाड़घर नामक एक सुन्दर किन्तु छोटा-सा गाँव है। वहां ताम्रस्तीर्थ है। अर्थात् लाड़घर के पास ही एक जगह समुद्र का पानी लाल या ताम्र-वर्ण का दिखाई देता है, इसी कारण उसे ताम्रस्तीर्थ कहते है। हां, तो देवी की वह मनौती पूर्ण करने का कई दिनो से विचार हो रहा था। माता के शरीर के जोड़ ठीक हो चुके थे। जो भी वह पहले की तरह सशक्त तो नही रही थी; किन्तु फिर भी वह चल-फिर सकती थी। घर का सब काम कर लेती थी। लाडघर की उस देवी के सम्मुख लकडी की पुतली; और लकड़ी का ही बना हुआ कुकुमादि रखने का पिटारा, खन् (चोली का कपड़ा) और नारियल आदि पदार्थ भेंट-स्वरूप रखने पडते थे। यह मनौती पूरी करने के लिए माता पालगढ़ से दापोली आने वाली थी, और यहा से मै उसे साथ लेकर लाडघर जाने को था। यह सब निश्चय पहले ही हो चुका था।

इसी लिए मै प्रतीक्षा कर रहा था कि माता कब यहा आती है। वह बेचारी कई वर्षो के बाद पालगढ़ से बाहर जा रही थी। पिछले बारह वर्षों से वह गाँव के बाहर तक नही निकल पाई थी। न कभी हवा-पानी का बदला हुआ, और न स्थानान्तर ही किया। आखिर एक दिन माता दापोली आ पहुँची, और मैंने लाडघर जाने के लिए गाड़ी किराये पर की। प्रात काल वहा जाने का निश्चय हुआ। दापोली से लाड़घर तीन कोस दूर था। तीन घटे का रास्ता था।

प्रात काल मुर्गा बोलते ही माता जग पड़ी। मैं भी उठ खड़ा हुआ। गाडीवान ठीक समय पर आकर पुकारने लगा। मैंने सब सामान उठाया और माता के साथ जाकर गाडी मे बैठ गया। लाड़घर मे हमारी दूर के रिश्ते मे एक फुफेरी बहन रहती थी। उसीके घर ठहरने का हमने निश्चय किया, और सोचा कि सवेरे सात-आठ बजे तक वहा जा पहुँचेगे।

गाड़ीवान ने गाड़ी चलाई और बैल भी बढ चले। वे बडे आनन्द से चले जा रहे थे। प्रभात का शान्त समय था। कृत्तिका का सुन्दर नक्षत्र पुज आकाश मे चमक रहा था। बैलो के गले मे बँधी हुई घंटी की आवाज उस शान्त-प्रभात में अत्यन्त आल्हादकारक जान पड़ती थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो सृष्टि-मंदिर मे प्रभात का घंटा-नाद ही न हो रहा हो!

फूल खिल रहे थे और सीतल, मद वायु बह रही थी। पक्षी-गण गा रहे थे, मानो सृष्टि-मदिर मे आरती हो रही हो।

गाडी मे मै और माता केवल दोही व्यक्ति थे। मै और माता, अथवा माता और मै, केवल दोनो ही थे। हमारा एक दूसरे पर घनिष्ट प्रेम था। मेरी अवस्था चौदह-पद्रह वर्ष की हो जाने पर भी माता के लिए मै बच्चा ही था। मै उसकी गोद में सिर रख कर लेटा हुआ था, क्योकि गाडी बड़ी थी। उसमे खूब जगह थी। माँ की गोद मे सिर रख कर मै सो गया। माँ मेरे नेत्रो और सिर के बालो पर प्रेम-भरा हाथ फिरा रही थी। थोडी ही देर मे उसने पूछा "श्याम! तेरी यह चोटी कितनी सूखी और मैली है! क्या कभी इसमे तैल आदि नही लगाता?" किन्तु मेरा ध्यान उस ओर जरा भी न था। मै सुख-पूर्वक सो रहा था।

सुख निमग्न होता है जब मन। प्रेम-नीर बर्साते लोचन ॥*

इस प्रकार की अवस्था का मै अनुभव कर रहा था। माता और मै, हमने कभी एक-साथ यात्रा नही की थी। इतनी स्वतत्रता और खुले हृदय से हम कभी कही घूमे-फिरे नही थे। माता और मै। हा, हम दोनो की ही उस समय दुनियाँ थी। मेरे मन मे अनेक प्रकार के सुख-स्वप्नो की सृष्टि हो रही थी। मै बडा हो कर, पढ-लिख कर अच्छी नौकरी करूगा, और माता को किसी बात का कष्ट न पड़ने दूगा, उसे सुख के स्वर्ग मे रक्खूगा, इत्यादि अनेक प्रकार के सकल्प मेरे मन में उत्पन्न हो रहे थे। क्योकि मनोरथ-रूपी शिखर निर्माण करना और उन्हे ढहाना चचल मन का स्वभाव ही होता है।

मुझे चुप देख कर माता ने कहा "श्याम! बोलता क्यो नही रे! क्या अभी तेरी नीद पूरी नही हुई!"

मैने कहा "नही माँ, तेरी गोद मे चुपचाप मै लेटा रहूं, और तू प्रेमभरी-दृष्टि से मेरी ओर देखती रहे, मेरे शरीर पर स्नेह का हाथ फिराती रहे; इससे अधिक मुझे कुछ नही चाहिए। माँ, तू थोड़ी देर मेरी पीठ थपथपा। मेरी यही इच्छा रहती है कि सदैव तेरी गोद मे बच्चा ही बना

---

* **सुखावलें मन। प्रेमें पाझरती लोचन ॥**

रहूं। जरा मेरी पीठ थप्थपा कर लोरी सुना"। मेरे इस अनुरोध को सुन माता सचमुच ही मेरी पीठ थप्थपाने और लोरिया गाने लगी। वन के पक्षी कलरव करने लगे थे। दापोली से लाडघर तक दोनो ओर घना जंगल है। यहा तक कि मार्ग मे सूर्य का प्रकाश भी नही आ सकता। एक स्थान पर ऊपर पहाड़ पर से झरने का पानी रास्ते मे गिरता रहता है। वह दृश्य वडा ही सुन्दर और मन को मुग्ध कर लेने वाला है। काजू, आम, कटहल, वड, पायरी, करज आदि अनेक प्रकार के वृक्ष रास्ते के दोनो ओर खडे है। उस समय इन वृक्षो पर अनेक प्रकार के पक्षी-गण इधर-उधर विचरने और गाने लगे थे। सृष्टि जागृत होना चाहती थी किन्तु मैं अपनी माता के गोद मे उस समय भी सोने का प्रयत्न कर रहा था। यद्यपि मुझे नीद नही आ रही थी; फिर भी मैं आँखें वद किये हुए पड़ा था। ससार के उठने का समय था, परन्तु मेरी माता मुझे सुला रही थी। माता ने लोरिया गाते-गाते नीचे लिखी लोरी सुनाई। कभी-कभी वह खुद भी लोरिया रच कर गाया करती थी। इसका पता मुझे पहले से था। इस वार भी वही वात हुई। उसने गाया—

इस घनघोर विपिन में, वहती निर्मल जलधारा।
त्यो ही प्रभुमय जीवन हो, प्रिय श्याम वाल का सारा॥*

माता की इस लोरी को सुनते ही मैं एकदम उठ खड़ा हुआ। क्या मैं उस धुआँधार वहने वाले झरने को देखने के लिए उठा था?

माता ने पूछा "क्योरे, इस प्रकार एकदम कैसे उठ वैठा? क्या पडे-पडे उकता गया? सो जा श्याम, तेरे सोने से मेरी गोद नही दूख सकती!"

मैंने कहा "माँ, जब अपने श्याम के जीवन को तू प्रभुमय वना रही है, तव मैं कैसे सो सकता हूँ? जीवन में प्रभु का आगमन होने का अर्थ है जागृति उत्पन्न होना। क्योकि परमात्मा सवको जागृति प्रदान करता है। क्या सूर्य-नारायण ससार को चैतन्य प्रदान नहीं करता?"

* घनदाट या रानांत। धो-धो स्वच्छ वाहे पाणी।
माझ्या श्यामाच्या जीवनीं। देव राहो॥

दूर से समुद्र की गर्जना सुनाई दे रही थी। जगल समाप्त होते ही दूरी पर उमड़ने वाला सागर दिखाई देने लगा। ससार-रूपी जंगल के पास ही परमात्मा के आनन्द का समुद्र अपरपार हो कर लहराता रहता है। ससार से थोडे ही बाहर जाइये कि आपको इस ईश्वरीय आनन्द का दर्शन होगा।

वही से कुछ दूरी पर सुन्दर और दर्शनीय लाडघर गॉव दिखाई देने लगा। थोडी ही देर मे हम गाँव में जा पहुँचे। रास्ते के प्रत्येक बगीचे मे बैलो के रहँट चल रहे थे। वृक्षो को पानी पिलाया जा रहा था। चर्खियो का कुऊ-कुऊ आवाज सुनाई दे रहा था। बैलो के पीछे छोटी-सी छडी या रस्सी के टुकडे लेकर हॉकने वाले लडको के शब्द भी सुन पडते थे। पानी के पाट-नाले-बगीचो में बह रहे थे। सुपारी, नारियल, अनन्नास, केले आदि को पानी दिया जा रहा था। प्रत्येक घर के आसपास सुपारी, नारियल आदि के उपवन बने हुए थे। इस प्रकार वह गाँव अत्यन्त सुन्दर और सुख-सम्पन्न जान पड़ता था। स्वच्छ और समृद्ध विपुल जल एव सुन्दर वायु। फल फूल की रेलछेल, घनी झाडी। इस प्रकार वहा सृष्टि की पूर्ण समृद्धि दिखाई देती थी।

हमारी गाडी गाँव मे हो कर जा रही थी। किन्तु हमें यह पता नही था कि बहन का घर कहां है; इस लिए पूछते हुए जा रहे थे। मार्ग मे लडको की पाठशाला थी। अत. वे सब हमारी गाडी की ओर देखने लगे। कोई भी नई गाडी या नया पशु-पक्षी अथवा नवीन मनुष्य या अपरिचित वस्तु दृष्टिगोचर होते ही लडको की जिज्ञासा जागृत होती है।

थोड़ी ही देर मे हमे सुमति बहन का घर मिल गया। गाडीवान ने गाड़ी खोल दी और बैलो को बाँध कर घास डाल दिया। हम घर में गये। सुमति जीजी को इससे पहले मैंने कभी देखा नही था। माता ने भी उसे कई वर्ष बाद देखा था। मेरी माता अवस्था मे सुमति जीजी से बडी थी; इस लिए वह उसकी बड़ी लडकी के समान दिखाई देती थी।

माता को एकदम आते देख कर जीजी तो चकित ही रह गई। उसने "आओ, भाभी, आज कितने वर्षो के बाद हमारी भेट हुई।" इस

प्रकार मधुर शब्दो मे हमारा स्वागत किया। और मेरी ओर देख कर पूछा "यह कौन है भाभी!"

माता ने कहा "सुमति, यह श्याम है। बचपन मे हठ करने और सबसे लड़ने-झगड़ने वाला यही तो है। तूने इसे नही पहचाना?"

यह सुन जीजी ने कहा "अरे, तू तो बहुत बड़ा हो गया! क्या अगरेजी पढता है?"

मैंने कहा "हां, मै आज-कल चौथी क्लास मे हू।"

उस प्रेम-मय हरे-भरे घर मे पहुँच कर हम एकदम घर के जैसे ही हिल-मिल गये। सुमति जीजी ने कहा "भाभी, तुम अभी जाकर समुद्र मे स्नान कर आओ, जिससे कि दस-ग्यारह बजे तक लौट आओगी। दो-पहर को भोजनादि हो जाने पर हम सब देवी के दर्शनार्थ चलेगे। इस तरह शाम को वापस आकर तुम्हे दापोली लौट जाने मे सुविधा रहेगी। मै चाहती तो अवश्य हू कि तुम कुछ दिन यही रहो? इतने वर्षो बाद आई हो तो कमसेकम आठ दिन तो रहो; इससे मेरी आत्मा बहुत सुखी होगी। सुसराल मे रह कर मै नैहर का सुख अनुभव कर सकूगी। क्या, भाभी! मेरी बात स्वीकार करोगी?"

"सुमति, यह गाडी आने-जाने के किराये पर लाई गई है। साथ ही वहा भी तो घर पर कौन है? छोटे बच्चो को वही छोड आई हू। श्याम भी स्कूल से छुट्टी ले कर नही आया। इस लिए इतने वर्षो बाद हमारी परस्पर भेट हो सकी, यही बहुत बड़ी बात समझना चाहिए। अच्छा, तो हम अभी समुद्र पर स्नान कर आते है।" इस प्रकार माँ ने कहा।

हमने पहनने के लिए कपड़े साथ लिए और हमारे बहनोई साहब साथ चले। गाडी जोड़ी गई और हम फुर्ती के साथ चल दिये। समुद्र निकट ही था और किनारे के पास ही हो कर रास्ता था; क्योकि हमें तामस्तीर्थ पर जाना था। मै बराबर समुद्र की ही ओर देख रहा था। मानो अपने छोटे-छोटे नेत्रो-द्वारा उसे पी जाना चाहता था। विस्तृत सागर, अनन्त सिंधु, जिसका न अन्त था न पारावार। नीचे नीले पानी वाला समुद्र और ऊपर नीला आकाश-रूपी समुद्र था।

गाडी ठीक स्थान पर पहुँचते ही हम सब नीचे उतर पड़े । बहनोई (जीजा) ने हमे स्नान करने का स्थान बतलाया । वहां समुद्र की लहरे यथार्थ मे कुछ लाल रग की ही उठ रही थी । वहा की वालू (रेती) भी किंचित् लाली लिए हुए देख पडती थी । मैने जीजा से पूछा "यहा का पानी लाल रंग का क्यो है ? "

उन्होने कहा "ईश्वर का चमत्कार ही समझिये, और क्या कहा जा सकता है ? "

किन्तु माता ने कहा "यहा परमात्मा ने राक्षसो का वध किया होगा; इसीसे यहा का पानी लाल हो गया है । "

यह सुन हमारे जीजा साहब बोले "हा, ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है !"

मेरी माता की दृष्टि मे सर्वत्र ईश्वर का ही हाथ, उसी का अश दिखाई देता था । प्रत्येक कार्य में वह परमेश्वर का उद्देश और उसी का कार्य भी देखती थी । शास्त्रज्ञ कार्यकारण-भाव देखते है, किन्तु मेरी माता ईश्वर को ही देखती थी ।

लगोटी लगा कर मै समुद्र मे घुस पडा और छोटी-छोटी लहरो के साथ खेलने लगा । किन्तु मै बहुत आगे नही बढा था । क्योकि मै समुद्र के विषय में अधिक जानकार नही था । माता भी घुटनो से कुछ आगे गहरे पानी मे बैठ कर स्नान करने लगी। समुद्र अपने सैकड़ो हाथो से हल्के-हल्के गुद्-गुदाने के लिए, हँसता-खेलता बढा आ रहा था । पैरो के नीचे की रेती लहर के वापस जाते ही खिसक जाती थी । हम माँ-बेटे ईश्वर के कृपा-समुद्र मे स्नान कर रहे थे । पानी खारा होने पर भी तीर्थ-जल होने के कारण माता ने उसे थोडा-सा पिया और मुझे भी पिलाया । इसके बाद माता ने पुष्प, हल्दी, कुकुम आदि से समुद्र का पूजन किया । एक चवन्नी भी दक्षिणा-रूप से समुद्र मे फेंकी । जिस सागर के गर्भ में मोतियो के अगणित ढेर भरे पड़े है; उस रत्नाकर को माता ने चार आने भेट किये ! किन्तु वह केवल कृतज्ञता ही थी । जिस प्रकार कि चंद्र-सूर्य का निर्माण करने वाले परमात्मा को भक्त रुई की छोटी-सी बत्ती का दीपक दिखलाता और कपूर की डली से उसकी आरती उतारता है । अर्थात् अपने अत:करण

की कृतज्ञता को किसी प्रकार के बाह्य चिन्ह-द्वारा व्यक्त करने के लिए मनुष्य निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। तब क्या उस अनन्त सागर को देख कर किंचित् त्याग-बुद्धि सीखने की हमारे लिए आवश्यकता नही थी ?

सूखे कपड़े पहन कर हम फिर गाडी मे सवार हो गये और थोड़ी ही देर मे घर आ पहुँचे। किन्तु उस समय बारह बजने आ गये थे और पेट मे जोरो की भूख लग रही थी। इधर सुमति जीजी ने पत्तले परोस कर तैयार ही रखी थी। क्योकि जीजाजी का स्नान-संध्या, देव-पूजन आदि प्रात काल ही हो जाता था। इसके बाद वे बगीचे के काम मे लग जाते थे।

हा, तो हम झटपट भोजन के लिए बैठ गये। भोजन अत्यन्त सादा होने पर भी स्वादिष्ट था। सुमति जीजी ने इतने समय मे ही हमारे लिए खाण्डवी नामक मीठा पदार्थ भी बना लिया था। नारियल का अंगरस और गोले की चटनी भी बनाई थी। प्रत्येक वस्तु मे नारियल की गिरी का स्वाद आ रहा था। बैगन और उसमे मूली की फलिया (सागर) मिला कर शाक बनाया गया था। वह बहुत ही बढिया था। घर का ही मक्खन से निकला घी भी था।

भोजन समाप्त होते देख माता ने कहा "श्याम! कोई अच्छा-सा श्लोक तो सुना!" इसपर मैने "केयूरा न विभूषयन्ति शरिरं" वाला श्लोक सुनाया। मेरे जीजा को यह श्लोक बहुत पसंद आया। वे पूछने लगे "अगरेजी स्कूल मे पढने पर भी श्लोक सुनाने मे तू नही शर्माता, यह बड़े सन्तोष की बात है! नही तो आज-कल के लड़को को चार श्लोक भी अच्छी तरह याद नही होते! क्लास मे तेरा नबर कौनसा है श्याम ?"

मैने कहा "दूसरा!" यह सुन वे और भी प्रसन्न हुए और कहने लगे "शाबाश, तू बहुत होशियार लड़का जान पडता है!"

सुमति जीजी का एक पाच वर्ष का लडका और दो ढाई वर्ष की लडकी थी। वह भानजा मधुकर भी जीजा के साथ भोजन कर रहा था; अतएव मेरे मुँह से श्लोक सुन कर उसने भी एक अच्छा-सा श्लोक कहा।

परोसते हुए जीजी ने कहा "श्याम! शर्माना मत, खाण्डवी भी और लेना! जो तुझे अच्छी लगे वही चीज परोसूगी हो श्याम!"

यह सुन माता ने हँसते हुए कहा "अरे, श्याम तो वैसे ही ससार-

भर से ज्यादा भीरु और शर्मीला है। किन्तु श्याम, यहा शर्माने की आवश्यकता नही है।" भीतर की ओर मेरी माता भी भोजन कर रही थी, उससे जीजी ने कहा "भाभी, तुम धीरे-धीरे भोजन करो। इन्हे भले ही भोजन हो जाय तो उठ कर जाने देना।"

भोजनादि हो जाने पर जीजी ने कच्ची दूधिया सुपारी काट कर माता को दी। यद्यपि मैं सुपारी नही खाता था, फिर भी उसमे का दूध वाला अश मैंने खुरच कर मुँह मे डाल ही लिया। जीजी और माता ने चौका-वर्तन किया। इसके वाद दोनो जरा लेट कर वाते करने लगी। इधर तव तक मैं भानजे को साथ लेकर उनके घर के वगीचे में चल दिया। मैं वहा का तमाशा देखने लगा। कितनी ही केलो मे फल लटक रहे थे। जहा-तहा उसके फूल की पखुरियाँ विखर रही थी। यद्यपि केले के फूल और कलियों की चटनी वनाई जाती है। किन्तु जहा उनकी विपुलता होती है, वहा कौन पूछता है? केल के फूलो की एक-एक कली चटक रही थी और केलो के गुच्छे वाहर निकल रहे थे। अमरूद के वृक्ष पर तो मैं चढ भी गया। उस-पर एक सुग्गा (तोता) वैठा हुआ था; और उसने एक अच्छे अमरूद को चोच से कुतर डाला था। हमने उसे नीचे गिराया और दोनो खा गये। इतने ही मे जीजी ने मुझे आवाज दी और हम दोनो घर मे चले गये।

"श्याम! उस पपनस के पैड़ पर से दो-तीन फल तोड़ कर ले आ तो! उनमे से दो तो अभी यहा फोडेंगे; और एक साथ ले जाना जो रास्ते मे गाडी मे तेरे लिए खाने को हो जायगा।" इस प्रकार उसने कहा।

मैंने पूछा "कहा है वह वृक्ष?" यह सुन झट् से मधुकर वोल उठा "चलो, मै वतलाता हूं।" इसके वाद वह मेरा हाथ पकड कर खीचने लगा। उस वृक्ष पर पीली-पीली पपनस नारियल के आकार की लटक रही थी। हमारे घर भी पपनस का एक पैड़ था; किन्तु उसपर इतने वड़े फल नही आते थे। मैंने तत्काल ही उस पैड पर चढ कर तीन पपनस तोड लिये, और उन्हे लेकर हम घर मे गये। इसके वाद मैंने धीरे से कहा कि "जगल मे जब हम देवी के पूजन के लिए जावें, तव वही क्यो न ये फल काम मे लाये जायँ? वन मे खाने-पीने का आनन्द और ही होता है।" यह सुन सुमति जीजी ने कहा "अरे, वहा तो हम दूधिया नारियल और

पौवे खाएँगे; पपनस तो यही छील कर खाना ठीक होगा।" फलत. पपनस की फाँके निकाल कर हम सबने खाई। गाडीवान को भी दी। सचमुच ही वह बडा मधुर फल था।

थोडी ही देर के बाद देवी के दर्शनार्थ जाने का समय हो गया। मैंने गाडीवान से तैयार होने को कहा; और सुमति जीजी, उसके दोनो बच्चे, मैं और माता हम सब गाडी मे जा बैठे। गाड़ी तो बहुत बड़ी थी ही। गाँव से बाहर टेकडी के किनारे देवी का स्थान था। वहा जाकर माता ने देवी की पूजा की। लकडी की पुतली, सौभाग्य-पिटारी और चूडिया उसके चरणो मे अर्पण की और खन (वस्त्र) नारियल से उसकी गोद भरी। सबने सिर पर विभूति लगाई। माता ने कागज के टुकड़े मे थोड़ी-सी विभूति घर ले जाने को बाँध ली। इसके बाद हमने वन-भोजन किया। नारियल, पौवे, गुड तीनो के सयोग से उस वन-भोजन में बडा आनन्द प्राप्त हुआ। वैसे भी जगल मे तो हमेशा ही आनन्द प्राप्त होता है। चित्त मे प्रसन्नता और उल्लास एवं मुक्तता का अनुभव होता है। वहा घर की दीवारे नही होती; वहा तो विशाल सृष्टि के विराट् गृह मे हम रहते है। वहां संकुचितता रहने ही नही पाती।

देवी को प्रणाम कर के हम घर लौटे; क्योकि उसी समय हमें दापोली वापस लौट जाना था। वहां से रात ही को माँ गाडी-द्वारा पालगढ जाने वाली थी। अत हमने चलने की तैयारी की। मैंने जीजी और जीजा को प्रणाम किया।

चलते समय सुमति जीजी ने कहा "श्याम! तू तो दापोली में यहा से पास ही रहता है। किसी रविवार को यहां भी आ जाया कर। पाल्गढ तो इतनी दूर भी है, परन्तु यह तो पास ही है, छुट्टी मे घर-(दूर) न जाकर यहीं आ जाया कर। समझ गया न मेरी बात।"

इसके बाद जीजा ने कहा "अवश्य आना हो श्याम। हम कोई पराये नहीं है। इसी तरह आने-जाने से परिचय रहता है। जरूर आना समझे।"

मैंने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई और देवता को सुपारी भेट रख कर प्रणाम किया। सुमति जीजी ने कुछ कच्ची सुपारियां और दो-तीन

प्रकार के मीठे दूध भरे नारियल घर ले जाने को साथ दिये। दो पपनस भी दे दिये।

"अच्छा, सुमति! अब मैं जाती हूं।" यो कह कर माता विदा होने लगी।

जीजी ने भरे हुए कठ से कहा "भाभी, अब फिर कब भेंट होगी?"

माता बोली "बाई, यह तो ईश्वर ही जान सकता है कि हम फिर कब मिल सकेगी। क्योकि बारह वर्ष के बाद आज मै थोडी-सी देर के लिए पालगढ छोड कर बाहर निकल सकी हू। और मै जाती भी कहां! ले दे कर मेरे दो भाई बम्बई और पूना मे है, उनके यहा जा सकती थी। परन्तु उनकी भी तो गृहस्थी है। उन्हे भला क्यो कर बहन की याद आ सकती है? सुमति, पिछले पाच-सात वर्ष से शीतज्वर बराबर मेरे पीछे पड़ा हुआ है। जब बुखार आ जाता है तो बिस्तर पर पड़ जाती हू; और पसीना आकर जब बुखार निकल जाता है तो फिर उठ कर काम मे लग जाती हूं! घर मे दूसरा है ही कौन? भगवान गरीब को कभी किसी प्रकार का दु.ख या रोग न दे। वह उसके लिए पाप या शाप रूप हो जाता है। जीभ को अब कोई स्वाद ही नही रह गया है। अद्रक का टुकडा और नीबू की फाँक मिलाकर किसी प्रकार दो-चार ग्रास गले के नीचे उतार लेती हू। अस्तु। जैसी परमात्मा की इच्छा। हम मानव-प्राणी और कर ही क्या सकते है! जो कुछ संकट सामने आवे उसे भोगना; और जैसे-तैसे दिन गुजारना इतना ही हमारा काम है। और यह बात कही भी किससे जाय? किसके आगे अपना दु ख-भार हल्का किया जाय? इतने वर्ष बाद तुझसे भेंट हुई तो तेरा प्रेममय स्वभाव देख कर मैंने इतनी बाते भी कर ली! तू भी तो मेरी चद्रा जैसी ही है। उसीके साथ खेली है। तुझे मैंने स्नान कराया और बहुत छोटी अवस्था मे तेरे लिए परकर (घघरिया) आदि भी मैंने सिये है। तू मेरी ही है, इसी लिए तेरे सामने थोडा-सा जी हल्का कर लिया। जरा-सा दु.खभार हल्का होने से चित्त को शान्ति मिलती है। संसार मे अपनी दु ख-कथा सुनाने से दूसरो की सहानुभूति प्राप्त होती है, इससे चित्त को सन्तोष होता है। परन्तु मै किसीसे भी कुछ नहीं कहती। केवल उस परमात्मा से ही अपनी दुःख-गाथा निवेदन करती रहती हू।" यो

कहते-कहते माता की आँखो मे आँसू आ गये। जीजी ने भी अपने आँसू पोछे।

इसके बाद जीजी ने कहा "भाभी, अब मधु के यज्ञोपवीत-संस्कार मे तुम यहां अवश्य आना। जीवन से इस तरह निराश मत हो जाओ, भाभी! श्याम आदि को कुछ बडे होने दो। फिर तो ये सब कमाने लगेगे; और तुम्हारे लिए किसी बात की भी कमी न पड़ने देगे। तुम्हारे लड़के सब अच्छे है, यही ईश्वर की सब से बडी कृपा समझो।"

माता ने कहा "हा बाई, यही सन्तोष है। छुट्टी मे श्याम जब घर आता है तो मेरे प्राय सभी काम करने लगता है, साथ ही स्कूल मे भी उसकी होशियारी की प्रशसा होती है। जो कुछ भगवान करे सो सही। अच्छा, अब चलती हू सुमति।" यो कह कर माता ने सुमति जीजी के दोनो बच्चों के हाथ मे एक-एक रुपया दिया और चोली का कपडा जीजी को दिया।

रुपये देते देख कर जीजी ने कहा "भाभी, इसकी क्या जरूरत थी?"

किन्तु माता ने कहा "रहने दे सुमति, मै अब कहा बारबार इन्हे कुछ देने आऊगी? सुमति, तेरी भाभी अब धनवान नही है, समझी। रहने दे बच्चो के लिए रुपये!" यो कह कर उनकी पीठ पर हाथ फेरने के बाद माता वहां से चल दी।

हम दोनो माँ-बेटे फिर गाड़ी मे जा बैठे। गाडी चलने लगी। बैलो को घर लौटने की खुशी होने के कारण वे शीघ्रता से कदम बढा रहे थे। किन्तु अब रास्ता चढाई का था। उधर से आते हुए उतार होने से दौड़ कर चले आये थे, परन्तु अब चढाई मे उनके लिए धीरे-धीरे चलना अनिवार्य था। गाँव से निकलने के बाद गाडी ठीक रास्ते पर लग गई।

सध्याकाल हो रहा था और इसी कारण सारा समुद्र ही तामस्तीर्थ बन गया था। वह बडा ही सुन्दर दृश्य था। सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। अब आँखो से उसकी ओर देखा जा सकता था। वह इस समय एक लाल गोले की तरह दिखाई देता था। समुद्र उस थके-मादे सूर्य को अपनी सहस्र तरगो से स्नान कराने के लिए उत्सुक हो रहा था। थोडी ही देर मे सूर्य अस्त हुआ। वह लाल-लाल गोला समुद्र मे विलीन हो गया। उस समय

सब हरा-हरा (जल-थल), नीले रग का दिखाई देने लगा। रात-भर वह (सूर्य) समुद्र की गोद मे विश्राम कर दूसरे दिन फिर ऊगने वाला था।

दोनो ओर घनी झाडी शुरू हो गई। बीच-बीच मे आकाश के तारे भी दिखाई दे जाते थे। रात के वक्त उस जगल मे हो कर जाते हुए बड़ी ही गभीरता प्रतीत होती थी। झीगुर की झन्कार शुरू हो चुकी थी। दूर से समुद्र की गर्जना भी सुनाई देती थी। हम माँ-बेटे गाडी मे बैठे हुए उस गभीर रात्रि मे बाते कर के समय बिता रहे थे।

"माँ, फिर हम दोनो इसी प्रकार कब कही की यात्रा करेगे? तेरे साथ तो मै कभी कही नही गया। किन्तु अब इच्छा होती है कि मै तेरे साथ भ्रमण करू, और तेरे अटूट प्रेम को प्राप्त कर जीवन सफल बनाऊ।" इस प्रकार मैने माता का हाथ अपने हाथ मे लेकर पूछा।

उसने उत्तर दिया "तुम बड़े हो जाओ, तो फिर मै तुम्हारे साथ जहा कही नौकरी करोगे, वहा चलूगी। तब तुम मुझे पढरपूर, नासिक, काशी, द्वारका आदि सब तीर्थो की यात्रा करा लाना। तेरे दादाबा काशी की यात्रा कर चुके थे। ये (तेरे पिता) भी नाशिक-पंढरपुर हो आये है; किन्तु मै कहा जाती और कौन ले जाता? आँगन की तुलशी के पास बैठना ही मेरे लिए काशी और पढरपुर है। हमारे यहा कहावत है कि

काशी जावेगे नित्य यही रटने से।
मिलता यात्रा का पुण्य, पाप कटने से॥ *

तीर्थयात्रा मे जाने की बात करते रहने से भी वहा जाने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। स्नान के समय शरीर पर पानी डालते समय 'हर गगे' कहने से गंगा-स्नान का फल प्राप्त हो जाता है। विठ्ठल और विश्वेश्वर, गोदा और गगा अपने आँगन मे—अपने घर मे ही है। गरीबो के लिए ही यह सुविधा की गई है। बेटा, हम कहा घूमने-फिरने जा सकते है? साहूकार के गुमाश्ते तो लगातार दर्वाजे पर धरना दिये बैठे रहते है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि इस जीवन से तो मृत्यु ही भली। बस हुआ यह ससार! छोडो इस गृहस्थी के जजाल को। किसकी तीर्थयात्रा और

* काशीस जावें, नित्य वदावे। यात्रेच्या त्या पुण्या ध्यावें।

कहा का गगास्नान। अरे, यह संसार-यात्रा ही सबसे बड़ी यात्रा है। इस यात्रा से ही सौभाग्यचिन्ह लिये मर्यादा के साथ मेरे नेत्र मुँद जायँ तो मैं मुक्त हो जाऊगी।" उस समय हम पहाडो से जोरो के साथ गिरने वाले पानी के झरने के पास पहुँच गये थे। उधर माता के नेत्रो से भी शात-प्रवाह बह रहा था। उसके गालो पर से वह नीचे गिर रहा था; और उस पवित्र गगा-यमुना के जल से मैं अपना अभिषेक करवा रहा था, मैंने अपना सिर माता के अचल मे छिपा लिया था।

"माँ! तेरी तो हमे विशेष-रूप से आवश्यकता है। तेरे विना हमार है ही कौन? सचमुच हमारा कौन है? मै तेरे लिए ही तो पढ़-लिख रहा हूं। यदि तू न हो, तो मै किसके लिए पढू-लिखू? किसके लिए जीता रहू? माँ, तुझे ईश्वर कदापि नही ले जा सकता।" यो कह कर मैंने माता को जोरो से पकड़ लिया। मानो उसी समय मृत्यु उसे ले जाने को आ गई थी; और इस लिए मैं उसे जोरो से पकड़े हुए था।

यह देख माता ने कहा "ईश्वर जो कुछ करता है, सब अच्छे ही के लिए करता है। तुम अच्छे बनो, इसीमे मुझे सब प्रकार संतोष होगा।"

अब गाडी मे सब चुप थे। मै बड़े ही भक्तिभाव और प्रेमपूर्वक, कृतज्ञता एव समस्त कोमल भावनाओ के साथ माता की गोद मे सिर रखे हुए लेटा था। थोडी ही देर के बाद मैंने फिर कहा "माँ, तू बचपन मे मुझे एक कहानी सुनाया करती थी कि, 'एक भिखारी का लडका अपनी झोली मे के चार दाने रात के वक्त रास्ते मे डाल देता और प्रात काल उन दानो से सोने का एक सुदर पंख बन जाता।' सो माँ, हमारा भी उसी तरह सब कुछ अच्छा ही होगा। हमारी गरीबी दूर होगी; और फिर हमे अच्छे दिन देखने को मिल सकेगे।"

माता ने कहा "श्याम! ईश्वर के लिए कठिन बात ही क्या है? वह रात को दिन कर सकता है और विष को अमृत बना सकता है। क्या उसने अपने मित्र सुदामा की नगरी को स्वर्णमयी नही बना दिया? किन्तु हम ठहरे साधारण ससारी-प्राणी। हममे कहा वह योग्यता है?"

इस पर मैंने पूछा "तो माँ, ईश्वर की कृपा तो हमेशा ही रहती है नँ! गरीबी आ जाने या अपमान होने अथवा दु:ख-कष्ट भोगने पर भी उसे

ईश्वर की कृपा ही समझनी चाहिए, यह बात जो कही जाती है, क्या वह ठीक है ?"

"बेटा, तेरी अज्ञान माता इन सब बातो को नही समझ सकती। मैं तो केवल इतना ही जानती हू कि 'ईश्वर जो कुछ करता है, सब अच्छे ही के लिए करता है'। मैंने बचपन मे जब कभी मारा-पीटा भी तो केवल तेरे भले ही के लिए। फिर मुझ से तो वह परमात्मा कई गुना अधिक दयालु है; उसी पर विश्वास रखना चाहिए। भले ही वह विष का प्याला दे या अमृत का, उस पर अचल श्रद्धा रहनी चाहिए।" इस प्रकार माता मानो मुझे श्रद्धोपनिषद ही सुना रही थी।

एकदम मेरा ध्यान सामने की ओर गया; और मैंने घबराये हुए स्वर में कहा "बाघ! माँ, बाघ (शेर)!" उसके वे चमकीले नेत्र और भीषण मुद्रा! उनकी वह ऐंठ, सब देखते ही बनती थी। वह दाहिनी ओर की झाड़ी मे से निकलकर बायी ओर घुस गया। जिस प्रकार रगमच पर कोई नट आता और चला जाता है, वही बात उसने भी की। तो क्या वह हम माँ-बेटे की स्नेहमयी बाते सुनने के लिए आया था? अथवा क्या ईश्वर की करुणा-दया का विश्वास कराने को उधर से निकला था? मेरी माता के साथ पशु-पक्षी तक प्रेम का बर्ताव करते थे। गाय-भैंस और उनके बछड़े तथा बिल्ली तक उसके साथ प्रेमभाव प्रकट करती थी। बिल्ली की बात मैं अत मे जाकर सुनाऊगा। बिल्ली को बाघ की मौसी कहते हैं। अत जब मेरी माता के साथ बिल्ली प्रेम करती है; तो फिर बाघ क्यो न करेगा? वह मेरी माता का दर्शन करने आया था। क्रूरता छोडकर नम्र-भाव से उसे वदन (प्रणाम) करने के लिये ही आया था।

धीरे-धीरे हम दापोली जा पहुँचे। दूर के दिये टिमटिमा रहे थे। रात को नौ बजे हम घर पहुँच गये। देर हो जाने से माँ उस रात को वही ठहर कर दूसरे दिन पालगढ गई।

मित्रो! वह दिन और रात मेरे जीवन में अमर हो गये है। उसके बाद मैं फिर कभी अपनी माता के साथ कही नहीं गया! वह केवल एक ही दिन, उस एक ही दिन के लिए मैं अपनी माता के साथ प्रकृतिमाता के—समुद्र और वनराजी के सहवास में रह सका। दोनो उसमे रँग गये, प्रेम मे डूब गये,

हृदयो को हृदय मे उँडेल दिया। उस दिन के बाद मेरी माता के जीवन मे अधिकाधिक दु ख-संकट आते चले गये। ईश्वर मेरी माता के जीवन को असली सोना, सौ टच् का सोना बनाना चाहता था। इस लिए वह उसे और भी तेज भट्टी में डालकर तपाने लगा। मित्रो, मेरी माता एक प्रकार से शापभ्रष्ट देवता ही थी। . . . .

यो कहता हुआ श्याम एकदम उठ खडा हुआ, सब लोग चुपचाप बैठे हुए थे। थोडी देर के बाद लोग सावधान हुए, और भरे हुए अंत करण से अपने-अपने घर चले गये।

---

३३ ऋण या नर्क-भोग?

उस दिन साहूकार का तकाजेगीर हमारे यहा कर्ज-वसूली के लिए आया था। उस दूत के आने पर मेरी माता को मृत्यु से भी अधिक दु ख होता था। कर्ज लेने मे कभी सुख नही मिलता। कर्ज एक प्रकार से जीवितावस्था का ही नरक समझना चाहिए! मर भले ही जायँ परन्तु कर्ज नही लेना चाहिए। उपवास कर लिया जाय, परन्तु कर्ज न लिया जाय। ऋण के द्वारा केवल एक ही बार सुख प्राप्त होता है; और वह ऋण लेते समय ही। इसके बाद तो वह हमेशा ही रुलाता रहता है, भिखारी बना देता है। कर्ज के कारण स्वाभिमान नष्ट होता है, इज्जत बिगड़ती है। कर्जदार की गर्दन हमेशा नीची रहती है। कर्ज का अर्थ है दब्बूपन, दीनता, किम्बहुना एक प्रकार की आत्महत्या!

साहूकार का आदमी! पिताजी उसकी पूरी-पूरी खातिरदारी कर रहे थे। घर मे माता को उन्होने अच्छी-सी भाजी बनाने के लिए कहा, और केल के पत्ते वे खुद ही जाकर ले आये थे। माता को यह सूचना दे कर कि 'अच्छी कढी बनाना और उसमे मीठा नीम डालना, जिससे कि स्वाद के ही साथ-साथ उसमे सुगन्ध भी आ सके'—पिताजी खेत पर चले गये। वह आदमी बाहर चबूतरे पर बैठा हुआ था। माता ने उसे चाय बना कर दी।

घर मे चाय समाप्त हो जाने के कारण वह पडौस से माँगकर लाई। चाय पिलाने के वाद माता ने उस के स्नान के लिए गर्म पानी ले जाकर रक्खा। उसने स्नान किया; किन्तु अपनी धोती तक उसने नही धोई। साहूकार का नौकर जो ठहरा! धनवानो के कुत्ते को भी घमड रहता है। श्रीमानो के कुत्ते को भी गरीवो को चूमना पड़ता है। एकवार एक किसान को किसी धनवान का कुत्ता काटने दौडा। इस पर उसने एक लाठी मार दी। उस मालदार ने गरीव किसान पर मुकदमा चलाया; और वेचारे किसान को २५ रुपये जुर्माना देना पड़ा। यह वात मैने कही पढी थी! किसान वेचारा; वह भी क्या कोई मनुष्य होता है? सारे ससार के लिए मरने-खपने वाला किसान गुलाम, और इन तमाम चैन उड़ानेवालो को पालने वाला वह अन्न-दाता किसान पशु समझा जाता है। इतने पर भी वह धनाढ्यो के कुत्ते को मारने की हिम्मत करता है! मित्रो! इस भारतवर्ष मे पशु-पक्षियो को भी मनुष्य की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त होता है। मदिर मे कुत्ते, कव्वे जा सकते है, घर में तोते-मैना रह सकते है, किन्तु दो हाथ पॉव वाला भगवान का भक्त हरिजन नही जा सकता! पशु-पक्षियो से प्रेम करने और मानव-प्राणी से घृणा करने वाले नराधम जहा है, वहां सुख-सौभाग्य और स्वतंत्रता कैसे निवास कर सकते है?

उस साहूकार के नौकर की वह धोती मेरी माता को धोनी पड़ी। मेरी पुण्यशीला माता के हाथ से वह अमगल वस्त्र धोया गया! संभव है ईश्वर का यह उद्देश्य हो कि इस रूप मे मेरी माता का मगलमय हाथ लग-कर उस धोती को पहनने वाला पवित्र हो सके! ईश्वर के उद्देश्य को समझ सकना असंभव होता है, वे कल्पनातीत होते है। वह शुद्धि का कार्य कहा किस के द्वारा करा लेगा; इसका कोई नियम ही नही है।

मेरे पिता ने खेत पर से वापस आते ही सेठजी के गुमाश्ते से पूछा "तुमने स्नानादि कर लिया?" उसने 'हा' कहा और साथ ही अपने आने का उद्देश्य वतलाते हुए उसने यह भी कहा कि "मै वड़ी देर से तुम्हारी राह देख रहा हूं। तुम्हे सव प्रकार हिसाव समझा कर रुपया लेने के वाद आज ही शाम को मुझे विसापुर पहुँच जाना है। रातभर वही रहूगा।"

पिताजी ने कहा "अच्छी बात है, मैं अभी स्नान-संध्यादि से निवृत्त हो लेता हू; तब तक आप विश्राम कीजिये ।"

इसके बाद वे स्नान के लिए चले गये। स्नानादि से निपट पूजन करते हुए उन्होने मेरी माता से धीरे से पूछा "तूने उन्हे चाय आदि पीने को दी या नही ? घर मे न हो तो कही से लाकर देनी चाहिए थी !"

माता ने कहा "मैंने सब कुछ कर दिया है। उसकी धोती तक धो कर सूखने को फैला दी है। जैसे भी हो, इस बला को यहा से शीघ्र टालो !"

माता त्रस्त हो गई थी, वह संतप्त हो रही थी, किन्तु पिताजी उसी शात-भाव से अपने पूजनादि कार्य मे लगे हुए थे। यद्यपि बाहर से तो वे शात दिखाई देते थे, किन्तु उनके चित्त की खिन्नता मुख पर से प्रकट हो ही जाती थी। घर के देव-पूजन से निपट पिताजी मदिर मे गये और इधर माता ने भोजन के आसन एव जल-पात्रादि रख दिये ! छोटा भाई पुरुषोत्तम भी स्कूल से आ गया था, उसने थालिया रखी। थोड़ी ही देर मे पिताजी मंदिर मे से लौट आये। इसके बाद उन्होने कहा "उठो, वामनराव हाथ-पैर धो लो।" पुरुषोत्तम ने उनके पैर धुलाये।

तब पिताजी बोले "आओ, यहा बैठो, यदि सोला (मुकटा) न हो तो भी हानि नही। आओ, बैठ जाओ। हमे इसमें कोई अड़चन न होगी।" जो पिताजी हमे बिना रेशमी मुकटे के पक्ति मे पाँव तक न रखने देते थे; उन्होंने आज धोती पहने हुए व्यक्ति को अपने पास बैठा लिया। मानो वह साहूकार का गुमास्ता कोई देवता ही न हो ! उसकी हांजी-हाजी करना, उसका बढा-चढा कर मान करना मात्र ही पिताजी का काम था। क्या करते बेचारे ! इतना दब्बूपन, यह तेजोभंग और यह सत्त्व-हानि किस कारण हुई? एक मात्र कर्ज-ऋण लेने से ही। कर्ज भी क्यो बढा ? व्याह-शादी और यज्ञोपवीतादि के समय मनमाना खर्च करने, पूर्व-गौरव के अनुरूप ठाटपाट से रहने के मिथ्या-कुलाभिमान के कारण, बिस्तर देख कर पैर न फैलाने से, झगड़े-झझट, भाईबन्दी, कचहरियो के द्वार खटखटाने और कर्ज चुकाने की चिंता न रखने से वह पाप-ऋण का भार छाती पर बढता जा रहा था। फिर भी जमीन का मोह नही छूटने से यह दुर्गति हो रही थी। मित्रो ! यदि तुम अपने बाल-बच्चो की इज्जत को मिट्टी मे न मिलाना चाहते हो;

तो इस कर्ज-ऋण-रूपी राक्षस से हमेशा वचते हुए रहना। यदि दुर्भाग्य से थोडा-सा भी कर्ज हो जाय तो उसे खेत-पात या जर-जेवर वेचकर चुका देना। ऋण-मुक्त होकर सुख की नीद सोना।

भोजन परोसा जाने के वाद वामनराव और पिताजी भोजन करने लगे। थोड़ी ही देर के वाद पिताजी ने पुरुषोत्तम से कहा "कोअी अच्छासा श्लोक सुना; जिस से वामनरावजी तुझे शावाशी दे सके," यह सुन पुरुषोत्तम ने श्लोक सुनाया, परतु उसे शावाशी देने जितना उदार अंत.करण वामनराव का नही था। साहूकार की नौकरी करते हुए वे भी निष्प्रेम और अनुदार हो चले थे। उनमे भी झूठी ठसक वढती जा रही थी।

"सकोच मत करो वामनराव! एक रोटी और लो, कढी तो वहुत अच्छी वनी है। अरी, इन्हे कढी परोस।" यो कहकर पिताजी ने सव प्रकार आग्रह-पूर्वक भोजन कराया। किन्तु वामनराव के मुँह से एक अक्षर भी न निकल रहा था। सभव है कि उसे यह सीधा-साधा भोजन पसद भी न आया हो। क्योकि उसमे कोई चटपटापन नही था। अत मे भोजन समाप्त होने पर हाथ-मुँह धोकर पिताजी वामनराव के साथ वाहर चवूतरे पर जा वैठे, उन्हे लौंग-सुपारी आदि दिये गये। इसके वाद पीने के लिए ताजा पानी माँगने पर पुरुषोत्तम लोटा-डोर लेकर कुए पर गया, और वहा से अच्छा ठढा जल लाकर उसने वामनराव को पिलाया। उधर घर मे माता भोजन करने के लिए वैठी।

"हा, तो भाऊराव, अब क्या विचार है। व्याज (सूद) के रुपये चुका दो। तुमने आज का वायदा किया था। आज कम से कम पचहत्तर रुपये तो तुम्हे देना ही चाहिए। मेरा चक्कर व्यर्थ न जाय। तुम्हीने आज आने के लिए कहा था, इस लिए आया हू।"

इस प्रकार वामनराव का तकाजा सुनकर पिताजी ने कहा "सुनो भाई वामनराव! दस मन चावल (धान) पैदा हुआ था, वह सव वेच दिया, उससे कुछ रुपये आये। कुछ कुटकी-कोदो आदि थे, वे भी विक गये। इस प्रकार इधर-उधर से जुटाकर पूरे पच्चीस रुपये मैंने तुम्हारे लिए रख छोड़े है। आज इतने ही ले जाइये। सेठजी को हमारी हालत समझा दीजिये; उनसे दो चार शब्द हमारे हित के कहिये और

विश्वास दिलाइये कि उनका कर्ज डूबेगा नही । धीरे-धीरे सब चुका दिया जायगा । जरा बच्चो को पढ-लिखकर होशियार होने दो, उनके काम-धधे से लगते ही पाई-पाई बेबाक की जा सकेगी। एक तो इस वर्ष प्रि-मेट्रिक मे पहुँच गया है, दूसरा भी रास्ते लग चला है। वामनराव ! गोबर के कीडे गोबर मे ही हमेशा थोड़े पड़े रहते है ? वे भी बाहर निकलते ही है । इस प्रकार पिताजी उसे समझा रहे थे ।

किन्तु उस कठोर अत करण वाले पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह कहने लगा " मै इन बातो को सुनना नही चाहता । बिना पैसा लिये मैं कभी दर्वाजे पर से नही हटूगा । यह नया मकान बनाने के लिए तो तुम्हारे पास पैसे है, लडको को अंगरेजी स्कूल मे पढ़ाने के लिए पैसे है, और केवल साहूकार को देने के लिए तुम्हारे पास पैसे नही ! अजी, अगर साहूकार का सूद वसूल करके हम न लावे तो हमे वेतन ही कहा से मिल सकता है ? मैं कोई भी बहाना नही सुन सकता। मुझे भी तो मालिक के सामने जाकर खडा होते हुए शर्म लगती है।" वह इस प्रकार चिढकर बकवाद कर रहा था। और इसमे उसका दोष ही क्या था ? वह भी तो आखिर सेठजी का गुलाम ही था !

पिताजी ने फिर अत्यत नम्रतापूर्वक किन्तु लज्जित होते हुए कहा " वामनराव, मै तुमसे क्या कहू ? यह भी क्या कोई घर है ? ईंटे जोड़ कर खपरैल से छायी हुई मढैया है ? उसका बहुत आग्रह देखकर यह झोपडी खड़ी करनी पडी। केवल गौशाला जैसा ही तो है। और इस छोटी-सी कुटिया के बनवाने मे भी उस बेचारी के हाथ की सोने की पटलिया (चूड़ी) बेचनी पड़ी । वही एकमात्र उसके पिता के घर का आभूषण बचा था ।"

इस प्रकार पिताजी उधर बाहर उसकी खुशामद कर रहे थे, इधर घर मे माँ के नेत्रो से थाली के भात मे आंसू टपक रहे थे। उसके पेट मे दु ख समा न सकता था । भात गले से नीचे नही उतर रहा था ।

इतने पर भी वामनराव ने निर्लज्जता-पूर्वक कहा "घर बाँधने के लिए यदि सोने की पटलियां बेच दीं, तो साहूकार के पैसे के लिए औरत को बेच दो!"

इतना सुनते ही माँ एकदम बिजली की तरह उठ खड़ी हुई; और

मोरी पर हाथ धो कर वह वाहर आई ! उसके नेत्रो से उस समय मानो शोक-सताप की चिन्गारिया-सी बरस रही थी। वह थरथर कांप रही थी। चवूतरे के पास दर्वाजे मे खड़े होकर उसने गुस्से से कहा "इस चवूतरे पर से उतर कर इसी क्षण चले जाओ! औरत बेचने की बात कहते तुम्हे शरम नही आती? तुम्हारी जीभ मे कोई हड्डी भी है या नही? तुम्हारे भी बालबच्चे है या नही? जाओ, एकदम यहां से उठकर चले जाओ, और तुम्हारे साहूकार को कह दो कि वह भले ही घर-द्वार नीलाम करा दे, लेकिन इस तरह अपमान कराने का उसे कोई अधिकार नही है। खुशी से ढिढोरा पिटवावे और जप्ती लावे, लेकिन बाल-बच्चो के सामने ऐसे दुर्वचन हम कभी नही सुन सकते।"

"ठीक है, हम भी तो यही रास्ता देख रहे थे। इसी महिने में यदि तुम्हारे घर-द्वार की जप्ती न हुई तो मेरा नाम वामनराव नही! एक औरत की जात, और वह हमारा इस प्रकार अपमान कर दे!" इस प्रकार उसने पिताजी को लक्ष्य करके कहा।

पिताजी नाराज हो कर माता से बोले "तू घर में बैठ! जाती है या नही?" बेचारी मॉं चुपचाप घर मे आकर रोने लगी। आसूं बहाने के सिवाय उसके पास दूसरा उपाय ही क्या था? इधर बाहर चवूतरे पर पिताजी वामनराव को खुशामद और नम्रता से समझा रहे थे! अत मे बड़ी मुश्किल में हा-नां करते-करते पिताजी के दिये हुए पच्चीस रुपये लेकर वह बिदा हुआ।

पिताजी घर मे आकर फिर माता के प्रति खिन्न होते हुए कहने लगे "तुम स्त्रियो मे एक कौडी की भी बुद्धि नही होती। तुम जरा भी किसी बात को सोचने-समझने का यत्न नही करती। सवेरे से मैं कितनी सावधानी के साथ उस से बरत रहा था! उसके मन को विश्वास दिला रहा था। तुम्हारा काम तो बस केवल चूल्हा फूँकते रहना ही है। कल की मौत को तुम आज ही बुला लेना जानती हो। गुस्सा करने से क्या कोई काम बनता है? दूसरे को तो मीठी वाणी सेही वश मे करना पड़ता है। हमारी कैसी खीचतान होती होगी, इसकी तुम्हे क्या कल्पना?"

"किन्तु पद-पद पर अपमान कराते रहने से तो आज ही मर जाना

क्या बुरा है ? कुत्ते की तरह दुत्कारे जाने वाले जीवन से क्या लाभ ? ऐसे जीवन से तो कल की अपेक्षा आज ही मर जाना अच्छा है। लाने दो उसे जप्ती, होने दो नीलाम । हम भी लोगो की मजदूरी कर के पेट भरेगे ! अपनी मथुरी के पड़ौस मे रहने चले जाएँगे । एक मजदूर भी इस प्रकार की अभद्र वाणी, ऐसे घृणित वचन नही सुनेगा ! चलो, हम भी मेहनत मजदूरी करे, जमीन पर सोएँ, झरने का पानी पिये, वृक्षो की पत्तिया तोड़कर चबावे । " माता भावावेश मे आकर ये सब बाते कह रही थी।

किन्तु पिताजी यह कह कर बाहर चले गये कि "बोलना सहज है, करना बहुत कठिन होता है । दो पहर मे जब धूप सिर पर आवेगी; तब सब बाते मालूम होने लगेगी । "

छोटे भाई माँ के पास आ कर कहने लगे "माँ, रोए मत । तू जब रोने लगती है तो हमे भी रोना आ जाता है । माँ, तू जो काम हमे बतलाएगी वह सब हम करेगे । परतु माँ तू रो मत ..."

छोटे बच्चे अपनी बडी माँ को समझा रहे थे · फूल वृक्ष को सहारा दे रहे थे । इस प्रकार वह अत्यत करुणा-जनक दृश्य था ।

---

३४ गरीब के मनोरथ

श्याम उन दिनो कुछ खिन्न दिखाई देता था । कही उसकी माता की स्मृति का तो यह परिणाम नही था ? माता का दुखी और कष्टमय जीवन तो उसके मनश्चक्षुओ के सम्मुख आ कर खड़ा नही हो गया था, और इसी कारण तो उसका अत करण विदीर्ण नही हो रहा था ?

दूसरे दिन राम ने उससे पूछा "श्याम ! आज-कल तेरे मुख-मण्डल पर हास्य की रेखा नही दिखाई देती ? तू निरन्तर उदास क्यो दिखाई देता है ? तेरे मन को कौन से विचार कष्ट दे रहे है ?"

" राम ! हमारे देश मे अपरपार दु.ख, दीनता और दरिद्रता फैली हुई है । मै जो अपनी माता के सस्मरण सुनाता हू, वे भी एक प्रकार से मानो अपनी भारत-माता के ही है । वह भारत-माता दीनता, दासता और ऋण (कर्ज) के सागर में डूब रही है । उसके पुत्रो को इस समय खाने को नही मिलता, पीने और पहनने को नही मिलता, उद्योग-धधा नही मिलता, शिक्षा-दीक्षा द्वारा ज्ञानवृद्धि का साधन नही मिलता । इन सब बातो का विचार कर के मेरा हृदय टूटने लगता है ! यह करुण-दृश्य इन आँखो से नही देखा जा सकता । मेरी छाती फटने लगती है । परतत्रता ने भारत को कितनी हानि पहुँचाई है ! जहा-तहा कर्ज, अकाल और रोग फैले हुए है । छोटे छोटे बच्चे जन्म लेते ही मर जाते है । किसी के भी मुँहपर तेज या चमक नही, कही भी उत्साह नही दिखाई देता । मानो जीवन का सारा श्रोत ही सूख गया है । परतत्रता सर्वभक्षक है, गुलामी सर्वसहारक है । भारत मे आज मरण है, जीवन नही, शोक है, आनद नही; अज्ञान है, ज्ञान नही; सकुचित भाव है, उदारता नही, कृतघ्नता है, कृतज्ञता नही; लोभ (मोह) है, प्रेम नही; पशुत्व है, मनुष्यता नही; अँधेरा है, उजेला नही, अधर्म है, धर्म नही; भय है, निर्भयता नही; बन्धन है, मुक्तता नही; रूढी है, विचार नही । यह विराट् दु ख, सर्वव्यापी क्लेश मेरे छोटे से अत.करण की, होली कर के उसे राख मे मिला रहा है । मेरी माँ की तरह लाखो माताएँ इस देश में विलख रही है । उनके स्वर्गमय जीवन मिट्टी मे मिल रहे है । ऐसी दशा मे यदि मै उदास न होऊँ तो और क्या कर सकता हू ?"

यो कह कर वह चुप हो गया । थोडी देर के बाद राम ने फिर कहा, " श्याम ! दु ख को देख कर उसे दूर करने के लिए उठ खड़े होना चाहिए; अँधेरा देख कर प्रकाश लाने का प्रयत्न करना चाहिए ! बंधन देख कर उन्हे तोड़ने का उद्योग करना चाहिए । किन्तु निराश नही होना चाहिए । वीर पुरुष के सामने जितने अधिक सकट आते है; उतना ही उसका बल बढ़ता है, स्फूर्ति आती और वह वीरता से उनका सामना करता है ।"

" परतु मै तो वीर नही हू । हा, तुम लोग अवश्य वीर हो; और इसी लिए मुझे तुमसे ईर्ष्या होती है । निराश न हो कर तुम्हारी तरह निरन्तर उद्योग करने की इच्छा मुझे भी होती है, किन्तु मेरी आशा का तंतु थोडी

ही देर में टूट जाता है। मेरी ऐंठ क्षणिक होती है। वह सजीव आशा-रूप नही होती।" इस प्रकार श्याम ने उत्तर दिया।

तब राम ने फिर कहा "किन्तु निराश होने का अर्थ है ईश्वर को भूल जाना। निराशा का अर्थ है नास्तिकता। अत मे सब अच्छा ही होगा, अंधेरे में से ही उजेला भी आवेगा। इस प्रकार के भाव रखने का नाम ही आस्तिकता है।"

"परतु निशा (रात) मे अवसान के पश्चात् आई हुई उषा भी फिर निशा ही मे तो परिणत होगी। ससार तो जहा का तहां है। इस संसार मे क्या सुधार हो रहा है; यह मेरी समझ मे नही आता। जाने दो इन बातो को। व्यर्थ गहरे मे जाने से क्या लाभ? हम से जो कुछ हो सके, वही करना चाहिए। रास्ते से पत्थर हटाना और कांटे दूर फेंकना, फल-फूल के वृक्ष लगाना, रास्ते साफ करना, लोगो से मीठे शब्द बोलना, उनसे हँसना और मिलना-जुलना, बीमारो के पास बैठ कर उनकी सेवा करना, रोने वाले के आँसू पोछना, ये भी कुछ कम महत्त्व के काम नही है। दो दिन तो ससार मे जीना है। मुझ जैसा व्यक्ति इससे अधिक और कर ही क्या सकता है? इस फ` हुए आकाश मे मुझ जैसा दुर्बल व्यक्ति कहा तक पेवद लगाता रहेगा?" इस प्रकार श्याम के स्वर मे निराशा झलक रही थी।

राम ने फिर कहा "अरे, हम संघटन करेगे। नये विचार फैलाएँगे। देश की दरिद्रता मिटा कर उसे सुखी बनाएँगे। मेरे तो रोम-रोम मे आशा नाच रही है श्याम!"

इतने ही मे प्रार्थना की घटी बजी और बात-चीत वही रुक गई। प्रार्थना-मदिर मे सब लोग एकत्रित हो गये। वहा उस समय पूर्ण शाति थी। आज राम एक अच्छा-सा भजन सुनाने वाला था। गीता मे वर्णित 'स्थित-प्रज्ञ' के लक्षण वाली प्रार्थना और नमस्कार हो जाने के बाद राम ने भजन गाना आरंभ किया।

उसने आशा का दिव्य-गीत गाया, जिससे श्याम के होटो पर एक अस्पष्ट हास्य खेलने लगा। एक विशेप अवसर पर श्याम ने ही उस गीत की रचना की थी। किन्तु वह दिव्य, अदम्य आशावाद आज उसमे कहाँ था?

श्याम मानो इस समय आशा-निराशा के द्वंद्व-युद्ध का केन्द्रस्थान हो रहा था। आज हँसता तो कल रोने लगता, आज उछल-कूद मचाता तो कल चुपचाप पड रहता। श्याम इस समय पहेली वन रहा था।

प्रार्थना समाप्त होने के बाद श्याम की कहानी सुनाने की बारी आई। श्याम कहने लगा :—मित्रो ! दापोली से निराश हो कर मैं घर गया था। उस दिन माता से कुछ सान्त्वना पाने के लिए मैं पालगढ़ गया था।

घर जाकर मैंने माता से कहा "माँ, अब इस स्कूल मे पढ़ना अशक्य हो गया है। पिताजी फीस के पैसे नही देते; और स्कूल मे फीस माफ नही होती। बतला तो, अब मै क्या करूं ? पिताजी कहते है स्कूल मे असमर्थ-विद्यार्थी के रूप में खड़े रहो। इस पर जब मैं फीस माफ कराने को खड़ा होता हूं; तो मास्टर कहते है 'अरे श्याम, क्या तू गरीब है ? बैठ जा नीचे!' माँ, किसी समय हम धनवान थे, यह बात तो लोगों को मालूम है; किन्तु आज हमारे घर मे खाने को भी नही, यह बात वे नहीं जानते। कहने पर विश्वास नही करते। क्लास के लडके हँसते है। मैं नीचे बैठ जाता हूँ।"

इस पर माता ने शांत-भाव से कहा "श्याम ! तुझे अब स्कूल छोड़ देना चाहिए।"

"माँ, अभी तो मैंने पांचवी कक्षा ही पास की है। अभी से स्कूल छोडकर मैं क्या कर सकूगा ? आज मेरा क्या उपयोग है ? मैं आज क्या कमा सकता हूं ?" इस प्रकार मैंने माता से पूछा।

इस पर उसने कहा "वे तुझे कही रेल्वे में लगा देने की बात कह रहे थ। वे भी क्या कर सकते हैं ? तुझे फीस देनी पड़ती है, वे घर में झुँझलाते रहते हैं। इस लिए स्कूल छोड़ना ही अच्छा है। कहीं नौकरी मिले तो कर ले।"

"किन्तु माँ, क्या मै अभी से नौकरी करने लग जाऊं ? क्या इस अवस्था से ही मैं नौकरी का भुनगा अपने पीछे लगा लू ? माँ मेरी कैसी ऊंची उड़ान, कितने विशाल मनोरथ और कैसे-कैसे सुन्दर सुखस्वप्न थे ! मैं खूब पढूंगा, कवि बनूगा, ग्रंथकार बनूगा, तुझे सुखी करूगा ! तब क्या मैं अपनी इन सब आशाओ पर पानी फेर दू ? सारे मनोरथ मिट्टी मे मिला

दू ?" उस समय मै मानो कवि बनकर ही ये सब बाते कर रहा था। भावना ही मुझसे यह सब कहलवा रही थी, वही मेरे होठो को हिला रही थी।

"श्याम! गरीबो के मनोरथो को प्राय. मिट्टी में ही मिलना पडता है। गरीबो के स्वाभिमान को अधिकतर धूल मे ही समाना पड़ता है। गरीबो को जो कुछ भी सामने आवे वह सब काम करना पड़ता है। बगीचे की कई कलियो को कीडे ही खा जाते है!" इस प्रकार माता मुझे समझा रही थी।

"किन्तु माँ, मुझे बहुत बुरा लगता है। क्या मेरे लिए तुझे कोई दुख नही होता ? क्या तू यह चाहती है कि तेरे प्यारे श्याम का जीवन इस प्रकार असमय ही धूल मे मिल जाय? क्या तू नही चाहती कि मै बडा बनू ?"

माँ ने कहा "बेटा, मै जरूर चाहती हू कि तुम बड़े बनो, परन्तु पिता को चिंता मे डाल कर, उनके अंत करण को कष्टमय बनाकर बड़े मत बनो। अपने पैरो पर खडे हो कर यदि बडे बन सकते हो तो मै नही रोकती! यदि पिता पर आधार रख कर रहना है; तो उनकी इच्छानुसार बरतना चहिए।"

"तो माँ अब मैं क्या करूं? मुझे कोई मार्ग तो दिखला! आज तक तूने ही तो मुझे सब बाते सिखाई है। अब भी तूही बतला, मै क्या करूं?"

"माँ-बाप को छोड कर ध्रुव वन मे चला गया, घर-द्वार छोड़ कर उसने जंगल का रास्ता पकड़ा। ईश्वर पर और साथ ही अपने आप पर विश्वास रख कर वह तपस्या करने चल दिया, उसी तरह तू भी घर छोड कर चल दे। बाहर के विशाल—जगत मे पहुँच जा! ध्रुव ने ईश्वर के लिए जैसे तपस्या की और उपवास किये, उसी प्रकार तू भी विद्या-प्राप्ति के लिए उद्योग कर। बिना तप किये फल कैसे मिल सकता है? इस लिए जा, और अपने पैरो पर खडा होना सीख। भूख-प्यास सहन कर, कष्ट उठा कर विद्या प्राप्त कर। बड़ा हो कर, विद्यावान बन कर घर आ! हमारा आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ है ही। कही भी रहने पर मन से तो मै तेरे पास रहूगी ही। इससे अधिक मै क्या कहूं?" इस प्रकार माता ने स्वावलम्बन का उपदेश दिया। मेरी सुप्त मनोवृत्ति को जगाया।

"तो माँ, क्या मैं सचमुच ही चला जाऊ ? तूने मेरे मन की ही बात कही है। और ठीक भी है। मेरे मन मे भी तो तू ही है, इसी लिए इस अंत करण की सब बाते तू जानती है! माँ, उधर सातारा के पास औंध नाम का एक राज्य है। वहा पढाई की फीस आदि बहुत कम है। क्या मैं वहा चला जाऊ? मधुकरी माग कर पेट भर लिया करूगा। उस दूर के गाँव मे मेरी दशा पर कौन हँस सकता है? वहा मुझे कौन पहचानता है? किसी के भी घर जाकर जो काम बतलाया जायगा, वह करूगा। तूने काम करने की आदत मुझे लगा ही दी है। जान-पहचान के लोगो से दूर होने पर फिर कोई शर्म नही! माँ, फिर मैं जाऊं नँ?"

"अवश्य जा बेटा! मधुकरी माँगना कोई बुरी बात नही है। खास-कर विद्यार्थी के लिए तो उसमें कुछ भी दोष नही है। हां, आलसी मनुष्य के लिए भीख माँगना पाप है। जा, श्याम! गरीब विद्यार्थियो के लिए ही तो मधुकरी माँगने की आज्ञा है। किसी भी प्रकार से रहना, किन्तु चोरी-चुगली मत करना। पाप से बचना, सत्यवादिता को न छोडना; हा अन्य सब प्रकार के दुरभिमान से अवश्य मुँह मोड़ लेना। जो कुछ अपने से दूसरे को मदद दी जा सके, उससे कभी पीछे मत हटना। सबसे मीठा बोलना और हँस-मुख रहना। यदि जीभ मे मिठास हो तो संसार मे कुछ भी दुर्लभ नही है। मित्र-मडली बनाना, किसी से भी अपमान-कारक या ओछे वचन मत कहना, किसी का भी हृदय मत दुखाना। परिश्रम-पूर्वक अध्ययन करना और माता-पिता को स्मरण रखना, भाई-बहन को याद करते रहना। इन सब की याद रहना अच्छा है। यह स्मृति ही प्रत्येक कष्ट से तुझे तार सकेगी; तुझे सन्मार्ग पर लगाये रक्खेगी। जा बेटा, मेरी ओर से तुझे आज्ञा है। ध्रुव ने भगवान के दर्शन होने पर जैसे माता-पिता का उद्धार किया; उसी प्रकार तू भी विद्यादेवी को प्रसन्न कर हमारा उद्धार कर।"

इस प्रकार उत्साह-वर्धक शब्दो द्वारा माता मुझे 'तारक-मंत्र' प्रदान कर रही थी। मैंने कहा "माँ, तू पिताजी को समझा कर उनसे भी आज्ञा दिला दे!"

"हा, मै उनसे भी आज्ञा दिलवा दूगी, निश्चिंत रह। वे खुद ही इसी आशय के शब्द कह रहे थे।" इस प्रकार माता ने आश्वासन दिया।

रात को भोजन हो रहा था । सूखे आम की लौजी बनाई गई थी। कुलित्थ का बेसन बना था । उसी समय माता ने कहा "यह श्याम, कही दूर पढने के लिए जाना चाहता है, इसे जाने देना चाहिए।"

"कहा जावेगा ? वहा भी तो पैसे भेजने पडेगे ? आज तो नक्द एक पैसा निकाल कर देना भी मेरे लिए असभव हो गया है । किसी समय इन हाथो से हजारो रुपये गिने थे, किन्तु आज उसकी याद से क्या लाभ ? मेरी तो बुद्धि ही कुछ काम नही करती ! मै लाचार हो रहा हू । क्या मै कभी यह चाहूगा कि लड़के खूब पढे-लिखे नही ! अपने होनहार, बुद्धिमान एवं गुणी और श्रमशील पुत्रो को न पढाने की बात कौन अभागा बाप सोच सकता है ? किन्तु क्या करू ! मै सब तरह लाचार हू ।" इस प्रकार पिताजी ने खिन्न होकर कहा ।

इस पर माता ने कहा 'यह जहा जाना चाहता है, वहा आप को कुछ भी नही भेजना पड़ेगा । वहाँ शिक्षा प्राय मुफ्त ही मिलती है । यह वहा मधुकरी माँगकर निर्वाह करेगा । केवल वहा तक पहुँचने के लिए दस रुपये की आवश्यकता है ।"

"कोई हानि नही । अपनी हिम्मत पर यह कही भी पढ़ सकता है। यह नौकरी ही करे, ऐसा मै आग्रह नही करता। केवल अब मैं पढाई के लिए पैसा खर्च करने मे असमर्थ हू । यही एक मात्र कठिनाई है। किन्तु यह जाता है तो मेरा हृदय से आशीर्वाद है।" पिताजी ने कहा।

इसके बाद भोजन समाप्त हो जाने पर मै बैठा हुआ माँ से बातें कर रहा था । बीच ही मे पुरुषोत्तम पूछ बैठा "क्यो ! माँ; अब दादा दूर चला जायगा और जल्दी से वापस नही आवेगा ?" उसको समझाते हुए माता ने कहा "हा बेटा, यह खुद पढ-लिख कर फिर तुम्हे पढावेगा। तुम पढ लिख सको, इसी लिए यह बाहर दूर जा रहा है ।"

अत मे मेरा औंध जाना निश्चित हो गया।

पिताजी ने अच्छा-सा दिन-मुहूर्त निकाला । जैसे-जैसे वह दिन निकट आ रहा था, वैसे-वैसे मेरे हृदय की व्यग्रता बढती जा रही थी। अब मैं बारम्बार माता से मिलने थोड़े ही आ सकता था ? इतने दिनो तक तो उसके पास ही था । पक्षी की तरह जरा-भी जी अकुलाया कि

फुर्र से उड़कर मैं माता के पास आ जाता था। किन्तु अब तो मैं बहुत दूर जाने वाला था। माता की सेवा करने, उसकी कृपादृष्टि का अमृत-पान करने के लिए मैं जैसे प्रत्येक शनिवार और रविवार तक को घर चला आता था, वह सौभाग्य अब मेरे लिए अलभ्य हो रहा था। अब तो मेरे लिए बड़ी-बड़ी छुट्टियों में भी घर आ सकना असभव होने को था। बिना पैसे के कहीं आना-जाना क्यों कर हो सकता है? प्रत्येक काम में तो पैसे पहले गिनने पड़ते हैं! मेरे लिए दस रुपये का प्रबध करने मे पिताजी को कितने ही घरो के द्वार देखने पडे, कई मामूली व्यक्तियों की खुशामद करनी पड़ी। किन्तु मैं पढने के लिए जा रहा था, आगे चल कर माता-पिता को सुखी करने के उद्देश्य से जा रहा था; माता की सेवा के लिए अधिक योग्य बनने को जा रहा था। यही एक विचार था जो मुझे धैर्य दे रहा था, नेत्रो के आँसुओं को रोक रहा था। किन्तु मेरे दूर चले जाने पर माता की सेवा के लिए कौन आ सकता था? छुट्टी में उसके हाथ-पाँव कौन दबाने वाला था? अब माँ किस से कहेगी 'श्याम! तेरे हाथ कितने ठडे हैं। जरा मेरे सिर पर तो रख! मेरा कपाल ऐसा तप रहा है मानो गर्म तवा ही न हो।' अब उसकी साड़ी कौन धोकर लावेगा? भोजन के समय उसके पास बैठ कर बातें करते हुए दो-चार ग्रास अधिक खिलाने का प्रयत्न कौन करेगा? चक्की पीसते समय कौन उसको सहायता देगा! बाहर से इधन लाकर कौन उसे देगा? 'माँ, मैं यह दूध का तपैला भर कर रख देता हू' इस प्रकार कौन कहेगा? और आँगन लीपने के लिए गोबर लाकर कौन देगा? कुए पर से घडे और मटकिया भर कर कौन लावेगा? घर आने पर तो मै माँ की इन सब कामो मे मदद करता था। किन्तु अब कब वापस आ सकूगा, इसका कोई निश्चय नही था। किन्तु मैं कौन माता को सुख देने वाला? मैं कौन हो सकता था? मुझे क्यो इस बात का अभिमान होना चाहिए? वह परमात्मा ही तो सब कुछ कर्ता-धर्ता है! वही तो सारे ससार का माता-पिता है। उसीको सबकी चिंता है। ईश्वर ही सब पर दया करता और वही सबकी सार-सभाल

रखता है ! मेरी माता के अविचल विश्वास का आधार भी तो वही है । बस एक वही !

मेरे कपड़े-लत्ते और बिस्तर बँध रहे थे । रात ही को बैलगाडी से मैं जा रहा था। आज ही रात को मैं जानेवाला था। हां, आज ही रात को मैं अपनी स्नेहमयी माता को छोड़ कर जा रहा था । माता ने दो अच्छी साफ गुदड़िया निकाली और एक कंबल। मैने कहा "माँ, कंबल की मेरे लिए क्या आवश्यकता है ? एक टाट का टुकड़ा नीचे बिछा लूगा। एक गुदडियां बिछाने को हो जायगी और दूसरी ओढने को। तुझे जब ठण्ड देकर बुखार आवे, तब ओढने के लिए कबल रहने दे। मुझे उसकी जरूरत नही है।"

"श्याम! तू परदेश जा रहा है। वहा कोई जान-पहचान का व्यक्ति भी नही है। ईश्वर न करे और यदि बीमार हो जाय या और कोई कष्ट हो; तो उस समय कबल काम देगा। इस लिए रहने दे श्याम, हमारा तो यहा किसी तरह काम चल जायगा। मेरी बात मान बेटा!"

यों कह कर माता ने वह कबल भी मेरे बिस्तर में बाँध दिया। थोड़ा-सा चिवड़ा बना कर रास्ते मे खाने के लिए बाँध दिया। सर्दी के दिनो मे होंट न फट जायँ, इस लिए अमचूर के तैल का टुकड़ा भी दे दिया। जहाज में समुद्री हवा से कष्ट न हो, इस लिए आँवले की चार बर्फी भी बाँध दी । चार भिलावे भी पास रखने को कहा और लाकर मुझे दे दिये। मेरी वह प्रेममयी, श्रमशील, कष्ट-सहिष्णु माता! छोटी-छोटी बातो पर भी उसका ध्यान था।

रात को नौ बजे ही गाडी आने वाली थी। ज्यो-त्यो कर के भोजन किया। पेट तो वैसे ही भर गया था। माता ने भात पर दही परोसा और भोजन समाप्त कर मैं उठ खडा हुआ। थोडी देर ठहरने के बाद गाडी आ गई। पिताजी ने मेरा सामान ले जाकर गाड़ी में रख दिया। इधर मैंने छोटे भाई को समझाना शुरू किया "पुरुषोत्तम, अब तू बातबात में हठ कर के मत बैठ जाना। अब माँ के हर काम मे मदद करना; हो भैया ! अब माँ के लिए तू ही सहारा है।" इस प्रकार उपदेश दे कर उसकी पीठ पर मैंने प्रेम से हाथ फेरा। इसके बाद देवता को प्रणाम किया और

माता की दी हुई सुपारी उनके सामने भेंट चढाई! तत्पश्चात् पिताजी को प्रणाम किया। उन्होंने प्रेम से मेरी पीठ पर हाथ फेर कर मन ही मन आशीर्वाद दिया: किन्तु मुँह से कुछ भी न बोल सके। इसके बाद जब माता के चरणों में मस्तक रखा; तो उसके चरणों का अश्रुजल से अभिषेक हो गया। उसने चूल्हे में से राख की चुटकी लाकर मेरे मस्तक पर लगा दी। इसके बाद पड़ौसिन जानकी मौसी के पास जाकर मैंने कहा "मौसी, अब मेरी माँ की तुम्ही सार-सम्हाल रखना! बीमार हो जाय तो उसकी सहायता करना।" उन्होंने भी आश्वासन देते हुए कहा "जा श्याम! तेरी माँ की मदद के लिए हम सब मौजूद है, तू किसी बात की चिंता मत करना।" इसके बाद फिर मैं माँ के पास आया और उसने मुझे सावधान रहने का उपदेश दिया। मैंने स्वीकृति की गर्दन हिलाई और घर से निकला। इतने ही में पुरुषोत्तम आकर मुझ से लिपट गया। उसे मैंने बड़े प्रेम के साथ हृदय से लगाया। किन्तु थोडी ही देर के बाद उसे छोड कर मैं गाड़ी मे जा बैठा। पिताजी पैदल ही पीछे-पीछे आ रहे थे। क्यो कि गणपति के देवालय के पास उतर कर मुझे दर्शन करना था। तिराहे पर आकर गाडी ठहरी और मैं पिताजी के साथ मंदिर में दर्शनार्थ गया। वहा मैंने गणेशजी को साष्टांग प्रणाम कर उनका चरणामृत नेत्रों को लगाया। उनके चरणो का सिन्दूर अपने कपाल पर लगाते हुए मैंने मन ही मन प्रार्थना की "हे गणराज! मेरे माता-पिता की रक्षा करना।" इसके बाद बाहर आकर मैंने फिर एक बार पिताजी को प्रणाम किया, और उन्होंने सावधान रहने तथा स्वास्थ्य को सम्हाले रखने का उपदेश दिया।

मैं गाडी में जा बैठा। पिताजी क्षणभर खडे रह कर गाड़ी के चल देने पर वापस लौटे। गाडी जोरो से चलने लगी। बैल दौडने लगे। उनके गले की घंटी बजने लगी। इधर मेरे जीवन की गाडी भी चलने लगी। मुझ अकेले की गाड़ी चली। बाहर के जीवन-सागर में मैं अकेला ही जा रहा था। उस सागर में मैं मर जाऊंगा या डूब जाऊंगा; अथवा गोता लगा कर मोती लाऊंगा? उस सागर में मुझे कौन-कौन मिलेंगे? किनसे मित्रता होगी और कौन उसे फिर तोड़ देंगे, मेरी जीवननैया

कहा जा फँसेगी और कहा उसका उद्धार होगा, ये सब बातें अनिश्चित थी। केवल माता की प्रदान की हुई स्फूर्ति के आधार पर ही मैं चला जा रहा था। उसकी दी हुई धृति के पंखो पर आरोहण कर के मैं चला जा रहा था। उसने कहा था "ध्रुव की तरह जाना।" किन्तु कहा वह तेजस्वी, निश्चयरूप महा-मेरु परम-पवित्र बाल-तपस्वी ध्रुव और कहा यह बुद्धिहीन, दुर्बल एवं पग-पग पर भूले करने वाला, क्षणभर मे निश्चय से फिसल जाने वाला, चचल-चित्त श्याम! मै रो रहा था; बाहर सर्वत्र अधकार था। मै मूक-अश्रु बहा रहा था। गाँव की नदी निकल गई, झोलाई-सोमेश्वर के मंदिर भी निकल गये। पालगढ की सीमा पहले ही समाप्त हो गई थी। किन्तु मेरा ध्यान उस ओर नही था। मेरे हृदय मे अनेक प्रकार की स्मृतियाँ उमड रही थी; वे मेरे हृदय में उथल-पुथल मचा रही थी। स्नेहमयी माँ! बस, उसकी केवल कृपादृष्टि रहने से ही मेरा सर्व प्रकार कल्याण हो सकता है। मै फिर किसी से भी नही डरूंगा। उसका आशीर्वाद ही मेरे लिए अभेद्य कवच-कुण्डल के समान हो सकता है। उन्ही को धारण कर के मै चल दिया था। पुत्र को तैरना सिखा कर माता ने उसे अथाह सागर मे छोड़ दिया। उस सागर मे मैं अनेक बार डूबने की अवस्था में पहुँचा, और कितनी ही बार कीचड़ या रेती में भी फँसा, कई बार लहरो ने मुझे डुबाया, किन्तु हर बार मै बच कर ऊपर आ गया; डूबने से बच गया। आज भी सब सकट समाप्त नही हुए है; अभी कई विकट घाँटिया शेष है। किन्तु जिस माता की कृपा से आज तक मै तैर कर किनारे लगा, मरने से बचा, गिर कर उठ खड़ा हुआ, उसी की कृपा आगे भी मुझे तारेगी। आज यद्यपि मेरी माता नही है, फिर भी उस की कृपा तो है ही। माता के मर जाने पर भी उसकी कृपा कदापि मर नहीं सकती। भीतर ही भीतर उसकी तरी हमें मिलती रहती है।

---

३५ धनहीन की भर्त्सना

श्याम ने कहना आरंभ किया .

पिताजी के सिर पर कर्ज का वोझ दिनो-दिन बढ़ता जा रहा था । क्योकि समय पर वे सूद (व्याज) नक न चुका सकते थे। हमारे कुछ खेत थे । यदि पिताजी उनमें से पहले ही दो-एक वड़े खेत वेच देते; तो लगभग सारा ही कर्ज उतर जाता। साथ ही हमारे निर्वाह-योग्य खेती-वारी भी वच सकती थी। किन्तु पिताजी को यह मार्ग उचित नही जान पडता था। जमीन वेचना उन्हे अपमान-जनक जान पड़ता था; पाप प्रतीत होता था।

उस रात को मेरे नाना (माता के पिता) हमारे घर आये थे। उनका उद्देश्य पिताजी को दो-चार हित की वाते समझाना ही था। वे चाहते थे कि यदि मेरे पिता उनका कहना मान ले, तो कर्ज-मुक्ति का प्रयत्न किया जाय। नानाजी वडे ही चतुर और अनुभवी गृहस्थ थे। वे व्यवहार-दक्ष, मितव्ययी और खास ढग पर चलने वाले व्यक्ति थे। किन्तु उन्हे अपनी वुद्धि का विशेष अहकार था। उनके कथन के विरुद्ध यदि कोई कुछ कह देता तो वह उन्हे सहन नही होता था। उनका स्वभाव भी कुछ चिढचिडा था। क्योकि प्राय' जो व्यक्ति कुशाग्र-वुद्धि होता है, उसे यह जान पडता है मानो दूसरे मे कोई वुद्धि ही नही है, सारी अकल उस अकेले को ही मिल गई है। हमारे नानाजी का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही था।

मेरे पिता पडसाल मे टाट का थैला विछा कर उस पर वैठे हुए थे। भोजन हो चुका था। माता भीतर घर में भोजन कर रही थी। वाहर नानाजी आये और मेरे पिता से वातचीत करने लगे।

उन्होने कहा "देखो, भाऊराव, आज मैं तुम्हे आखिरी वात कहने के लिए आया हू। पहले भी मैंने तुम्हे कई वार समझाया; किन्तु तुमने उस पर ध्यान नही दिया। पर अव तो मामला गले तक आ फँसा है, अव तो सावधान होना ही चाहिए। तुम अपने कुछ खेत-जमीन वेंच दो। कम

से कम उस मारवाडी का तो कर्ज सब से पहले चुका ही दो। दूसरे साहूकारों का पीछे से देखा जायगा। वे कुछ ठहर कर भी ले सकेंगे; साथ ही उनका सूद (व्याज) भी अधिक भारी नही है। कैम्प वाले मारवाडी का कर्जा ही मुख्य है। दिनोदिन कर्ज का बोझा बढता ही जाता है। अन्य लोगो का देना भी बढ रहा है, इससे सर्वनाश हो जायगा; इस लिए मेरी बात मानो।"

यह सुन पिताजी ने कुछ चिढ़ कर कहा "किन्तु मेरी इतनी चिंता आप को क्यों है? दरिद्र व्यक्ति को सभी मनमानी सलाह देने लगते हैं। क्या दरिद्री कुछ भी बुद्धि नहीं रखता? नाना! कर्ज की चिंता तो मुझे है; आप को उसके लिए घबराने और चिंतित होने की जरूरत नही।"

"भाऊराव! मझ से रहा नही गया; इसी लिए तुम्हारे पास आना पड़ा। मेरे पेट का अंश समझ कर तुम्हारे पास आया हूं। मेरी आत यहा अटकी हुई है, इस लिए आना पडा है। मेरी पुत्री तुम्हे दी है, इस लिए इतनी रात मे कीचड-काटे लाँघता हुआ तुम्हारे पास आया हूं। मेरे सोने जैसे नातियो के लिए थोडी-बहुत खेती-बारी बच रहे, उनके लिए इस गाँव मे घर-द्वार बना रहे, अपने पूर्वजो के इस गाँव से वे पराङमुख न हो सके, यहा से उनका निर्वासन न हो जाय, इसी लिए मैं आया हू। शीघ्र ही तुम्हारी जायदाद पर जप्ती आने को है, और नीलाम मे रुपये का माल पाई कीमत पर चला जायगा। वह तुम्हारा 'पायरिया' खेत पन्द्रह-सौ रुपये मे बीसापुर वाला ले रहा है, उसे दे डालो। फिर इतने दाम नही मिलेंगे। मारवाडी से छुटकारा हो सकेगा।" इस प्रकार नानाजी ने अंत.करण-पूर्वक सलाह दी।

"किन्तु नाना, वह खेत कैसे बेचा जाय? उसीमें तो हम छोटे से बडे हुए हैं। उस खेत को खाद आदि दे कर बडा और उपजाऊ भी तो हम्हीने बनाया है। बडे-बड़े टिब्बे तोड़ कर जमीन बराबर की, और नीचे की चट्टानो को सुरंग लगा कर तोड़ा; तब कही जाकर वह धान पैदा करने लायक हो सका है। दस मन के खेत को हमने तीन खंडी (साठ मन) का बना दिया। वहा कुआ भी खुदवाया। भला, उस खेत को मैं कैसे बेच सकता हूं? और बच्चो का भी तो उसपर कितना प्रेम है?

बचपन में वे शनिवार और रविवार को प्राय. खेत पर ही रहते थे। वही वे बैंगन का भुर्ता और भात अपनी दूधवाली दादी के साथ खा कर मस्त हो जाते थे। वहा हमने कितने ही आम के पेड़ और फल-फूल के पौधे लगाये हैं। उस खेत के साथ कहा तक का प्राणो से अधिक स्नेह-सम्बन्ध है! और वह जमीन भी कैसी है? उसमे सोना पकेगा, ऐसी उपजाऊ है। दिनो-दिन जमीन आँखों के लिए दुर्लभ होती जा रही है। यदि पूर्वजो की खेती-बारी मे हम से वृद्धि न हो सके, तो कम से कम जो कुछ है उसे भी हम सम्हाल कर न रक्खे? मुझ से तो जमीन का एक टुकड़ा भी न बेचा जा सकेगा। भला, कोई अपने कलेजे के टुकड़े को भी काट सकता है? अपनी ही जमीन हम अपने हाथो से बेच दे? जिस प्रकार, अपनी माता को बेचना पाप है, अथवा अपनी गौ-शाला की गऊ का बेचना पाप है; उसी प्रकार अपनी जमीन बेचना भी पाप है। जमीन भी एक प्रकार से माता ही है, उसीके अन्न से तो हमारा यह शरीर पुष्ट हुआ है।" इस प्रकार पिताजी ने भावना-पूर्ण उत्तर दिया।

"किन्तु भाऊ! इस प्रकार केवल भावना-युक्त बाते करने से तो काम नही चल सकता! केवल शाब्दिक कढ़ी और शब्द का ही भात खाने से शरीर में रक्त नही बढ सकता। तुम जमीन को माता के समान बता कर उसका बेचना पाप बतलाते हो; किन्तु फिर दूसरो से खरीदते कैसे हो? दूसरो से छीन कैसे सकते हो? उस समय नही जान पड़ता कि वह जमीन दूसरे की माता है? मुझे यह नीति सिखाने का प्रयत्न मत करो! किसी समय तुम्ही खुद दूसरो के खेतो पर जप्ती ले जाते थे। उन्हे नीलाम कराते, और इस प्रकार उन दूसरो की माताओ को छीन लेते थे! जमीन बेची भी जाती है और खरीदी भी। व्यवहार को देखना चाहिए! आगे चल कर परमेश्वर की कृपा से लड़के होशियार हो गये; और वे अच्छे धन्धे से लग गये तो फिर जमीन खरीदी जा सकेगी! यह नही तो दूसरी! किन्तु कर्ज का बोझा सिर पर रख कर तुम जमीन को कैसे सम्हाल सकोगे? उसे कैसे बचा सकोगे? जप्ती का ढिंडोरा (डुगडुगी) पिटने के बाद पुलीस आ खड़ी होगी, और नीलाम शुरू हो कर घर के द्वार पर ताले लग जायँगे। उस समय जो दुर्दशा होगी वह अच्छी है, या आज ही सावधान हो कर

उस अप्रिय अवसर को न आने देना, अपनी इज्जत बचाना और बँधी मुट्ठी को कायम रखना अच्छा है ? " इस प्रकार नाना ने पूछा।

किन्तु पिताजी को यह उपदेश अच्छा न लगा। उन्होंने उत्तर दिया "मेरी इज्जत की मुझे चिंता है, आप की इज्जत का तो कोई प्रश्न नही है ?"

यह सुन नानाजी बोले "हा, मेरी भी इज्जत का सवाल है, और इसी लिए मैं तुम्हारे पास आया हू। तुम मेरे जामाता हो, इस बात को क्या तुम भूल गये ? लोग कहेगे 'देखो, अमुक के जामाता के घर-द्वार, खेत आदि जप्त हो गये।' तुम्हारी इज्जत के ही साथ-साथ मेरी इज्जत भी तो जुडी हुई है! मेरी लड़की की इज्जत पर्याय से मेरी ही इज्जत है। जरा मेरी बात पर विचार करो, मूर्खों की तरह हठ धारण करना अच्छा नही होता!"

पिताजी ने खिन्न हो कर कहा "आप भले ही मूर्ख कहे या और कुछ! आप को ही नही ससार-भर को आज मुझे जो जी चाहे कहने का अवसर मिल रहा है, और ऐसा करने का अधिकार भी आप सब को प्राप्त है।"

"कहना ही पडेगा! कहे बिना कैसे रह सकता हू। भले ही तुम अपने को सरदार मानते रहो! तुम अपने आप को बडा सरदार बतलाते रहे, इसी लिए तो मैंने अपनी लड़की दी! अच्छा नजराना और दहेज भी दिया। लडकी का जीवन सुखमय हो सके, इसी आशा पर सब कुछ किया। इस लिए नही कि मेरी लड़की की इज्जत धूल में मिल जाय! तुम जो अपने को सरदार बतलाते थे; सो क्या यही तुम्हारी सरदारी है ? न तो स्त्री के गले में फूटा मनिया है न शरीर पर कपड़े; और न घर में पूरा खाने को! क्या सरदार ऐसे ही होते हैं ? दरवाजे पर साहूकार का तकाजे-गीर बैठा हुआ है, और स्त्रियो को अपमान-जनक शब्द सुना रहा है, फिर भी तुम चुप हो! क्या यही सरदारी का लक्षण है ? न घर-द्वार का ठीक ठिकाना, और न खेती-बारी या जमीन-जायदाद का ही कोई ढंग, फिर भी कहते हो कि हम सरदार हैं! कितनी ठसक थी ? तीस वर्ष से सब काम-काज सम्हाल रहे हो, अब तक क्या दिये लगाये है ? एक पाई

की भी तो अकल नही प्राप्त की। सभी ने तुम्हे धोखा दे कर लूटा और सब कुछ लेकर निकाल दिया। अरे, अब भी तो आँखे खोलो जरा। सरदार! भिखारियो के चिन्ह होते हुए भी ठसक सरदारी की! खैर, यदि खुद की बुद्धि काम नही देती तो कम से कम दूसरे की बात पर तो ध्यान दो! किन्तु उसे भी तुम नही सुनते? यह क्या छिछोर-पन चला रखा है? इस गधेपन के लिए क्या कहा जाय? भाऊ! यह निकम्मी हठ छोड दो। मैं जैसा कुछ कहता हू, वह करो।" इस प्रकार नानाजी पिताजी पर वाक्य-बाण वर्सा ही रहे थे कि इतने मे भीतर से माँ आ गई।

नानाजी के कटु शब्द उससे भीतर बैठे-बैठे सुने नही जा सकते थे; फिर भी वह मन मार कर बड़े कष्ट से उन्हे सुन रही थी। किन्तु अब तो उसकी भी सहनशीलता का बाँध टूट पडा। वह बाहर आकर नानाजी से कहने लगी "नाना! तुम इस समय मेरे घर में बैठे हुए हो। तुमने अपनी लडकी एक बार दूसरे को दे दी! अब उन्हे मनमाने अपशब्द न कहो! सब उन्हे ककर मारते है, इस लिए तुम भी मत मारो। नाना! तुम्हारी इस लडकी के ही पुण्य मे कोई कसर है कि जिसके कारण आज इस हरे-भरे घर की यह दुर्गति हो रही है, ये बुरे दिन देखने पड रहे है! तुम्हारी लडकी के इस घर मे आने से पहले इनका ससार बडी सुख-समृद्धि का था। उनकी सरदारी का उपहास क्यो करते हो? अपनी ही लडकी के भाग्य को खोटा कहो! आज-तक मैंने सुख से खाया-पिया और इज्जत से दिन बिताये, वह सब उन्ही के पुण्य-बल से। मै अभागिनी हू! तुम्हारी पुत्री होते हुए भी भाग्यहीन हूं। उनसे अपनी प्राणाधिक जमीन (खेत) बेची नही जाती, नही तो न सही। जो कुछ होना है सो तो होगा ही। परन्तु उनका चित्त मत दुखाइये। होने वाली बात हो जाती है, किन्तु चित्त (मन) मे लगी हुई चोट जीवन भर सालती रहती है। नाना! टूटा हुआ मोती फिर जोडा नही जा सकता। मन के विकृत हो जाने पर, दिल टूट जाने पर, उसे नही जोडा जा सकता! इस लिए उनके मन को जरा भी मत दुखाओ। कम से कम मेरे सामने तो उन्हे उल्टी-सीधी बातें मत कहो। अपनी पुत्री के सामने ही उसके पति का अपमान करना तुम्हे शोभा नही देता! कैसे ही हो, फिर भी वे मेरे तो पति ही है!

हमारा जो कुछ होना है सो तो होगा ही ! वे भी तो अच्छे ही के लिए सारे प्रयत्न कर रहे है । क्या वे यह चाहते है कि भविष्य मे लडको-वच्चो की दुर्दशा हो ? ईश्वर तो सब कुछ जानता है। बुद्धि देने वाला भी वही तो है ! नाना ! व्यर्थ अपशब्द कहने के लिए फिर यहा मत आना, अपनी पुत्री और उसके पति को यदि सदिच्छा-पूर्ण आशीर्वाद देना हो तो भले ही आवे । उसे दो मीठे शब्द कह कर आश्वासन देना हो तो यह द्वार खुला हुआ है । तुम्हारा तो केवल आशीर्वाद और प्रेम-भाव ही चाहिए, और कुछ भी नही। न उपदेश की जरूरत है न गाली या अपशब्द कहने की । नाना ! मै आज आप के सामने मुँह खोल कर इतनी वाते कर रही हू; इसके लिए मुझे क्षमा कीजिये । नाना ! क्या सचमुच ही इनका घर सरदारो का घराना नही था ? सारा गाँव सम्मान करता था, क्या यह आपने अपनी आँखो से नही देखा ? किन्तु सभी दिन एक-से नही होते ! इस वर्ष यदि सभी आम झड़ गये, तो फिर अगले वर्ष मौर तो आवेगे ही । वृक्ष के सूख जाने पर भी फिर उसमे अकुर निकलते ही है । नाना ! नाराज मत होना ! मै तुम्हारे पैरो पडती हू । हमारा जो कुछ होना है सो होगा ही । किन्तु आप आज से उन्हे एक भी मर्म-वचन या अपशब्द मत कहिये । बस, मै आप से इतनी ही भीख माँगती हू ।" यो कह कर मेरी माता सचमुच ही नानाजी के पैर पकडने को आगे वढी ।

" उठ वेटी ! उठ, तेरी यही इच्छा है तो मै अपने घर चला जाता हू । आज से फिर कभी आकर यहा पैर न रक्खूगा, समझी ! मुझ वूढे को क्या गरज पडी है ! " यो कह कर नानाजी उठ खडे हुए ।

" नाना ! इस प्रकार अर्थ का अनर्थ मत करो ! उपेक्षा मत करो और इसी प्रकार आते रहो । मै जिस प्रकार आप की पुत्री हू उसी प्रकार उनकी पत्नी । मुझे सब की ओर देखना पड़ता है । मुझे तो आप की भी आवश्यकता है और उनकी भी । नाना ! भाग्य ने हमारा साथ छोड दिया, भाइ-वन्धुओ ने हमें छोड दिया, तब क्या तुम भी हमे छोड़ दोगे ! नाना ! तुम अवश्य आते रहो । हमारी सुध लेने के लिए वारम्बार आते रहो । अपनी वेटी से मिलने आते रहो ! आओगे न ?" यो कहते-कहते माता का गला भर आया ।

"कदापि नही! अब मै यहा आकर पाँव तक न रक्खूगा। जहा मेरे शब्दो का मान नही, वहा मै क्यो आऊ?" यो कहते हुए नाना चल दिये।

फिर भी उन्हे सुनाते हुए माता ने कहा "नाना! तुम्हे अपने पेट की बेटी से अपने मुँह का शब्द अधिक प्रिय है?" किन्तु नानाजी चले ही गये। तब माता ने मेरे पिताजी से कहा "चले गये! क्या करे, जाने दो। आप थोड़ी देर विश्राम करो। सिर पर थोडा-सा तैल मल दू, क्या? जिससे शाति हो।"

पिताजी ने त्रस्त होकर कहा "इस कर्म-हीन के लिए तैल की क्या आवश्यकता है? तू घर मे जा, और मुझे यहा अकेला ही थोडी देर पड़ रहने दे।"

गरीब बेचारी माता! चुपचाप घर मे चली गई। पुरुषोत्तम सोया हुआ था, उसका ओढ़ना ठीक कर के वह चली गई। किन्तु कहा गई? आपने विश्राम-स्थल तुलसी के आँगन में, उसीके चरण मे बैठ कर वह आँसू बहाने लगी। आसपास के विशाल आम्र-तरु स्तब्ध खडे थे। वायु भी मौन था। आकाश भी नि.शब्द था। मेरी माता बैठी हुई रो रही थी। वह ऋण उसे रुला रहा था। मेरी माता को वह ऋण-रूपी शत्र रातदिन रुलता था।

---

३६ माता का चिन्तामय जीवन

मैं औंध-राज्य मे पढने के लिए तो चला गया, परतु वहा ईश्वर मुझे रखना नही चाहता था। मैं ज्यो-त्यो कर के दिन काट रहा था। उस कष्ट-कथा को सुनाने की आवश्यकता नही जान पडती। सभी गरीबो को उस तरह दिन काटने पडते है। मुझे तो अपनी माता के सस्मरण सुनाना है। उनसे सम्बन्ध रखने वाली जितनी बाते होगी, वे ही मैं आप लोगो को सुनाऊगा।

पूने में मौसी के पास मेरा छोटा भाई सदानद रहता था। उसे

हम सब यही समझते थे कि हमारे उस अच्छे यशवन्त ने ही फिर जन्म लिया है । किन्तु प्लेग मे अचानक ही हमारा प्यारा सदानंद हमें छोड़ कर चल दिया। वह दत्तगुरु-दत्तगुरु कहता चला गया! जाते-जाते वह कहता रहा "वह देखो, मुझे बुला रहे है, मैं जाता हूं।"

इधर मैं औंध मे था, वहा भी प्लेग शुरू हो चला। एक तो सोने जैसा लडका चल ही बसा और दूसरा दूर अकेला है, वहां भी प्लेग है, यह सुन कर मेरी माता का हृदय उथल-पुथल हो रहा था! सदानंद का दु ख उसके लिए ताजा ही था। कई दिन बीत जाने पर भी उसकी अश्रुधारा रुकती नही थी। किन्तु वह दु ख कुछ कम हो ही रहा था कि उसे मेरी चिंता सताने लगी। उसका जीवन मानो चिंतामय ही हो गया था।

प्लेग के कारण औंध का स्कूल बन्द हो गया था। बाहर के विद्यार्थियो से घर चले जाने के लिए कह दिया गया, किन्तु मैं कहां जाता? मेरे पास घर जाने के लिए पैसे ही कहा थे? अत मे मैंने अपने पास का कंबल बेचा और कई अच्छी पुस्तके भी बेच दी। जैसे-तैसे पांच रुपये जुड़ जाने पर मैं फिर घर की ओर चल दिया। दो-तीन महिने स्कूल बन्द रहने का अनुमान था।

मैं हर्णँ बन्दरगाह पर उतरा और वहां से गाडी किराये कर के पालगढ आ गया। प्रात-काल मैं गाड़ी से उतरा। उस समय बरगद के पेड पर गरुड़ पक्षी जोरो से चिल्ला कर सारे गाँव को जगा रहा था। आस-पास कही प्रभाती और कही वेदपाठ सुनाई दे रहे थे। मैं किराये के पैसे दे कर अपने घर की सीमा मे घुसा। उस समय मुझे बहुत बुरा लग रहा था। मुझे देखते ही माँ को सदानंद का स्मरण हो आने, और उसके जोरो से रोने का भय हो रहा था। धीरे-धीरे मैं आँगन मे आया और वहा से चबूतरे पर। उस समय घर मे माता मही (छाछ) बिलो रही थी। उस समय वह शात-भाव से गोपाल-कृष्ण का गीत गा रही थी। वह मधुर गीत इस प्रकार था —

गोकुल में जाकर कान्हा, माखन-मिसरी तुम खाना।
दहि-दूध छको मनमाना, परब्रह्म-रूप तव जाना॥

है एकमात्र वह राधा, पगली बन तोहि आराधा।
उस पूर्व-पुण्य के बल से, तेरा दर्शन-व्रत साधा॥*

मै वाहर चवूतरे पर खड़ा हो कर गीत सुनता रहा। किवाड़ खुलवाने का साहस न कर सका। किन्तु वाहर भी कव तक खड़ा रहता? आखिर को द्वार खट्खटाया और जोर का धक्का दिया।

भीतर से माँ ने पूछा "कौन है?"

मैंने कहा "तेरा श्याम!"

"श्याम! आगया, मेरा वेटा श्याम आगया! आती हू, वेटा! ठहर!" यो कह कर माता ने फुर्ती से दरवाजा खोला, और मुझे हृदय से लगा लिया। इसके वाद कहा "देवता को प्रणाम कर। ठहर, मैं पहले उनके सामने गुड़ रखती हू। वैठ जा श्याम! मै तेरी तरफ आँखे लगाये कव से वाट देख रही थी। उसे तो भगवान ने ले ही लिया। मैने सोचा कि अव दूसरा भी दृष्टि में आता है या नही!" यो कहते-कहते माता का गला भर आया, और उसके साथ-साथ मै भी रोने लगा।

पिताजी शौच-निवृत्ति के लिए गये थे। उनके आँगन मे आते ही माता ने आगे वढ कर कहा "सुना आपने! श्याम आगया हमारा! वह अभी ही आया है।" इसके वाद पैर धो कर वे घर मे आये और मैने उन्हे साष्टांग प्रणाम किया। वे कहने लगे "श्याम! मै नित्य तेरे लिए गणपति का अभिषेक करता था। आगया अत को तू! अच्छी तरह मे तो है? सदानद चला गया!" यो कहते-कहते उन्होने आँखो पर दुपट्टा लगा लिया। सदानद की याद मे वे आँसू वहाने लगे।

इसके वाद माता ने कहा "अभी कुछ देर विस्तर पर लेट जा, वाहर सर्दी है।" तदनुसार मैंने कपडे खोले और कुल्ला कर के माता के विस्तर पर जा लेटा। उसकी साड़ी की चौतही को ओढ लिया। वह

---

* गोकुळांत खाशी तू दहीं दुध लोणी।
परब्रह्म होतासि तूं नेणे परी कोणी॥
एकमात्र राधा झाली वेडी तुझ्यासाठीं।
पूर्वपुण्यें झाली म्हणे, देवा तुझी भेटी॥

चौतही नही थी, वरन् माता का प्रत्यक्ष प्रेम ही मैंने उस रूप में ओढ रक्खा था। मै मानो माता की गोद मे ही सोया हुआ था। उस दिन का वह प्रातःकाल और माता के विस्तर पर उस चौतही को ओढ कर सोना, आज-तक मुझे अच्छी तरह स्मरण है। कितनी ही वार मैं रात को सोते समय विस्तर पर पडे हुए यह कल्पना करता हू कि "मैं माता के पास उसकी वगल मे सोया हुआ हू।" यह भावना मेरे जीवन मे ओतप्रोत हो गई है। कितनी ही बार मुझे ऐसा जान पड़ता है कि माता का हाथ मेरी पीठ पर रखा हुआ है! और इस बात को स्मरण कर मेरा हृदय भर आता है।

घर आकर मै फिर नया-पुराना हो गया, पुरुषोत्तम मुझे गाँव भर के हालचाल सुना रहा था। मै भी उसे अपनी कथा सुना रहा था। मैंने उसे बतलाया कि "औध मे कैथ (कबीट) के फल के विषय मे मेरी कैसी फजीहत हुई! कोकण मे मुर्गी के अण्डे को 'कवठ' कहते है, क्योकि कोकण मे कैथ के वृक्ष नही होते। किन्तु औध मे जब एक मित्र ने मुझसे पूछा "क्यो श्याम! तुझे कवठ (कैथ) अच्छा लगता है?" तो मै उस-पर नाराज हो गया। दूसरे सब मित्र हँसने लगे। इसके बाद एक दिन औध मे मै किस प्रकार तालाव में डूबने से बचा, इसकी घटना, वहा की 'यमाई' के मंदिर, जंगल के मोर, आदि सब का वर्णन मै सुना रहा था। इसी प्रकार पुरुषोत्तम ने भी अपने गाँव के पटैल के जगल मे सांप काटने से मर जाने तथा किसी गाय की जगल मे किस प्रकार गोहरे के काटने मृत्यु हुई, सो सब हाल सुनाया। इस तरह कई दिन बीत गये।

अब मुझे घर पर रहते-रहते लग-भग महिना भर हो गया, किन्तु औध का स्कूल नही खुला। फिर भी पिताजी को मेरी बात पर विश्वास न हुआ और वे यही समझते रहे कि वहा मेरी कोई व्यवस्था न हो सकने से मै हाथ हिलाता हुआ वापस लौट आया हू। उनकी यह शका बराबर दृढ होती जा रही थी। एक दिन मै विस्तर पर लेटा हुआ पुरुषोत्तम से बाते कर रहा था। दोनो भाई एक ही ओढने के भीतर लेटे हुए थे। एक-दूसरे के शरीर पर हम हाथ रखे हुए थे। बाते सुनते-सुनते पुरुषोत्तम सो गया। कुछ देर के बाद मुझे भी नींद आ गई।

किन्तु थोड़ी ही देर मे मै चौक कर एकदम जाग पड़ा। मैंने स्वप्न

मे देखा कि किसी ऊचे स्थान से मैं नीचे गिर पडा हू । मै जग गया, तो उस समय इस प्रकार का सवाद मुझे सुनाई दिया :—

उस समय माता फलिया चुन कर तोड रही थी । अगले दिन के शाक-सब्जी की तैयारी हो रही थी । पिताजी भी बैठे हुए फलिया चुन रहे थे । हाथो से काम हो रहा था और मुँह से वातचीत चल रही थी ।

पिताजी बोले " इससे वहा पढा नही जाता होगा, इसी लिए आ गया है । प्लेग का तो एक कारण बताने को मिल गया है । क्या अभी तक स्कूल नही खुला होगा ?"

यह सुन माता ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा " वह क्या झूट-मूट कह देगा ? वहा उसे कई प्रकार के कष्ट उठाने पडते है, फिर भी वह वापस जाने वाला है। यहा मुफ्त खाने के लिए वह कभी पडा नही रहेगा ! मै खुद उसे नही रहने दूगी ।"

" उस समय वह गोपाल पटवर्धन रेल्वे मे लगा देने को तयार था। अच्छा होता यदि लग जाता । आज-कल नौकरी मिलती कहा है ? किन्तु तुम माँ-बेटो को वह वात पसद नही आई ! " पिताजी ने कहा ।

" परन्तु वह अभी से नौकरी करना नही चाहता । उसकी इच्छा पढने की है । वह शीघ्रही चला जायगा; घर मे नही बैठ रहेगा । वह 'खाने को मीठा और काम को ढीठा' नही बनेगा " माता ने उत्तर दिया।

" तुझे तो तेरे बेटे हमेशा ही अच्छे जान पडते हैं । किन्तु अत मे मेरी ही बात सच निकलेगी । एक दिन मालूम हो जायगा कि वहा इसका सिल्सिला नही जमा; इस लिए घर चला आया है ।" इस प्रकार पिताजी बारम्वार अपनी ही बात का समर्थन कर रहे थे ।

अत मे मुझ से नही रहा गया और मैं बिस्तर से उठ कर कहने लगा " पिताजी ! मैं चोरी से आप की बाते नही सुन रहा था, वरन् अचानक नीद खुल जाने से मैं जग पडा, और मैंने आप की सब बाते सुनी हैं। मै सबेरे ही यहा से चला जाता हूं। फिर भले ही औध मे प्लेग हो या न हो। जब मुझ पर आप का विश्वास ही नही तो मै यहा क्यो कर रहू ? मैं केवल खाने या मक्खियाँ मारने के लिए यहा नही आया हू । प्लेग होने पर भी मैं वही रहनेवाला था । व्यर्थ के लिए आने-जाने का खर्च नही करना

चाहता था । किन्तु बाहर के लडकों को वहा जब रहने नही दिया; तभी मुझे घर आना पडा है । मै कल ही चला जाता हू । माँ कल मैं अवश्य ही यहा से चला जाऊगा । "

यह सुन माता ने कहा " अरे, तू उनकी बात पर ध्यान मत दे ! वहा का प्लेग दूर हो जाने दे, तभी जाना श्याम ! मुझ पगली की बात भी मान ।"

" नही, मैं कल किसी तरह भी नही ठहरूगा । कल ही मुझे यहा से रवाना कर दे ! पिताजी, मुझे फिर आप से एक बार दस रुपये माँगने पडते हैं, कृपा कर उतना प्रवन्ध कर दीजिये । माँ ! तू मेरी जरा-भी चिन्ता मत कर ! जिसका ईश्वर रक्षक है, उसे कौन मार सकता है ? जिसे जीवित रखना है, उसे वह प्लेग के उपद्रव मे से भी बचा लेगा । विस्तृत समुद्र मे से भी बचा लेगा ।" इस प्रकार मैंने माता से अपना सकल्प प्रकट किया ।

" अरे, तू भी तो उन्ही का बेटा है । तेरा बचपन का हठीला स्वभाव कैसे जा सकता है ? जाओ बेटा ! कही भी जाओ, अच्छी तरह रहो, यही केवल इतना ही मैं चाहती हू । मुझ मुई की आँखें भगवान क्यो नही मूद देता ? कुछ समझ मे नही आता । अच्छे सोने सरीखे बच्चो को उठा लेता है और हमे रुलाता रहता है ।" इस प्रकार माता ने रोते हुए कहा ।

रात बीती और सवेरा हुआ । मैंने माता से कहा " मेरा जाने का विचार निश्चित है । आज नही तो महिने भर बाद तो जाना ही पड़ेगा । तेरी आज्ञा मिल जानी चाहिए ।"

अत मे माता ने आज्ञा दे दी । वह दूसरो पर अपनी इच्छा लादना नही चाहती थी । शरणागति ही एकमात्र उसका आधार था । उसने कभी किसी बात का हठ धारण नही किया । उसका प्रेम बधन-कारक नही था, वह मुक्तता देने वाला था, स्वतंत्रता देने वाला था ।

पिताजी पर नाराज हो कर मै वापस जाने को तैयार हो गया था । माता का रुदन बंद न हो सका । पेट का एक टुकडा प्लेग की भेट चढ चुका था, दूसरा फिर उसमें कूदने को जा रहा था । किन्तु वह बेचारी

क्या करती ? पिता-पुत्र के झगडे में वह गऊ बेचारी अकारण रुलाई जा रही थी। मैंने माता को प्रणाम किया और पिताजी के पैर छूकर दोनों के आशीर्वाद प्राप्त कर चल दिया। अभागा श्याम! माता की बात न सुन कर चल दिया।

मैं गाडी में जा बैठा। मित्रो! मेरे लिए माता के वही अंतिम दर्शन थे। इसके बाद मेरी माता के पार्थिव-रूप मे मुझे सजीव दर्शन नही हुए। अत मे उस की भस्ममय-मूर्ति के ही मैंने स्मशान मे दर्शन किये। उस समय मुझे इस बात की कल्पना तक न थी कि, मै माता को सदैव के लिए छोड रहा हूं, उसके अमृत-मय शब्द अंतिम बार सुन रहा हू। किन्तु मानवी आशा के विरुद्ध ईश्वर की इच्छा होने का कठोर सत्य मझे अनुभव करना था।

---

३७ तैल है तो नौन नहीं ....

आज की पूनिया अच्छी नही, बार-बार सूत टूटता है। ऐसा मालूम होता है कि रुई अच्छी तरह नही पीजी गई। गोविन्द! आज तो पिंजन का काम तूने ही किया था न ?

इस पर वह बोला "नही, आज की पूनिया श्याम की बनाई हुई है। उसी ने आज यह रुई धुनक् कर तैयार की है।"

इतने ही मे राम वहा आ गया। उसने यह सुन कर कहा "आज-कल श्याम का चित्त बहुत उदास रहता है। उसका दुखित मन उसे कोई काम नही करने देता। हाथो से अच्छी तरह काम होने के लिए चित्त की प्रसन्नता भी एक आवश्यक वस्तु है। नीति मे 'मन प्रसादं सकलार्थ सिद्धि' कह कर यही बताया गया है।"

"गोविन्द! श्याम इस समय कहा गया है रे!" राम ने पूछा।

इस पर भीका ने उत्तर दिया "अभी तो वह ऊपर छत पर था।"

गोविन्द ने कहा " वह उस ऐलावाई के यहा जाने वाला था, सुना है वह वेचारी वहुत वीमार है ।"

"क्या विचित्र नाम है! ऐलावाई का क्या अर्थ हो सकता है ?" भीकू ने पूछा। इस पर राम ने वताया कि " उसका असल नाम है अहिल्यावाई। अहिल्या का अपभ्रंश हो कर ऐला हो गया है। किन्तु हमें तो उस नाम के रूप और अर्थ पर विचार करना चाहिए नँ ? "

इस प्रकार दोनो मित्रो का वार्तालाप चल ही रहा था कि तव तक श्याम वहा आ गया । वह पूछने लगा "कहो गोविन्द! क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नही! किन्तु ऐलावाई की हालत कैसी है ? "

श्याम ने कहा " उसे " अपने घर--दूसरे गाँव भेज दिया है । "

" किन्तु क्या वह अच्छी हो जायगी ? वच्चे छोटे-छोटे हैं । ! "

" किसे मालूम क्या होगा ! हम भी तो क्या कर सकते है ?"

'भीकू! आज तूने वर्तन अच्छी तरह नही माजे। तेरा ध्यान पूरी तरह इस काम में नही था, क्यो ? " श्याम ने वर्तन देख कर कहा ।

" हाँ, जिस तरह रुई पीजते समय तुम्हारा ध्यान नही था !"

" तो क्या आज की पूनिया अच्छी नही वनी ? " श्याम ने पूछा ।

" हा, उनमे वहुत-सा कचरा रह गया है। " गोविन्द ने कहा ।

" किन्तु मेरा तो सूत टूटता नही था।" श्याम ने कहा।

" तो तुम्हारी पूनिया पहले की होगी ! " भीका ने उत्तर दिया।

इस पर फिर श्याम ने कहा " नही भाई! मैंने आज ही रुई पीज-कर, उसी से वनी हुई पूनिया अपने पुडके मे रक्खी थी !"

गोविन्द :— मैंने उन्हे वदल लिया था। मेरे पास अच्छी पूनिया थी, वे मैंने उसमे रख दी थीं, और तुम्हारी पूनियो से मैंने सूत काता है। मैंने सोचा कि तुम रात मे सूत कातते हो, इस लिए तुम्हे व्यर्थ कष्ट होगा !

राम :—श्याम तू देर तक जागता है, यह अच्छा नही करता।

श्याम :—परन्तु जव नींद ही नही आती तो क्या करू ? योंही पड़े रहने से तो सूत कातना अच्छा है ।

राम :—किन्तु नीद न आन का कोई कारण ? हमें तो खूब गहरी नीद आती है !

श्याम :—तुम सब खूब काम करते हो। अच्छी नीद के लिए दिन में तप (श्रम) करना पड़ता है। शरीर को घिसना पडता है।

राम :—तो क्या तू बिल्कुल काम नही करता ? सवेरे कुए के पास का सब भाग तो तूने ही झाड़-बुहार कर साफ किया था।

श्याम :—परन्तु भीकू, गोविन्द और नामदेव ने मुझे झाड़ने ही कहा दिया ? तुम सब तो यह चाहते हो कि मैं कोई काम ही न करने पाऊ ! पुण्यवान् तुम्ही बनना चाहते हो, मुझे नही बनने देते !

राम :—तेरी तबियत ठीक नही थी, इस लिए तुझे काम नहीं करने दिया !

गोविन्द :—लोग आने लगे है, अब घण्टी बजा देनी चाहिए।

इसके बाद घण्टी बजी और प्रार्थना शुरु हुई। प्रार्थना के बाद श्याम ने अपनी माता की स्मृतियाँ सुनाना आरभ किया —

हमारे घर मे अब प्राय सभी बातो की कठिनाई पड़ने लगी थी। प्राय: सभी चीजो का अभाव हो चला था। तैल है तो नमक नहीं और नमक है तो मिर्च नही। इस प्रकार काम धक् रहा था। कभी चूल्हे में जलाने को ईंधन नही रहता, तो कभी चूल्हा सुलगाने और दूध की कड़ाही के नीचे लगाने को कण्डे नही रहते। माँ बेचारी इधर-उधर से ढूढ कर कुछ लकड़िया बीन लाती। कभी आम के सूखे पत्ते ही हाथ लगते; और उन्ही के सहारे उस बेचारी को भोजन बनाना पडता। कभी भाजी छैंकने को तैल तक नही होता, उस समय माता के अश्रु ही उसकी पूर्ति करते, और उनके स्वाद से दो ग्रास कंठ के नीचे उतारे जाते थे। क्या करती बेचारी ! जैसे-तैसे इज्जत बचा कर दिन बिता रही थी। मेरे नाना-नानी भी अब पालगढ मे नही थे। वे अपने लडको के पास पूना-बम्बई की ओर चले गये थे। इस प्रकार नाना के घर मे कोई न होने से ताला लगा रहता था। माता अब घर से बाहर तक नही निकलती थी। प्रथम तो उसके शरीर मे ही अब शक्ति नही रही थी, दूसरे उसे

किसी के घर जाते हुए शर्म भी लगती थी। इसी लिए वह बेचारी घर मे बैठी रहती थी।

उन दिनो हमारे गाव मे एक पेन्शनर सज्जन आकर रहने लगे थे। यद्यपि वे असल मे हमारे गॉव के रहने वाले नही थे, तो भी पालगढ़ की आब-हवा अच्छी और वहा ब्राह्मणो की वस्ती अधिक होने के साथ ही, हमारे गाँव के गणपति पर उनकी वड़ी श्रद्धा-भक्ति थी, इस लिए वे वहा आकर रहने लगे थे। हमारे घर के पास ही उन्होने जमीन खरीद कर एक अच्छा-सा वँगला बनवा लिया था।

माता की इन नये पड़ौसी से जान-पहचान हो गई। पेन्शनरिन् वाई बहुत भली थी। उनका स्वभाव भी वहुत प्रेमी और दयापूर्ण था। इस लिए माता खाली वक्त मे उनके यहा जा वैठती; और कभी-कभी वे भी हमारे यहा आ जाती थी। एक दिन माँ ने उनसे कहा "राधावाई! यदि तुम्हारे यहा कोई काम हो तो मै कर दिया करूगी! पीसना या दलना होगा तो वह भी कर दूगी। इससे मुझे थोडी-सी मदद मिल जायगी।" राधावाई तो शहर मे रह चुकी थी। और उन्हे नक्द पैसा दे कर आटा पिसवाने की आदत पड़ी हुमी थी। इस लिए उन्होने माता को पीसने का काम देना स्वीकार कर लिया। वेचारी माँ के शरीर में शक्ति ही कहा थी! किन्तु फिर भी क्या करती? पिताजी प्रात.काल जव उठ कर वाहर चले जाते, तो वह चक्की चलाने लग जाती थी। पाठशाला का समय होने तक छोटा पुरुषोत्तम उसकी मदद करता। इसके वाद वह अकेली ही पीसती। थोड़ी-थोड़ी देर ठहरती जाकर वह पीसना खत्म कर देती। उस समय वह सोचा करती कि "यदि आज यहा श्याम होता तो वही अकेला पीस डालता।" इसके वाद वह मेरे घर से रूठ कर चले जाने की वात का स्मरण कर रोने लगती। पीसते-पीसते उसकी ऑखे भर आती, गला रुँध जाता, हृदय भारी हो जाता, हाथ थक कर रुक जाते। उस कड़े परिश्रम की पिसाई कर के वह जो चार पैसे प्राप्त करती, उसी मे से नमक, तैल और गृहस्थी की आवश्यक चीजें मँगा लेती थी।

दिवाली के दिन निकट आ रहे थे। घर मे तैल की कुछ अधिक

आवश्यकता थी। दो-चार दीपक भी जलाने चाहिए थे। एक समय ऐसा था, जब हमारे घर मे दिवाली के दिनो मे प्रतिदिन घडाभर तेल दीपक जलाने मे खर्च होता था। सैकड़ो दीपक जलते थे। किन्तु माता के लिए अब तो उनकी स्मृति-मात्र ही शेष रह गई थी। फिर भी उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'इस बार दिवाली कैसे मनाई जाय?' इसी प्रश्न को हल् करने के विचार से माता ने उन पेन्शनरिन् बाई से कहा "यदि मै तुम्हारे घर के कपडे-लत्ते आदि धो दिया करू तो कैसा? और भी जो काम मेरे लायक हो वह अवश्य बतलावे, मै उसे कर दूगी।"

उन पेन्शनरिन् बाई की लडकी नैहर मे आई हुई थी। उसका नाम था इन्दुमति। वह प्रसूति से उठते ही बीमार हो गई थी। वह बहुत निर्बल हो रही थी। इसी लिए जलवायु पलटने को वह यहा आई थी। राधाबाई ने कहा "क्या हमारी इन्दु के शरीर मे तैल की मालिश आदि करने, और उसके बच्चे की लोई आदि कर के स्नानादि कराने का काम तुम कर सकोगी?"

माता ने कहा "अवश्य, मै बडी प्रसन्नता से यह सब कर दूगी। मुझे यह काम अच्छी तरह आता है। पहले कई वर्ष हुए मेरी चन्द्रा भी इसी प्रकार यहा आयी थी, तब भी मै ही यह सब काम करती थी।

इस प्रकार माता प्रतिदिन सूर्योदय होते ही इन्दुमति के शरीर की मालिश कर उसे नहलाने आदि के लिए जाने लगी। और चक्की पीसने का समय उसने तीसरे प्रहर का रक्खा। माता सच्चे मन से उसका काम करती थी। इन्दु के शरीर पर तैल की मालिश करते समय उसे यही प्रतीत होता, मानो मै अपनी ही लड़की के शरीर की मालिश आदि कर रही हू। उस छोटे बच्चे को भी लोई आदि कर के स्नान कराने मे उसे बडे सुख का अनुभव होता था। उस बच्चे को पैरो पर लिटा कर उसके कोमल किन्तु पिलपिले तालू पर तैल लगा कर वह बडे प्रेम से गीत आदि सुनाने लगती थी। जिस दिन से माता ने उसे लोई कर के नहलाना आरभ किया; उसी दिन से उसकी हालत सुधर चली। उसका शरीर बढने लगा और वह पुष्ट एव तेजस्वी दिखाई देने लगा। इधर इन्दु की हालत भी

बदलने लगी। उसके फीके चेहरे पर थोडा-थोडा तेज दिखाई देने लगा। वह प्रसन्न रहने लगी।

राधाबाई को माता की इस सेवा के लिए वडी श्रद्धा हो गई। महिना समाप्त होते ही उन्होने माता के हाथ पर दो रुपये रख दिये। माता ने कहा "दो की क्या आवश्यकता? एक ही बहुत है।" उन्होने कहा "नही, यशोदाबाई रहने दो! दिवाली आ गई है। तुम जिस सच्चे मन से काम करती हो, उसकी भी कही कोई कीमत हो सकती है? मन पूर्वक किये हुए काम की कीमत ठहरानी नही पडती।"

माता ने घर आकर ठाकुरजी के सम्मुख सिर झुका दिया। उसने कहा "भगवान! मेरी लाज तेरे हाथ है।" इसके बाद उन दो रुपयो में से उसने थोडा-सा घी और तैल मँगवाया। एक नारियल भी मँगाया। थोडे-से गुजिये और कुछ अनरसे (एक खाद्य-पदार्थ) तैयार किये। दिवाली के चारो दिन उसने घर के द्वार पर दो-दो दिए भी जलाये। भैया-दूज के दिन पुरुषोत्तम इन्दु के घर गया था। इन्दु ने उसकी आरती की, और पुरुषोत्तम ने एक चवन्नी भेट रक्खी। पटाखो के बदले माता ने पुरुषोत्तम के लिए एक हवाई वन्दूक बास की लम्बी नली मे तीन छेद कर के बना दी, और उसमे रखने की गोली भी तैयार कर दी थी, जिन्हे उस बन्दूक मे डाल कर पुरुषोत्तम जोरो की आवाज करता था। गोलियाँ समाप्त होने पर परिंग (एक वृक्ष) की पत्तियाँ भर कर वह बन्दूक चलाता। उसने पटाखो के लिए जरा भी हठ नही किया।

परन्तु इस अपरिमित परिश्रम के कारण माता, जो कि पहले ही से थक चुकी थी; उस क्लान्त दशा मे कितने दिन जी सकती थी? उसे बुखार आने लगा और साथ ही थोड़ा-सा श्वास भी भरने लगा। फिर भी जब तक गाड़ा धकेला जा सका, तब तक वह चुप न बैठी। तुलसी-विवाह (कार्तिक शुक्ला ११) का दिन आ गया। पुरुषोत्तम जगल मे जाकर आँवले, इमली आदि ले आया था। साथ ही वह कही से गेंदे के फूल भी ले आया था। तुलसी का विवाह हो गया। उसे हल्दी-कुकुम लगाते हुए माता ने कहा "तुलसी देवी! जब तक मेरी इज्जत बनी हुई है, तब तक तू मुझे सौभाग्यवती रख कर भगवान के घर भेज दे! बस, यही मेरी प्रार्थना है।"

३८ इज्जत पर पानी

श्याम ने कहना आरंभ किया :—

"अंत मे उस मारवाडी ने हम पर मामला चलाने का निश्चय कर लिया। अदालत मे मामला पेश हुआ और मुकदमा चलने लगा। न्यायाधीश ने साहुकार का रुपया लेना ठीक बता कर हमारी सारी जायदाद जप्त कर लेने, और उसे नीलाम कर के कर्ज चुकाने का हुक्म दे दिया।

उस दिन गाँव में डुग्डुगी पिटने वाली थी! दो दिन से माता के गले के नीचे एक ग्रास तो क्या अन्न का दाना तक नही उतरा था। रात भर उसकी आँख से आँख नहीं लगी। वह दिनरात यही प्रार्थना करने लगी "हे जगदंबे! क्या तेरे रहते हुए भी इस घर की इज्जत मिट्टी में मिल जायगी? अरे, इन कानों में उस डुग्डुगी की अमंगल ध्वनि सुनाई देने के बदले मेरे प्राणो को तू क्यो नहीं खींच लेती! ले ले, माँ, अब तो तू मुझे अपनी शरण में लेकर शांति प्रदान कर।"

पुरुषोत्तम स्कूल गया था। पीछे से माँ को जोरों का बुखार चढ़ा, और वह बिस्तर पर पड़ी हुई तडपने, रोने, लगी।

सवेरे नौ बजने का समय था। एक महार ढोल गले मे लटकाये गाँव मे डुग्डुगी पीट रहा था। वह स्थान-स्थान पर खड़ा हो कर "आज दो-पहर को भाऊराव के घर-द्वार की जप्ती होगी" आदि बाते चिल्लाते हुए कहता और ढोल पीट देता था। दूसरे की बेइज्जती होने पर सुखी होने या आनन्द अनुभव करने वाले कुछ व्यक्ति प्रायः सभी स्थानो मे होते है। वहां भी ऐसे लोगो को प्रसन्नता हो रही थी। किन्तु बेचारे खानदानी और कुलीन प्रतिष्ठित लोगो के चित्त को इस घटना से दुख हो रहा था।

महार डौंडी पीटता हुआ स्कूल के पास आया; और वहां भी उसने उन्हीं शब्दो को दोहरा कर के ढोल पीटा। सब लड़कों ने सुना। महार तो ढोल बजा कर चल दिया; किन्तु दुष्ट प्रकृति के लडके मेरे छोटे भाई को चिढ़ाने लगे। वे उस डौंडी पीटने वाले की नकल कर के मेरे भाई के

पीछे लग जाते, और कहते कि " आज पुरुषिया के घर की जप्ती होगी। ढम्-ढम्, ढम् ! " बेचारा पुरुषोत्तम इन शब्दो को सुन कर रोने लगा। उसकी आँखो से आँसू बह चले। वह मास्टर के पास जाकर कहने लगा " क्या मुझे घर जाने की छुट्टी देगे ? " यह सुन मास्टर ने उसे डाँटते हुए कहा " कहा जा रहा है ? बैठ नीचे ! आधे घटे बाद छुट्टी हुई जाती है।" कठोर-हृदय मास्टर उस कोमल अत करण वाले बालक की मनोदशा को कैसे समझ सकता था ?

दस बजे छुट्टी हुई। उस समय भी दुष्ट लडको ने मेरे भाई की बहुत दुर्गति की। उन्होने उसे बेतरह सताया। वे ढम्ढम्-ढम्-ढम् करते हुए उसके पीछे पड़ गये। वह रोता हुआ घर आया और आकर सीधा माता से जाकर लिपट गया। वह कहने लगा :—

" माँ, सब लड़के मुझे चिढाते है ! वे ऐसा क्यो करते है ? वे कहते है, तेरे घर की जप्ती होगी। गोबर के दिये जलाये जाएँगे। माँ, वे सब ऐसा क्यों कहते है री ! वे मेरे पीछे ही पड़ गये थे। क्या माँ ! हमे यहा से बाहर निकाल देगे ? माँ। तुझे क्या हो गया ? "

" बेटा, जो कुछ भगवान की इच्छा। मै भी तुझे क्या बताऊं ? " इस प्रकार कहते हुए उसने पड़े-पड़े ही पुरुषोत्तम को छाती से लगा कर शतधारा से स्नान करा दिया। माँ-बेटे उस समय शोक-सागर मे डूब गये। अत मे साहस-पूर्वक माता ने कहा " जा बच्चे, हाथ-पाँव धोकर राधाताई के यहा भोजन कर आ। इन्दु ने तुझे बुलाया है। "

छोटा बच्चा ! वह क्या समझ सकता था ! सीधा राधाताई के घर भोजन करने चला गया।

उस दिन पिताजी ने भोजन नही किया। स्नान कर के पूजादि के बाद वे मदिर मे चले गये। वहा जाकर उन्होने देवता का पूजन किया। शर्म लगती रहने पर भी वे देवता की पूजा के लिए मदिर मे गये ही। गर्दन नीची किये हुए वे मदिर मे गये और उसी तरह वापस लौट आये। जिस गाँव मे वे सरदार कहलाते और पंच माने जाते थे, जहां प्रत्येक व्यक्ति उनका सम्मान करता था, उसी गाँव मे उस दिन कोई कुत्ता भी उनसे बात नही पूछता था। जिस गाँव में

वे ठाटपाट से रहे और उनके शब्दो को सिर आँखो पर चढ़ाया जाता था, वहा आज छोटे-छोटे बच्चे भी उनकी खिल्ली उडाते थे। जहां फूल चुने थे, वही आज गोबर उठाने का प्रसग माता के लिए उपस्थित हो गया। आज-तक ज्यो-त्यो कर के माता ने दिन काटे थे; किन्तु ईश्वर तो उसकी कठोर परीक्षा लेने को ही तुला बैठा था। वह मेरी माता को सम्मान का उच्च शिखर और अपमान की गहरी खाई, दोनों ही बातो का अनुभव कराना चाहता था। पूरा सुख और पूरा दुःख दोनों ही बातो का ज्ञान तो होना ही चाहिए! अमावास्या और पूर्णिमा दोनो ही के दर्शन होने चाहिए। वह महान् जननी इस ससार का पूरा ज्ञान मेरी छोटी माता को करा देना चाहती थी।

दो-पहर को पुलिस, मुशी, पटवारी, साहुकार, गवाह आदि सब हमारे घर आ खड़े हुए। घर में भोजन बनाने के लिए चार बर्तन छोड़ कर शेष सब वस्तुएँ उन्होंने एक कोठरी मे बद कर दी। माता के शरीर पर कोई जेवर तो बचा ही न था; केवल मणि-मगलसूत्र ही शेष था। इस लिए जो कुछ भी सामान दिखाई दिया, उसे उठा कर साहुकार ने उस कोठरी मे रख दिया और ताला लगा कर सील-मुहर कर दी। हमारे रहने के लिए अत्यत कृपा-पूर्वक दो कोठरिया छोड दी गई।

उन लोगो के वापस जाने तक माता खड़ी हुई सब कुछ देख रही थी। वह केल के वृक्ष की तरह थर-थर काँप रही थी। शरीर मे ताप (ज्वर) और भीतर मनस्ताप होने से वह भीतर-बाहर दोनो तरफ से भुनी जा रही थी। उन लोगो के हटते ही माता धडाम् से गिर पड़ी। "माँ, अरी माँ!" कहता हुआ पुरुषोत्तम रोने लगा। पिताजी ने माता को सम्हाल कर बिस्तर पर सुलाया। थोडी ही देर में चेत होने पर वह कहने लगी, "जिससे डर रही थी, वही बात सामने आई! अब तो जीना और मरना दोनो ही समान है।"

---

३९ माता की अन्तिम बीमारी

श्याम आज बीमार हो गया था। उसके शरीर मे बुखार था। वह आँखे बन्द किये हुए पड़ा था।

गोविन्द ने पूछा "श्याम! क्या तेरे पाँव दबा दू?"

किन्तु उसने यही उत्तर दिया कि "नही, मेरे पैर दबाने से क्या होगा? मेरी सेवा की आवश्यकता नही है। तुम लोग अपना-अपना काम करो। उस मोहन पटैल का थान जल्दी से बुन दो। जाओ, मेरे पास बैठ रहने से क्या होगा? मै तो भगवान का नाम लेता हुआ चुप-चाप पड़ा रहूंगा। मेरी चिन्ता छोड दो।"

राम ने कहा "अरे भाई, ऐसा क्या करता है? जब गाँव में कोई बीमार पडता है तो हम उसकी खबर लेने जाते हैं; तब अपने आश्रम मे ही यदि कोई बीमार हो जाय तो क्या उसके पास बैठना उचित नही है?"

"लेकिन क्या मै इतना बीमार हू? तुम लोगो का मुझ पर अत्यंत प्रेम है, इस लिए मैं यदि पेटभर भोजन भी कर लू; तो भी तुम यही समझते हो कि मैं भूखा रहा गया हू। मै बीमार न भी होऊं तो तुम मुझे बीमार बना देते हो। तुम लोग तो पागल से हो रहे हो। अरे, जब कोई सन्निपात आदि हो जाय तो भले ही तुम मेरे पास बैठना। किन्तु वैसे तो मुझे इसी मे सतोष है कि तुम काम-काज मे लगे रहो। गोविन्द जाओ, राम तू भी जा रुई पीजने के लिए।" इस प्रकार श्याम के कहने पर सब लोग चले गये।

सायकाल के समय श्याम की हालत कुछ ठीक थी। वह बिस्तर पर बैठा हुआ सूत कात रहा था। साथ ही मुँह से मधुर श्लोक भी बोल रहा था—

तेरे सिवाय कुछ भी न सूझे। तेरे चरण मंगल-मूल जूझे।
तेरा रहे नित्य अनन्य ध्यान। गाऊं सदा मैं तव कीर्तिगान॥

तेरी रहे नित्य अनन्य भक्ति। होवे कपट से मुझ को विरक्ति।
गाऊं सदा केवल एक छंद। गोविन्द हे माधव! हे मुकुंद॥*

"क्योरे! अभी से कैसे आगये?" श्याम ने पूछा।

"तो क्या तुम रात को कहानी सुनाओगे?" एक बच्चे ने पूछा।

"हा, रात को ही कहानी सुनाऊंगा। तुम सब आना!" श्याम ने कहा।

"ये देखो, हम तुम्हारे लिए बहुत अच्छे पत्थर लाये हैं। हम उस टेकड़ी पर टहलने गये थे।" यों कह कर एक लडके ने वे सब पत्थर श्याम के पास रख दिये।

"सचमुच बड़े सुन्दर है। आओ, हम इनसे तोता बनावे।" यों कह कर सचमुच ही श्याम उन कंकड़ो से तोता बनाने लगा। लडके एक-एक पत्थर दे रहे थे। अंत में श्याम ने कहा "अब तो बस, चोच के लिए केवल एक लाल पत्थर और चाहिए।"

"यह लो! देखो, कितना सुदर है!" यों कह कर एक लड़के ने लाल पत्थर उसे दिया; और श्याम ने उसे लगा कर सुदर तोता तैयार कर लिया।

"अब मोर बनाओ, मोर!" एक दूसरे लड़के ने कहा।

इस पर श्याम ने उत्तर दिया कि "अब मोर तो तुम्ही लोग बनाओ।"

उसने कहा "हमें अच्छा बनाना नही आता।"

यह सुन श्याम ने कहा "अब तुम लोग घर जाकर जल्दी से भोजन कर आओ! फिर प्रार्थना कर के कहानी सुनाएँगे"

इस पर एक समझदार लड़का बोला "हां-हा, चलो, हम सब जल्दी से घर जाकर भोजन कर आवे।" इसके बाद वे सब पक्षी उड गये।

श्याम उन रगीन कंकड़ो की ओर देखता रहा। इसके बाद यह सोच कर कि इन "छोटे-छोटे ककडो में कितना सौन्दर्य भरा हुआ है" वह उन्हे

---

* सुचो रुचो ना तुजवीण कांहीं। जडो सदा जीव तुझ्याच पायीं॥
तुझाच लागो मज एक छंद। मुखांत गोविंद हरे मुकुंद॥
तुझाच लागो मज एक नाद। सरोत सारेच वितंड वाद॥
तुझा असो प्रेमळ एक बंध। मुखांत गोविंद हरे मुकुंद॥

हृदय से लगाने लगा। मानो सौन्दर्य-सागर परमात्मा की ही वे सब मूर्तियाँ न हो! भक्त को जहा-तहा ईश्वर की ही मूर्ति का दर्शन होता है, इस बात का उसे किंचित् अनुभव हो रहा था। उसके मुख-मण्डल पर एक प्रकार की कोमलता दृष्टि-गोचर हो रही थी।

गोविन्द, राम, नामदेव आदि सभी उसके पास आ पहुँचे। आते ही राम ने पूछा "श्याम! वह तेरे हाथ मे क्या कोई फूल है?"

इस पर श्याम ने कहा "अरे, मै अपने मलिन और पापी हाथो से कभी फूलो को स्पर्श भी करता हू? मै तो उन्हे दूर से ही सिर नवाँता हूं।"

"तो फिर तुम्हारे हाथ मे क्या है?" नामदेव ने पूछा।

"ईश्वर की मूर्ति" श्याम ने कहा।

"लेकिन तुमने अपनी गणेशजी की मूर्ति तो बाबू को दे डाली है नँ?" भीकू ने पूछा।

"हा, किन्तु मेरे पास तो कई मूर्तिया है!" श्याम ने उत्तर दिया।

"अच्छा, देखने दो, कैसी मूर्तियाँ है!" यो कह कर गोविन्द ने श्याम का हाथ पकड़ कर मुट्ठी खोली तो उसमे से हीरे-माणिक निकल पड़े।

"हा, यही मेरे हीरे है। यही मेरे देवता है! लोग कहते है कि समुद्र के तलभाग मे मोती होते है, और पृथ्वी के गर्भ मे हीरे होते है; परन्तु मुझे तो प्रत्येक नदी की वालू और प्रत्येक टेकडी के सिरे पर हीरे-मोती दिखाई देते है। देखो इनका कितना चमकदार रग है!" यो कह कर श्याम उन्हे वे कंकड दिखाने लगा।

इसके बाद राम ने पूछा "श्याम आज भी तू कुछ सुनाएगा?"

"हा-हा, अवश्य सुनाऊगा। मैंने उन लड़को से कहा है कि तुम झटपट जाकर भोजन कर आओ! उन्होने लाकर ये सुदर कंकड़ दिये है। उन्होने यह आनद देकर मेरा उत्साह बढ़ाया। मै अब तो दो घंटे तक बोल सकूगा। प्रार्थना का समय हुआ होगा नँ? हो गया हो तो घटी बजाओ!" श्याम ने कहा।

प्रार्थना की घंटी बजी। श्याम कपडा ओढ़ कर बैठ गया। प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद उसने कहना आरंभ किया —

"जप्ती के समय हमारी दूधवाली दादी घर पर नही थी। वह

कही बाहर गाँव को गई थी। वह बाद में वापस आई। किन्तु माता ने तो उसी दिन से बिस्तर पकड़ लिया। उसके शरीर मे दिनरात बुखार रहने लगा। उस बेचारी की शुश्रूषा करने वाला भी तो कोई नही था। दादी से जो कुछ हो सकता था, वह करती थी। राधाबाई भी बीच-बीच मे आ जाती, और कभी-कभी माँ को आँवले का मुरब्बा आदि दे जाती थी। कभी पित्तशामक मात्रा भी अद्रक के रस में देती रहती। जानकी मौसी और अन्य स्त्रियाँ भी उसकी खबर पूछने आती रहती थी।

परन्तु अब घर मे काम कौन करता? पड़ौसिन के शरद को स्नान कौन कराता? इसी लिए माता को जो दो रुपये मिल रहे थे वे भी बन्द हो गये। पिताजी के आने पर दूधवाली दादी क्रोध के मारे झल्लाती रहती थी।

वह कहती "मुई रसोई ही कैसे बनाई जाय? चूल्हे मे जलाने को लकड़ी की एक सीक तक नही, कण्डे का एक टुकडा तक नही, भाजी में छौंकने को तैल की बूद नही, नमक की कंकड़ी तक नही; तब क्या उसे यों ही उबाल कर रख दू?"

किन्तु फिर भी मेरे पिताजी उन्हें शांति-पूर्वक यही उत्तर देते कि "द्वारिका काकी! तुम तो हमे केवल भात ही उबाल कर परोस दिया करो। हमारी इज्जत तो जा ही चुकी है। अब उसे तुम और मत नष्ट करो।"

उस दिन माँ ने पुरुषोत्तम से कहा "बेटा, तू अपनी मौसी को एक पत्र लिख। उसमे मेरा सारा हाल लिखना। अब अंतिम समय वही काम आएगी! पत्र मिलने पर वह अवश्य चली आएगी। राधाबाई से मैंने एक पोष्टकार्ड देने को कहा है, सो तू उनके यहा जाकर ले आ। नही तो फिर इन्दुमति को ही बुला कर ले आना, वही अच्छा-सा पत्र लिख देगी। जा तो बेटा, झटपट उसे बुला कर ले आ।"

पुरुषोत्तम ने जाकर इन्दु से कहा और वह कार्ड लेकर आ गई।

आते ही उस प्रेम-मयी लड़की ने कहा "यशोदाबाई! क्या तबियत कुछ अधिक खराब जान पडती है? क्या थोडा सिर दबाऊं?"

"नही इन्दुमति, तूने पूछा यही बहुत है। दबाने से तो सिर और भी अधिक दुखता है। तुझे तो मैंने पत्र लिखने को बुलाया है। मेरी बहन

सखू को पत्र लिखना है। उसे सब समाचार विस्तार से लिखना है । वह बेचारी पत्र पढते ही चली आवेगी । किन्तु पत्र कैसे लिखना चाहिए, यह तो तू ही अच्छी तरह जान सकती है ।" माता ने कहा।

यह सुन इन्दुमति ने अच्छे ढग मे पत्र लिख दिया; और पता लिख देने के बाद पुरुषोत्तम जाकर उसे लेटर-बॉक्स मे छोड़ आया । इतने ही मे इन्दुमति के घर से शरद के जगने की खबर आने से वह चल दी।

"बेटा, थोडा-सा पानी तो पिला !" यो कह कर माता ने पुरुषोत्तम से पानी माँगा। वह भोला बच्चा एकदम ग्लास भरकर मुँह मे डालने लगा। तब माता ने समझाया "ऐसे नही बेटा, चमचे से मुँह मे डाल, अथवा संध्या की आचमनी से थोडा-थोडा कर के पिला, यदि चम्मच न मिले तो." पुरुषोत्तम ने माता की आज्ञानुसार उसे पानी पिलाया।

"आओ, जानकी जीजी, बैठो !" जानकी मौसी समाचार पूछने आई थी। उन्होंने पूछा "क्या थोडे-से पैर दबा दू ?" माँ ने कहा "नही जीजी, दबाने से तो उल्टे ये हाड दूखने लगेंगे । तुम तो मेरे पास ही बैठो तो मुझे सन्तोष होगा।"

कुछ ही देर के बाद मौसी ने पूछा "आँवले की बर्फी के टुकड़े ला दूं क्या ? उनको मुँह में रखने से जीभ में थोडी-सी रुचि उत्पन्न होगी ! "

"लादो, थोड़ा-सा टुकडा।" माता ने क्षीण-स्वर मे उत्तर दिया।

"चल रे पुरुषोत्तम, तुझे वह टुकड़ा दे देती हूं। लाकर यहां माँ को दे देना।" यो कहते हुए जानकी मौसी चली गई। पुरुषोत्तम भी उनके साथ गया; और उनकी दी हुई आँवला पाक की बर्फी का टुकड़ा उसने माता के मुँह मे डाल दिया। वह उसे चूसने लगी और पुरुषोत्तम बैठा रहा।

थोडी ही देर के बाद माता ने उसकी पीठ पर प्रेम-पूर्वक हाथ फेरते हुए कहा "जा बेटा, थोड़ी देर को बाहर खेल आ । स्कूल मे मत जाना। जिस दिन मेरी तबियत ठीक हो जाय, उसी दिन स्कूल जाना।"

पुरुषोत्तम खेलने चला गया।

तीसरे प्रहर नर्मदा मौसी माँ की खबर पूछने आई! वह मेरी माता की बचपन की सहेली थी। उसकी सुसराल भी उसी गाँव मे थी।

दोनों सखियाँ बचपन मे गुड्डे-गुड्डी आदि से साथ ही खेला करती थी। दोनो ने झूले पर बैठ कर स्तवन के गीत गाये थे, और एक जगह ही दोनो ने मगला-गौरी का पूजन किया था। वे एक दूसरी के घर बहनोली बन कर भी गई थी। नर्मदा मौसी बारम्बार माँ की खबर पूछने नही आ सकती थी। उसका घर गाँव के दूसरे सिरे पर था; साथ ही उसकी तबियत भी ठीक नही थी।

मौसी के आते ही माँ ने पूछा "आओ बहन! कैसी तबियत है? तेरे पाँव में सूजन आ गई थी, अब क्या हाल है?"

"अब ठीक है बहन! चपे के पत्तो से सेकने के कारण सूजन उतर गई है। किन्तु तेरा क्या हाल है? तू तो निरी हाड्डियो की माला ही बन गई। तेरे शरीर मे से बुखार ही नही निकलता!" इस प्रकार मौसी मेरी माता के शरीर पर हाथ फेरने लगी।

"नर्मदे, तेरे साथ पुरुषोत्तम आवेगा, इसे थोडा-सा तैल एक कटोरी मे दे देना। घर मे तैल की एक बूद तक नही है। काकी चिल्लाती है। तू तो सब हाल जानती ही है। मै तुझ से क्या कहूं! तू भी तो घर की कोई धनवान नही है। गरीब ही है बहन तू भी। किन्तु फिर भी मेरे लिए तू कोई परायी नही है, इसी लिए तुझ से मैंने यह बात भी कही।" इस प्रकार माता ने मौसी से कहा।

"हा-हा बहन। इसमें क्या बुरी बात है। तू अपने चित्त को बुरा न लगने दे। तेरा सच्चा रोग तो यही है। अभी इन बच्चो को तेरी जरूरत है यशोदा! घबराए मत, थोड़ा-सा धैर्य धर!"

"नर्मदे! अब तो जीने की जरा भी इच्छा नही है। मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी है। सारे मनोरथ पूरे हो गये!" माता ने कहा।

"अरी, सध्या-समय ऐसी बात मुँह से नही निकालनी चाहिए। कल तेरे लिए नर्म-पतला भात बना कर लाऊगी। तू खाएगी नँ?" इस प्रकार नर्मदा मौसी ने बडे आग्रह से पूछा।

यह सुन माता ने आँखो मे आँसू भर कर कहा "अब तो यही इच्छा है कि भगवान मेरी आँखे बद कर दे। कितना लज्जामय जीवन है मा!"

"अरे, यह क्या कहती है बहन ! तू तो अच्छी हो जायगी। फिर तेरे वे अच्छे दिन आएँगे। तेरे श्याम और गजानन नौकरी करेंगे और तुझे सुखी बनाएँगे। क्या गजानन की कोई नौकरी लग गई है ?" मौसी ने पूछा।

"हा बहन, पिछले महिने में ही नौकरी मिली है; परन्तु केवल उन्नीस रुपये वेतन है। बम्बई मे रह कर वह वेचारा खायेगा क्या और पहनेगा क्या ? और यहा हमारे लिए क्या भेजेगा ? वह कुछ लड़को को पढाता है। परसो ही उसने पाच रुपये भेजे है। वेचारा पेट काट कर काम करता होगा !"

"श्याम को तेरी तबियत खराब हो जाने की खबर दे दी है क्या ?" इस प्रकार मौसी ने पूछा। किन्तु माता ने कहा कि "मैंने उन्हे मना कर दिया कि श्याम को खबर मत देना। वह वेचारा वहा पढ़ रहा होगा। व्यर्थ उसके चित्त मे क्यो चिंता उत्पन्न की जाय ! और उसके पास यहां आने के लिए पैसे भी तो नही होगे ! यहा आने के बाद फिर वापस जाने पर उसके लिए पैसो का प्रवन्ध करना पड़ेगा। पैसे विना ये लम्बी यात्राएँ कैसे हो सकती है ? यहा छावनी मे पास था, तब तो इच्छा होते ही आ-जा सकता था ! किन्तु वह वेचारा विद्याध्ययन के लिए दूर गया है। उसे परमात्मा सुखी रक्खे यही बहुत है। मेरा क्या है ?" माता ने कहा।

नर्मदा मौसी चलने लगी तो माता ने कहा "अरी कुकुम तो लगा ले वहन ! उधर ताक में डिविया रखी है।" मौसी ने कुंकुम लेकर अपने कपाल पर लगाया और माता के सिर पर भी। इसके बाद वह चली गई।

"माँ, यह देख मौसी की चिट्ठी आई है। मैने सारी पढ़ ली। क्या तुझे पढ़ कर सुनाऊं ?" यो कह कर पुरुषोत्तम ने मौसी का पत्र पढ़ सुनाया। मौसी के अक्षर बड़े साफ और जमे हुए थे। मौसी आ रही है, यह जान कर माता को प्रसन्नता हुई। इतने ही मे इन्दुमति आगई। उससे माता ने कहा "इन्दु, कल सखू आ जायगी। तूने पत्र लिखा था न ?

यह देख उसका उत्तर । अरे ! दे तो वह पत्र इन्दु जीजी को !" इस प्रकार माँ ने पुरुषोत्तम से कहा ।

इन्दुमति ने पत्र पढ कर कहा "मै अवश्य उनसे मिलूगी । तुम उनकी बहुत-सी बाते सुना चुकी हो । मै चाहती थी कि कब उनको देखू ।" इतने ही मे राधाबाई ने इन्दु को पुकारा । वह उठ खड़ी हुई और बोली, "पुरुषोत्तम, चल मेरे साथ ! हमारे घर 'साजा' (मसालेदार दलिया) बनाया है ।" माता ने भी पुरुषोत्तम से जाने के लिए कहते हुए समझाया "जा बेटा, ये कोई पराये लोग नही है "

पुरुषोत्तम के चले जाने पर पिताजी माता के पास आकर कहने लगे "मेरे कारण ही आज तेरी दुर्दशा हो रही है । आज मै तुझे पूरी तरह खाने-पीने को भी नही दे सकता ! मै अभागा हू । परतु मै भी तो क्या करूं ? जो कुछ भगवान की इच्छा ।"

"अरे, आप यह क्या कहते है । इस तरह यदि आप ही हिम्मत हार जाएँगे, तो बेचारा वह अबोध पुरुषोत्तम क्या करेगा ? उसे धैर्य दीजिये । आप भी चित्त मे कोई अन्य भावना मत लाइये । आप ही के जीवन-प्राणों पर मैंने सब कुछ किया, सारे सुख भोगे । वैभव का जीवन बिताया । मेरे लिए किस बात की कमी थी ? अब ये कष्ट के दिन आये है तो ये भी निकल जाएँगे ! इन बच्चो का पुरुषार्थ-वैभव यदि मै न भी देख सकू तो भी क्या है ? आप तो देखेगे ! मै आप की आँखो मे आ बसूगी नाथ ।" माता समझाने लगी ।

इस पर पिताजी ने कहा "अरी, तू इतना क्यो घबराती है ! तू भी अच्छी हो जायगी । वह सखू आ कर तुझे अच्छा कर देगी ।"

"अब व्यर्थ को झूटी आशा रखने से क्या लाभ है ! भीतर से तो सारा वृक्ष खोखला हो गया है । अब तो यह गिरेगा ही । मेरे लिए तो सोने (स्वर्ग) का दिन उगेगा । मैं भरे हाथो सौभाग्यवती होकर जाऊगी । केवल इसी बात का दु ख है कि पीछे से आप की खबर लेने वाला कोई नही है । नही तो मेरे लिये आज भी किस बात की कमी है ! आप की गोद मे मृत्यु आवे, इससे बढ कर भाग्य की बात और क्या हो सकती है ? इस सौभाग्य के सम्मुख सारे ही सुख तुच्छ है । इस सौभाग्य के आनन्द के

कारण मुझे सारे ही दुःख आनद-प्रद प्रतीत हो रहे है।" यो कहते-कहते माता ने अपना गर्म हाथ पिताजी के चरणो की ओर बढ़ाया। बोलने के कारण वह थक गई थी। पिताजी ने उसका हाथ बीच में ही थाम लिया।

उसने पिताजी से कहा "पानी! थोडा-सा पानी आप के हाथ से पिलाइये।" पिताजी ने झारी मे से थोडा-सा पानी पिलाया।

"आप के हाथ से पिया हुआ पानी गगाजल के समान ही है। वह अमृत-तुल्य है, किम्बहुना उससे भी अधिक मीठा है। बस, अब आज आप मेरे पास ही बैठे रहिये, कही जाइये मत! मैं आँखे मून्द कर आप का ध्यान करती हू।" यो कह कर पिताजी का हाथ अपने हाथ मे लिये हुए आँखें बद कर के माता ध्यान करने लगी। वह दृश्य बड़ा ही पवित्र, रोमांच-कारी, प्रेममय और करुणार्द्र था।

इतने ही में राधाबाई आगई; और पिताजी को वहा बैठा देख वापस जाने लगी। किन्तु उसी क्षण मेरे विनयशील पिता यह कहते हुए बाहर चले गये कि "आओ इन्दुमति की माँ, बैठो", राधाबाई आकर माँ के पास बैठ गई। उन्होने माता के बालो पर हाथ फिरा कर सामने आये हुए बाल ठीक कर दिये। इसके बाद पूछा "तो क्या तुम्हारी बहन कल आवेगी?"

इस पर माता ने कहा "हा राधाबाई! इन्दुमति ने ही तो पत्र पढा है।"

"मुझ से भी उसी ने कहा। अच्छा है। अपना निजी व्यक्ति पास मे रहने से चित्त को संतोष होता है।" राधाबाई ने उत्तर दिया।

"मेरे लिए तो सभी अपने हैं। वे पास मे है। तुम्हारा पडौस है। इससे अधिक और क्या चाहिए?"

कुछ देर बैठ कर राधाबाई चली गई।

सबेरे मौसी आ रही थी, इस कारण पुरुषोत्तम बहुत ही जल्दी उठ बैठा, और तभी से वह बराबर गाडियो की आवाज सुन रहा था। जहाज से उतर कर आने वाले मनुष्यो को लेकर बैलगाडियाँ प्रातःकाल ही पालगढ आती है। अपने दरवाजे पर जैसे ही किसी गाड़ी के रुकने की आवाज सुनाता कि; तत्काल पुरुषोत्तम बाहर जाता और तब तक गाड़ी

आगे बढ़ जाती। अंत में एक गाड़ी आकर हमारे दरवाजे के सामने खड़ी हो गई।

दादी ने कहा "पुरुषोत्तम, यह तो अपने दरवाजे पर ही ठहरी है।" दादी उस समय चौका लगा रही थी। पुरुषोत्तम दौड़ कर गया। पिताजी भी बाहर आये। मौसी आ गई थी। पुरुषोत्तम कंडिया उठा कर लाया और पिताजी ट्रंक ले आये। मौसी ने अपना बिस्तर उठाया था। किराया लेकर गाड़ी वाला चला गया।

"माँ, यह देख मौसी आ गई! सचमुच ही आ गई, देख तो!" यों कह कर पुरुषोत्तम ने माँ को जगाया। वह एक स्वप्न देख रही थी।

"आ गई! अच्छा किया! अब मेरा मार्ग साफ हो गया।" यों कहते हुए माता कुछ सावधान और किंचित् अचेत दशा में पड़ी हुई थी। मौसी आकर माँ के पास बैठ गई। आज कई वर्षों के बाद दोनों बहनें मिली थीं। माँ के उस अस्थि-चर्म-मय शरीर को देख कर मौसी के नेत्रों में पानी भर आया।

"जीजी!" मौसी ने माँ को पुकारा। उस आवाज में, उन दो अक्षरों में मौसी का स्नेहपूर्ण उदार अंतःकरण भरा हुआ था।

"आगई सखू! बैठ! मैं तेरी ही बाट देख रही थी। कहती थी देखें कब आती है। परन्तु तू बहुत जल्दी आई। मैं अपने प्राणों को कण्ठ में ही रखे हुई थी। सोच रही थी कि तू आ जाय; तो तेरी गोद में इन बच्चों को सौंप कर अपनी जीवन-यात्रा पूरी करूं!" इस प्रकार कहते-कहते माता रोने लगी।

मौसी ने कहा "जीजी! यह क्या पागल जैसी बात करती है। अब मैं आगई हूं; तो तू अवश्य अच्छी हो जायगी। थोड़ी-सी हालत सुधरते ही मैं तुझे पुरुषोत्तम के साथ अपने घर ले जाऊंगी। अब तो मुझे नौकरी मिल गई है।"

"नहीं, अब कहीं आने-जाने की जरूरत नहीं! अब तो केवल परमात्मा के ही घर जाने दे सखू! इसी कुटिया में ही शरीर छूटने दे। मैंने अत्यंत आग्रह कर के यह मकान बनवाया—यह स्वतंत्र झोंपड़ा खड़ा करवाया था! इस लिए अब यहीं, इसी राजभवन में मेरा शरीर छूटे,

यही कामना है । उनकी गोद में, तेरे पास रहते हुए मौत आ जाय, यही अच्छा है। 'माँ मरे, किन्तु मौसी जिये' की कहावत यथार्थ सिद्ध हो। सखू! तेरे न कोई लड़का है न बच्चा। तेरा ससार परमात्मा ने शीघ्र ही समेट लिया। मानो उसने तुझे मेरे इन बच्चो के ही लिए निर्माण न किया हो! इन बच्चो को अब तू ही सम्हालना, तू ही इनकी माँ बनना!" इस प्रकार माता कह रही थी।

"जीजी, यह तू क्या कह रही है! इस तरह कोई कहता भी है? तुझे अधिक बोलने मे कष्ट हो रहा है, इस लिए चुपचाप लेट जा। मैं जरा तेरा सिर सुहलाती हूं।" यों कह कर मौसी ने अपना गर्म कम्बल (ब्लाकेट) माँ को उढ़ा दिया। जीवन-भर मे यह पहली ही बार माता के शरीर ने ब्लाकेट का स्पर्श किया था। चौतही और रुई के गूदड़ के सिवाय वह बेचारी कुछ जानती ही नही थी।

इसके बाद मौसी माता का सिर सुहलाने लगी। उस समय वहा गगा-यमुना का पावित्र्य दिखाई देता था। वह उषा और निशा का गंभीर मिलन था।

---

४० "सभी प्रेम से रहो"

श्याम की कहानी आरभ हो चुकी थी। दूर कुत्ते भौक रहे थे। गाँव के बाहर कुछ भटकते हुए वडार जाति के लोग ठहरे थे। उन्ही के ये कुत्ते थे।

सखू मौसी दिनरात मेरी माता की ऐसी सेवा कर रही थी। मानो वह रोगियो की परिचर्या का ज्ञान जन्मजात ही रखती न हो! वह जन्मजात परिचारिका थी। उसने माता के लिए साफ विछौना विछाया, और अपने विस्तर में की चद्दर भी उसने माना के नीचे विछा दी; तथा सिर के नीचे साफ तकिया रख दिया। एक कटोरी मे सूखी राख भर कर थूकने के लिए रख दी। साथ ही उसपर तख्ते का एक टुकड़ा ढक्कन

के रूप मे रख दिया। उस कटोरी को मौसी खुद ही साफ करती थी। हर तीसरे दिन मौसी कोठरी के किवाड वन्द कर गर्म पानी मे भीगे हुए (टॉवेल) रुमाल को निचोडने के बाद धीरे-धीरे माता का शरीर पोछ देती थी। वह साथ मे थर्मामीटर भी लाई थी। उससे दिन मे कई बार बुखार भी देख लेती थी। बुखार अधिक वढने पर वह कोलन-वॉटर की पट्टी भिगो कर माता के सिर पर रखती थी। वह माता की कमर के नीचे मोमजामा बिछा कर उसी पर कागज रख देती; और लेटे हुए ही शौच-निवृत्ति कराती थी। इसके बाद उस कागज को हटा कर दूसरा कागज रख देती थी। वह माता की अधिक से अधिक जितनी परिचर्या कर सकती थी, उसमे कोई कसर न पडने देती थी। उसने माँ को चावल देना वन्द कर शुद्ध ताजे दूध की वन्दी लगा दी। सुवह जमाया हुआ दही वह रात को विलोती, और रात का सवेरे। इसके वाद वह उसे छान लेती जिसमे कि मक्खन न रह जाय। इस प्रकार वह छाछ का पानी दोनो वक्त माँ को दिया जाने लगा। आते समय वह मौसम्बी भी लाई थी; अतएव थोडा-थोडा उनका रस भी वह माता को पिलाती रहती थी। जीवन-भर मे जैसी परिचर्या नही हुई थी, वैसा उत्तम प्रबन्ध मौसी ने दो दिन में शुरू कर दिया। जन्म-भर उसने कष्ट भोगे, परन्तु मरने से पहले मौसी ने उसे पूरा-पूरा आराम पहुँचाया। इस प्रकार मौसी मानो मूर्तिमान सेवा का रूप धारण कर हार्दिक-भाव से माँ की परिचर्या कर रही थी। वह अत्यत निरलस और स्वाभाविक-रूप से सब काम करती थी।

माँ ने पूछा "क्योरे! वह मथी सबेरे से म्याऊँ-म्याऊँ कर रही है, क्या उसे भात नही दिया खाने को?" माँ की उस प्यारी बिल्ली का नाम मथी था। वह इतनी अच्छी विल्ली थी कि चौका तो दूर, कभी दूध की मटकी में भी मुँह नहीं डालती थी। उसके लिए चुल्लू भर दूध दे देने से सतोष हो जाता था। वड़ी अच्छी बिल्ली थी। इसी लिए माँ बीमारी मे भी उसका ध्यान रखती थी।

मौसी ने कहा "जीजी, मैंने खुद उसके सामने दूध और घी सहित भात रक्खा, परन्तु उसने मुँह तक नही लगाया, सूंघ कर ही चली गई। खालिया होगा कोई चूहा; इस लिए नहीं खाती होगी!"

माता ने कहा " नही सखू, उस बेचारी के पेट मे दुखता होगा, या और कोई बात होगी। वह बेचारी क्या मुँह से कह सकती है कि मुझे क्या कष्ट है! मूक पशु है बेचारी!"

माँ का रोग बढता ही जा रहा था। उसके कम होने के कुछ भी चिन्ह नही दिखाई देते थे। बम्बई से मेरा बड़ा भाई चार दिन की छुट्टी लेकर माँ से मिलने के लिए आया था। उसकी नई नौकरी थी। छुट्टी मिलती नही थी। बडी प्रार्थना करने पर चार दिन की छुट्टी मिली थी।

माँ की दशा देख कर उसका जी भर आया। वह रोते हुए कहने लगा " माँ, तेरी यह क्या दुर्गति हो रही है! माँ, तू यहां नित्य चक्की चलाती और शक्ति से बाहर का परिश्रम करती थी, और हम वहां चैन से दोनो वक्त भर पेट खाते थे; जब कि तुझे एक बार भी भर पेट तो क्या अधूरा भोजन भी नही मिलता था।" छोटे पुरुषोत्तम ने उसे सब हाल सुना दिया था। माँ को किस प्रकार कष्ट भोगने पड़े; कैसे जप्ती की डुग्डुगी पिटी, वह सब हाल उसने कह दिया था। दादा का हृदय फटने लगा। फिर भी माता ने कहा " घबराओ मत बच्चों; यह तो ससार का धन्धा चलता ही है। इस शरीर को अच्छा खाने को दिया तो क्या; और बुरा दिया तो क्या? जब तक ईश्वर को यह यंत्र चलाना है, तभी तक यह चलेगा। इस लिए तू दुखी मत हो बेटा! तुम भी तो कहा परदेश मे चैन से रहते हो! दिन-भर परिश्रम करना पड़ता है! उस दिन तूने पाच रुपये भेजे तो मैंने अपने को धन्य समझा! उन्नीस रुपयो मे से तूने पाच रुपये यहा भेजे, यह देख कर मेरे शरीर पर मूठ भर मास चढ गया! बेटे की ओर से आये हुए पहले मनीआर्डर को पाकर उन्हे भी बडा आनन्द हुआ। अब मुझे कुछ भी चिंता नही है। तुम्हें तैयार कर देना मात्र ही मेरा काम था! तुम अच्छे निकले; यही मेरे लिए परम संतोष की बात है। तुम्हे अधिक द्रव्य मिले या न मिले, इसकी मुझे चिंता नही, तुम्हारे पास गुणो की संपत्ति है, यही मेरे लिए परम सतोष का विषय है। श्याम औंध में है ही, पुरुषोत्तम को इसकी मौसी तयार कर देगी। तुम परस्पर प्रेमभाव बनाये रखना और एक

दूसरे को छोड़ मत बैठना।" इस प्रकार मानो माता, सब कुछ समझा बुझा कर जाने की तैयारी कर रही थी।

"माँ! मै यही रहूगा तेरे पास। ठीक है नँ माँ! वह नौकरी कर के भी क्या करना है? यदि इस अवस्था मे भी माता की सेवा न कर सका, तो ऐसी नौकरी से क्या लाभ? मुझे नौकरी की जरा भी इच्छा नही है। तेरे चरणो की सेवा से बढ कर मेरे लिए अपने अफसर की खुशामद नही हो सकती। माँ, तेरी सेवा, तेरी चरण-सेवा में ही मेरा कल्याण है। मेरा भाग्य, मेरी मुक्ति और मेरा सर्वस्व सब कुछ तू ही है। माँ, तू जैसी आज्ञा देगी, वही मै करूंगा। मै इस्तीफा लिख कर साथ लाया हूं! उसे भेज दू नँ?" इस प्रकार दादा भरे हुए कण्ठ से माता के सामने मनोभाव व्यक्त कर रहा था।

माता ने विचार कर के धीरे से कहा "गजू! अभी तो सखू मौसी यहा है। नौकरी पहले तो मिलती नही, उसमे भी जब बडी मुश्किल से नौकरी मिली है; तो उसे कायम रख कर तू पाच रुपये महिना यहां भेजता जा! पांच नहीं यदि दो-दो रुपये भी भेजे तो हानि नही, किन्तु हर महिने याद रख कर भेजते रहना। उनकी सेवा में ही मेरी सेवा है। मै अभी इतने ही में नही मर जाऊगी। उतनी भाग्यशालिनी मै नही हूं। मै तो इसी प्रकार धीरे-धीरे मरूंगी। यदि फिर कुछ कम-ज्यादा तबियत हुई तो तुझे खबर करवा दूगी। इसी प्रकार आकर फिर तू मुझ से मिल जाना।"

दादा वापस बम्बई जाने के लिए चल दिया। अभागे श्याम की तरह अभागा गजानन भी चल दिया। उसे इस बात की कल्पना तक नही थी कि माता का यह अंतिम-दर्शन है। चलते समय जब उसने माता के चरणो मे प्रणाम किया, तो माता ने अपना दुर्बल हाथ उसके सिर और पीठ पर फेर कर मूक-भाव मे मगल आशीर्वाद दिया। और कहा "जा, बेटा! मेरी चिंता मत करना। श्याम को पत्र मे मेरी अच्छी होने की ही खबर लिखना। उसे व्यर्थ की चिंता न हो जाय। सब लोग आनन्द से रहना, एक दूसरे को अंतर मत देना।"

भारी अंत करण लिये हुए दादा चला गया। कर्तव्य-वश उसे जाना पड़ा। सच है, संसार की गति बडी गहन है।

---

४१ दीप-निर्वाण

"इस नीबू को थोड़ा-सा पानी सीच दो, नही तो वह सूख जायगा। और कटहल के उस नये पौवे को भी पानी देना।" इस प्रकार माता सन्निपात की अवस्था में बकवाद कर रही थी। किन्तु उस दशा में भी वह अपने लगाये हुए नए पौधो को ही देख रही थी। बीमार और निर्बल होते हुए भी वह वृक्षो के नीचे नई मिट्टी और खाद आदि डाल कर पानी सीचती रहती थी। साथ ही वह यह भी देख लेती थी कि उनके पत्तो को कीडे आदि तो नही खा रहे है। आँगन में माता के हाथ के लगाये हुए कितने ही पौधे थे। मै दापोली मे रहते समय चंदन का 'रोप' ले गया था। और सब पौधे तो सूख गये, परन्तु वह चंदन का पौधा अब भी लहलहा रहा था। क्या प्रेम-पूर्वक लगाया जाने और प्रेम से सीचा जाने के कारण ही वह बचा था?

प्रातःकाल का समय था। माँ वात (सन्निपात) मे बडबड़ा रही थी। उसकी बातो मे परस्पर सबध नही था। कभी तो वह वृक्षो को पानी पिलाने के लिए कहती; और कभी जप्ती की डुगडुगी पिटने की बात कह कर कानों मे उगली लगाने लगती थी। केवल पुरुषोत्तम ही सोया हुआ था। शेष सभी व्यक्ति माता के आसपास बैठे हुए थे। सबके मुँह उतर गये थे। मलीन हो रहे थे। मानो उस घर मे मृत्यु ही आ बैठी थी।

"वह देखो, उस खूटी पर श्याम बैठा हुआ है। नीचे आ रे, लुच्चे! बचपन का हठ अभी तक नही छूटा। इधर मेरे पास आ बेटा! माता से हठ न करे तो और किस से करेगा? किन्तु अब बस कर बेटा! इधर मेरे पास आ!" इस प्रकार माता मुझे याद कर रही थी।

"जीजी! ओ जीजी!" इस प्रकार मौसी माता को पुकार रही थी। उसे होश मे लाने का प्रयत्न कर रही थी।

"नर्मदे! मै तेरा तेल वापस न कर सकी; नाराज न होना बहन! श्याम! जरा इधर आकर तेरा ठण्डा हाथ मेरे सिर पर तो रख बेटा!"

माता के इन शब्दो को सुन सब की आँखे डबडवा आईं। किसी के मुँह से एक शब्द तक न निकल सका। सब लोग स्तब्ध—मौन थे।

"आप की गोद ही मेरी इज्जत-आबरू है। वह डुगडुगी पीट रहे है तो पीटने दो। मेरे लिए तो आप के चरण और मस्तक पर कुंकुम रहना ही बहुत है। फिर मेरी इज्जत कौन ले सकता है? कौन-सा साहुकार मेरी इस इज्जत-सौभाग्य को छीन सकता है? मेरी इज्जत क्या वस्त्राभूषण या घर-द्वार या खेती-बारी मे है? उनके चरण, उनकी गोद और उनका प्रेम ही मेरा सर्वस्व-सौभाग्य है। लाओ, उनकी गोद मे मेरा सिर रख दो।" यो कह कर वात के जोर मे माता उठने लगी। वह किसी से सम्हाली न गई। बडी कठिनाई से सब ने मिल कर उसे बिस्तर पर लिटाया।

पिताजी ने माता की इच्छानुसार उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। उसने माँगा "पानी-पानी, थोडा-सा पानी!"

मौसी ने माता के मुँह मे चम्मच से पानी डाला। इसके बाद पुकारा "जीजी!" किन्तु माता स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। इसके बाद "कुछ नही, कुछ नही" कह कर उसने हाथ हिलाया। फिर कुछ देर माता शात रही; और तब उसने पूछा "ले लिया मेरा सिर अपनी गोद मे।"

पिताजी ने कहा "हां, देख! मै तेरे पास ही तो बैठा हुआ हूं। अब अधिक बोले मत!"

कुछ देर के बाद वह फिर उसी वात की हालत में कहने लगी "आ, बेटा! तू मुझसे मिलने के लिए आया है? चंद्रावती भी आई? आओ, तुम सब इधर बैठ जाओ! अरे, पर श्याम! तू पढ़ना छोड़ कर क्यो आ गया? तेरे पास तो मै हमेशा ही बनी रहती हू, और तू भी मुझसे दूर नही है। फिर भी जब तू आ ही गया है तो आ, बैठ मेरे पास! इस प्रकार रुठे मत श्याम! अब मैं तुझे चक्की चलाने के लिए साथ बैठने को नही कहूंगी! अब समाप्त हो गया। आ जा श्याम। अरे; नही क्या कहते हो, वह देखो, मुझे सामने ही तो अपना श्याम खड़ा दिखाई देता है! हा,

वह श्याम ही है! उसे तुम पहचान नही सके, इस लिए क्या; मैं—माता—भी उसे नही पहचान सकती ?"

इस तरह बडी कठिनाई से वह रात बीती। दिन निकलते ही मौसी ने पुरुषोत्तम से कहा "जा रे, राधाबाई के यहा से हेमगर्भ की मात्रा लाकर रख ले।" हेमगर्भ की मात्रा मनुष्य को अन्तिम क्षण मे दी जाती है; इससे दस-पाच मिनट तक मनुष्य के हृदय की धड़कन् और भी बनी रहती है। मौसी को माता के चिन्ह कुछ अच्छे नही दिखाई दे रहे थे। एक ही रात मे माता की आँखें बहुत गहरी चली गई थी।

उस दिन संकष्टी-चतुर्थी थी। पिताजी को उपवास था। किन्तु जब से वे अशक्त हो गये, तब से दो-पहर को थोडा-सा फलाहार करने लगे थे। माता ने कहा "आज चतुर्थी है नँ? जाओ स्नान करो और थोड़ा-सा फलाहार कर लो। व्यर्थ मेरी चिंता मे अपनी दुर्गति मत कर डालो! जाओ कुछ खा-पी लो।" इस प्रकार थोडी-थोड़ी बाते वह बड़े कष्ट के साथ कह रही थी। उसके आग्रह के अनुसार पिताजी उठे और स्नान कर के मदिर में गये। उधर से आते समय वे गणेशजी का चरणामृत लाये और वह माता को पिलाया गया।

इसके बाद माँ ने पुरुषोत्तम को अपने पास बुला लिया, और उसके मुँह पर बडे ही प्रेम से हाथ फिराया एवं अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा "बेटा अच्छी तरह रहना, निरर्थक हठ मत कर बैठना। तेरे भाई है, मौसी है, इनकी आज्ञा में चलना, अच्छी तरह बरतना।" यह सुन पुरुषोत्तम रोने लगा। फिर भी माता उसकी पीठ पर बराबर हाथ फेर रही थी।

कुछ देर बाद माँ ने पूछा "सखू! सब ने खा लिया क्या?"

मौसी ने कहा "हा, जीजी! सब ने खा-पी लिया।"

"सखू! ये सब तेरे ही है! माँ मरे और मौसी जिये। पुरुषोत्तम, श्याम सब तेरे ही है। गजाजन, चंद्रा भी तेरे ही है।" इस प्रकार माता मौसी को सब अन्तिम बाते समझा रही थी।

"हां, जीजी!" मौसी ने कहा "श्याम गरीब स्वभाव का है और चद्रा, गजू का भी ईश्वर है। सब का आधार वही है।" इस प्रकार माता

लड़खड़ाते हुए स्वर मे रुक-रुक कर कह रही थी। बड़ी देर मे वह एक-एक शब्द बोलती थी।

सब लोग माँ के आसपास बैठे हुए थे। बूढी दादी की ओर देख कर माँ ने कहा " क्षमा करना काकी ! जो कुछ बोल-चाल मे भूल हुई हो, उसे विसार देना। " इन शब्दो से दादी भी द्रवित हो उठी। इस प्रकार बडी देर के बाद एक-एक शब्द रुक-रुक कर माता के मुख से निकल रहा था।

" सखू ! नाना (पिता) से कहना कि क्षमा करे। मै उनकी लड़की ही तो हू। अपनी बाई-बेटी को क्षमा करे। "

फिर शान्त। इसके बाद बीच-बीच मे माता आँखे फिराने लगती, और कभी आँखें बद कर लेती। अंत में " श्याम " एक ही शब्द निकला !

मौसी ने कहा " जीजी, आज ही मै उसे आने के लिए पत्र लिखती हू ! " इसके बाद मौसी ने मेरे पिता से कहा कि " ब्राह्मण को बुला कर गो-प्रदान का संकल्प करवाइये। "

मरते समय गऊ दान करने का विधान है। यदि गाय न हो तो निष्क्रय-रूप से 'गो-प्रदान' का सकल्प छोडा जाता है। इसी लिए माता के हाथ से भी 'गो-प्रदान' का सकल्प छुडवाया गया।

माता से बोला न जा सका। उसकी वाणी बंद हो गई। वह केवल आँखें खोल कर देखने लगी। पुरुषोत्तम के शरीर पर हाथ फेरते हुए वह बीच मे ही ऊपर की ओर उगली उठाती, और ईश्वर के घर जाने की बात सूचित करने लगती। बहुत देर के बाद वह शरीर की समस्त शक्ति को एकत्रित कर पिताजी से बोली " तुम शरीर को सम्हालना, व्यर्थ कष्ट मत भोगना। मै सुख से इस गोद मे —" आगे नही बोला गया।

सब लोग शात थे। माता का ऊर्ध्व-श्वास शुरू हो गया ! गाँव के वृद्ध वैद्य कृष्णाजी आये। उन्होने नाड़ी देख कर खिन्न स्वर मे कहा " केवल आधी घडी शेष है। " इसके बाद वे चले गये। पड़ौस मे से राधाबाई और जानकी मौसी भी आ गई थी। नर्मदा मौसी बैठी हुई थी और इन्दुमति जीजी भी थी।

उस समय वहा स्मशान-शाति छाई हुई थी। माता के जाने मे अब किसी को शका नही रह गई थी।

पिताजी बोले "बेचारे श्याम और चद्रा न मिल पाये। गजू तो मिल गया। इस पर जानकी मौसी ने पूछा "परन्तु उनको भी याद तो किया ही होगा नँ!"

माता के होट हिलते से दिखाई दिये। कदाचित् उसे कुछ कहना था, या कोई बात बतलानी थी; परन्तु उससे बोला नही जाता था। वे होट 'राम' कह रहे थे या 'श्याम?' उसी समय राधाबाई ने हेमगर्भ की मात्रा घिस कर तैयार की, और भीतर खिचती हुई जीभ पर उसे लगा दिया। क्षण भर के बाद ही माता के मुँह से निकला "सब अच्छी तरह रहना।"

इसके बाद राधाबाई ने उसके कान के पास मुँह ले जाकर जोर से कहा "तुम्हे और कुछ कहना है?" माता ने 'नही' का सकेत किया।

घर मे मृत्यु की छाया तो एक दिन पहले ही से छा गई थी। वह केवल अतिम क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। इसके बाद फिर एक बार माता ने सारी शक्ति लगा कर कहा "सब सावधान रहना, ईश्वर रक्षक है।"

इसके बाद अतिम लक्षण दिखाई देने लगे। जीभ खिचने लगी। अतिम समय आ गया। भगवान के घर जाने का समय आ गया। वह मगल-मुहूर्त आ गया! राधाबाई ने गगाजल लाकर उसकी दो बूंद मुँह मे डाल दी। तुलसीपत्र रख दिया गया। बिस्तर से उठा कर माँ को कम्बल पर लिटा दिया गया। ईश्वर के घर विरक्त हो कर जाना पडता है।

कुछ ही क्षण बीते होगे कि 'राम' शब्द सुनाई दिया। मेरी उस पुण्यमयी जननी के मुख से राम निकल गया। वह हम सब को अथाह सागर मे छोड कर चली गई। बुलावा आया और वह चली गई। उस बुलावे पर कोई जाने से इन्कार नही कर सकता। श्याम की माँ चली गई! पिताजी की पुण्याई चली गई। पुरुषोत्तम के सिर पर का कृपाछत्र उठ गया। श्याम और गजानन के जीवन की स्फूर्तिदात्री देवी, प्रेममयी माता चली गयी! चद्रा का नैहर चला गया। नाना-नानी की प्यारी बेटी चली गई! नौकरो की दयामयी माता चली गई! जगत् के जजाल से छूट कर माता उस जगत्-जननी की गोद मे प्रेम की ऊष्णता प्राप्त करने चली गई।

---

४२ भस्ममयी मूर्ति

माता के पास मै नही था। दूर देश मे पढ रहा था। माता की सेवा न कर के पढ़ रहा था। किन्तु माता की सेवा की जा सके, इसी उद्देश्य से पढ़ रहा था। उसी रात को माता ने स्वप्न मे आकर मुझ से कहा "क्योरे! तू मिलने नही आया? तुझे क्या उन्होने खबर नही दी? उस दिन जो रुठ कर गया; सो अब तक तेरा रोष नही उतरा? छोटे बच्चो का क्रोध तो शीघ्र ही दूर हो जाता है, फिर तेरा क्यो नही हुआ। इधर आ, मेरे पास।" सबेरे उठने पर इस स्वप्न की बात सोच कर मेरा जी व्याकुल हो उठा। मै सोचने लगा कही आज माता बहुत बीमार तो नही हो गई? यदि मेरे पख होते तो उड़ जाता। किन्तु बड़ी दूर की यात्रा है। दो दिन तो वहा पहुँचने में लग जाते है! रेल, जहाज और बैल-गाडी, कितनी लम्बी यात्रा!

मेरा जी अकुला रहा था। क्षणभर के लिए भी चैन नही थी। बराबर इच्छा हुई कि घर जाकर माँ से मिल आऊं! परन्तु खर्चा?

वहां मेरी एक नये मित्र से पहचान हुई थी। उसका नाम भी नामदेव ही था। भक्तराज नामदेव का पंढरपुर के पांडुरग पर जितना प्रेम और जितनी भक्ति थी; उतना ही प्रेम और भक्ति-भाव उस नामदेव का इस श्याम पर था। मानो वह मेरा ही हो गया था, और मै उसका। "यूयं यूयं वयं वयम्" कह कर हम कितनी ही बार अपना भाव व्यक्त करते थे। वह मेरे मन की बात पूरी सूने बिना ही सब समझ लेता था! गुरु नानक देव की वाणी मे कहा गया है कि :—

"अन बोलत मोरी बिरथा जानी, अपना नाम जपाया।"

केवल भगवान का नाम लेने की आवश्यकता है। उसे हमारे दुःखों का तो बिना कहे ही पता है। नामदेव भी मेरे समस्त सुख:दुख जानता था। मेरा जीवनग्रथ, हृदयग्रथ वह पढ सकता था। मेरी आँखें और मेरी चर्या को वह भलीभाति पहचान सकता था। मानों, हम परस्पर एक दूसरे के रूप ही न बन रहे हो! मानो, दो शरीरो मे एक ही मन, एक ही हृदय था! अथवा हृदय और मन से हम दोनो जुड़े हुए थे।

मैने कहा "नामदेव! मेरी घर जाने की इच्छा हो रही है। माता बहुत बीमार जान पड़ती है। सवेरे से बेचैनी बढ रही है।"

"तो फिर जाकर मिल क्यो नही आता?" उसने कहा।

"मै माँ को आँखे भर कर देख आऊगा, परन्तु खर्च के पैसो का क्या हो?"

"अरे, कल मेरा मनीआर्डर आ गया है नँ? कही वह तेरे ही लिए न भेजा गया हो! दस रुपये है। तेरा काम तो चल जायगा। जा, माता से मिल कर आ जाना, मेरा भी प्रणाम कहना। उनसे अपने इस मित्र नामदेव के लिए आशीर्वाद माँगना! जा!" नामदेव ने कहा।

थोड़ा-सा सामान लेकर मै चल दिया। स्टेशन तक पहुँचाने के लिए नामदेव साथ में आया। मै गाड़ी मे जा बैठा। दोनो के नेत्र भर आये।

"पहुँचते ही पत्र भेजना, हो श्याम!" नामदेव ने कहा।

मैने उत्तर दिया "अवश्य! जाते ही पत्र लिखूगा।"

इस पर उसने कहा "मै भी तेरे साथ आता, परन्तु पैसे नही!"

यह सुन मैने कहा "अरे, तू तो मेरे साथ है ही।"

गाड़ी छूट गई। प्रेमी नामदेव आँखो से ओझल हो गया। मेरे नेत्रो से सहस्र-धारा मे अश्रुगंगा प्रवाहित हो चली। रह-रह कर मेरा हृदय-सागर उमड़ रहा था। गाड़ी की खिड़की से बाहर सिर किये हुए मै अश्रुसिंचन करता हुआ जा रहा था।

बोरीबदर (विक्टोरिया टर्मिनस—बम्बई) स्टेशन पर उतर कर मैं सीधा जहाज पर चल दिया। क्योकि यदि गिरगाँव मे भाई से मिलने जाता तो जहाज छूट जाता। मै जहाज मे जा बैठा। कुछ ही क्षण मे वह जहाज लहरो पर नाचने लगा। मेरा हृदय भी शत-शत भावनाओ से उछल रहा था। श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि उस समय मेरे हाथ में थी।

उसमे मै पढ़ रहा था "माँ, मेरे अश्रुओ का हार तेरे वक्षस्थल पर डोलेगा।" और सचमुच ही मै अपनी गरीब माता को और क्या दे सकता था? मेरे पास भी सिवाय आँसुओ के हार के देने योग्य था ही क्या? बीच में ही मै गीताजलि बद कर के उस उमड़ने वाले सागर की ओर

देखने लगता। उस समय सागर के वक्षःस्थल पर सैकड़ो तरंगें उठ रही थी। एक लहर से दूसरी लहर उत्पन्न हो रही थी। इधर मेरे हृदय-सागर पर भी शत-शत स्मृतिरूप तरंगे उठ रही थी। एक स्मृति दूसरी स्मृति को जन्म दे रही थी। माता के सैकड़ो संस्मरण, अगणित भावना-मय प्रसग मेरे दृष्टि-पथ से हो कर जा रहे थे। स्वप्न-सृष्टि मे—हां, स्वप्न-सृष्टि में ही मै ध्यानमग्न ऋषि की तरह रम गया, उसमें निमग्न हो गया। माता के स्मृति-सागर में यह श्याम-मत्स्य डूब रहा था, तैर रहा था, नाच रहा था।

बड़ी देर के बाद हर्णै बन्दरगाह का दीपस्तभ दिखाई देने लगा। जहाज के खलासी चिल्लाने लगे "हर्णै, हर्णै!" वहा उतरने वाले यात्री अपना-अपना सामान समेटने लगे। मैंने भी अपनी छोटी-सी गठरी बॉंध ली। इसके बाद मैं मन मे सोचने लगा "अब तो केवल सात-आठ घण्टे की ही देर है, इसके बाद मैं अपनी माता के चरणो का दर्शन करूंगा। प्रेम से भरे हुए काली-दह की तरह उसके नेत्रो को देखूगा।"

हर्णै बन्दरगाह आ गया। जहाज के ठहरते ही सैकड़ो नावे यात्रियों को उतारने के लिए आ गई। उनमें कई यात्री उतर गये। मैं भी नाव मे आ बैठा। किनारे पर कोई मेरी ओर देख रहा था; पर उस ओर मेरा ध्यान नही था। किन्तु वह व्यक्ति ध्यानपूर्वक मेरी ओर देख रही थी। मुझे देख कर बन्दरगाह पर खडे हुए किसी के नेत्र डबडबा रहे थे। भला, वह मूर्ति किस की थी?

नाव के खडी होते ही मै उतर पडा और पानी में हो कर किनारे पर आया। मै फुर्ती से पैर उठा कर आगे बढ ही रहा था कि इतने में कोई मुझे दृष्टिगोचर हुआ।

"मौसी! तू यहा कहा? क्या पूना वापस जा रही है? माँ की तबियत अब ठीक जान पडती है, क्यों?" इस प्रकार मैंने पूछा; और मौसी की गंगा-यमुना ने उसका उत्तर दिया।

मैंने करुण स्वर मे पूछा "मौसी! तू बोलती क्यों नहीं?" उसने कहा "श्याम! तेरी माँ, मेरी जीजी भगवान के घर चली गई!"

मैं अपने शोकावेग को सम्हालने में असमर्थ हो गया। वहां से

जैसे-तैसे हम दोनो धर्मशाला मे गये। उस समय किसी से भी बोला नही जाता था।

मैंने रोते हुए पूछा "मौसी, मुझे बुलाया क्यो नही? मुझे तो रात को स्वप्न दिखाई दिया, इसी लिए मैं वहा से चल दिया। स्वप्न मे माता ने मुझे पुकारा था। परन्तु, हाय! अब कहा है वह माँ। वह तो सदैव के लिए बिछुड गई। अनंतधाम को चली गई।"

"श्याम। उस दिन तो वह लगातार तेरी ही याद करती रही। तू ही बराबर उसे सामने खडा दिखाई देता था। वह कह रही थी कि 'देखो, अभी तक यह हठ नही छोडता।' श्याम, ऐसा नही जान पड़ता था कि जीजी दो ही दिन मे चली जायगी। जिस दिन मैंने तुझे बुलवाने की बात सोची, उसी दिन उसने शरीर छोड दिया। सब तरह के प्रयत्न किये गये; और उसे कोई कष्ट नही होने दिया गया। किन्तु घबराना मत श्याम। अब मैं हू तुम्हारे लिए! जीजी ने तुम्हे मेरी गोद मे सौप दिया है। मैं तुम्हे माता की याद न आने दूगी। उसका अभाव अनुभव न होने दूगी। चुप हो भैया। कबतक रोता रहेगा?" इस प्रकार मौसी ने मुझे समझाया।

"मौसी मेरे कैसे बडे-बडे सकल्प थे। माता को सुखी करूगा, उसे फूल की तरह रखूगा, इत्यादि बाते मैं मन मे सोचा करता था। किन्तु अब मैं किस के लिए पढू? पढ-लिख कर भी यदि माँ की सेवा नही की जा सकती, और उसके उपयोग मे भी नही आ सकता; तो फिर किस लिए पढू?" इस प्रकार मैंने मौसी से पूछा।

इस पर मौसी ने मेरा सकुचित दृष्टिकोण बदलते हुए कहा कि "अब माँ के लिए नही अपने भाइयो के लिए, पिता के लिए पढ, स्वत: अपने लिए पढकर तैयार हो, ससार की सेवा के लिए पढ-लिख कर योग्य बन। जो प्रेमभाव तू माता के चरणो मे अर्पण करने वाला था, उसे अब संसार को अर्पण कर, ससार की दुखी माताओ की सेवा में अपना वह भक्ति-भाव भेट कर।

"अच्छा, परन्तु मौसी, तू वापस कैसे जा रही है?"

"श्याम। मुझ से वहा नहीं रहा गया। तू घर जा। कल तीसरा दिन

है। अस्थि-सचयन कल ही है। तू उसका अत्यंत लाडला बेटा रहा है, इसी लिए तू उत्तरक्रिया के समय आ पहुँचा है। वहा से वापस आते समय अस्थि लेते आना; तो उसे गंगा मे प्रवाहित कर देगे।" मौसी ने कहा।

मैने फिर पूछा "मौसी मै अब घर मे कैसे जा सकूगा? उस अंधकार-मय घर मे कैसे प्रवेश करूगा?"

"उस घर में जो भी तुझे माता का मुखचद्र नही दिखाई देगा; फिर भी पिताजी का उज्ज्वल नक्षत्र-रूप में तो दर्शन होगा ही? तेरी भावना-रूपी तारिका भी तो वहा चमकेगी ही! वहा सर्वथा अधकार नही है। प्रेम का प्रकाश भी है। इस लिए तू घर जा; और पिताजी तथा भाइयो को धैर्य्य दे। तू बुद्धिमान, विचार-शील और गीताजलि पढने वाला है।" मौसी ने कहा।

मौसी अब वहा यह बात कौन कहेगा कि "श्याम! तू आ गया, अच्छा किया! ठहर! मै देवता को चढाने के लिए गुड़ ला देती हू?"

"श्याम; तेरे पास ये प्रेममय स्मृतिया तो है? माता के चले जाने पर भी प्रेममयी माता—स्मृति-रूप अमर-माता—तो तेरे पास मौजूद ही है। तू जहा जायगा, वही वह तेरे साथ रहेगी। चल मै तेरे लिए गाडी किराये कर दू।" यो कह कर मौसी ने मेरे लिए गाडी किराये कर दी। इतने ही मे मौसी के जाने का जहाज दिखाई देने लगा। नावे छूटने को तैयार खड़ी थी, मौसी चल दी। माँ का स्थान ग्रहण करने वाली मौसी नाव मे बैठने के लिए चली गई।

मै बैलगाड़ी पर सवार हुआ। मुझे माता की याद आने लगी। ऐसा दिखाई देने लगा मानो मेरे जीवन-समुद्र में सैकड़ो लहरो को पार कर माता की वह दिव्य-मूर्ति ऊपर उठ रही है। माता के कष्ट और क्लेश मुझे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे! कारुण्य-मूर्ति माता! उसका प्रेम और उसकी सेवा मुझे पर्वताकार दीखने लगी।

अत को मै घर आ पहुँचा। पहले भी एक बार इसी तरह प्रातःकाल मै घर आया था। उस समय छाछ (मही) बिलौते हुए माता कृष्ण का मधुर गीत गा रही थी। किन्तु आज घर मे वह गीत कहा? अब तो उसके स्थान पर 'हाय-हाय' का क्रंदन था। घर मे एक धीमा दीपक

जल रहा था। भीषण शाति छाई हुई थी। मैंने किवाँड़ को धकाया, किन्तु भीतर से साकल तो बद थी ही नही, अत दरवाजा खुल गया। पिताजी एक टाट पर बैठे हुए थे।

मुझे देखते ही बोले " श्याम, तुझे दो दिन की देर हो गई! बेटा, वह हम सब को छोड़ कर चली गई।"

तब तक पुरुषोत्तम भी जाग पडा और 'दादा-दादा' कर के रोने लगा। वह मेरी गर्दन से लिपट गया। उस समय किसी मे भी बोलने की शक्ति नही थी।

बूढी दादी ने कहा " श्याम! तुझे तो वह अत समय तक याद करती रही! उसका तू बहुत प्यारा था बेटा! तू अत मे उसकी उत्तरक्रिया के समय तो आ ही पहुँचा। रोए मत बेटा! अब अपना वश ही क्या है? तुम्हारे बड़े होने तक तो उसके जीने की आवश्यकता थी ही! परतु उस (ईश्वर) की इच्छा नही थी।"

अस्थि-सचय के लिए मै नदी पर गया! भट्टजी महाराज साथ में थे ही। नदी-तट पर जहा माता का पुण्य-देह अग्निसात् किया गया था, वहा मै पहुँचा! वहा माता की भस्ममयी मूर्ति सो रही थी। भस्ममय-देह ज्यो की त्यो दिखाई देती थी। हवा के कारण, रचमात्र भी वह देह हिली नही थी। मैंने श्रद्धा-पूर्वक उस भस्ममयी-मूर्ति को वदन किया। उस समय वहा माता का वह पवित्र देह समस्त पार्थिवता त्याग कर भस्ममय दिखाई दे रहा था; अत्यंत शुद्ध भस्ममय आकार वहा देख पडता था। जीवन की तपश्चर्या से उसका शरीर तो पहले ही भस्मी-भूत हो चुका था, भीतर ही भीतर वह जलता रहता था, वह भगवान के शरीर पर लगी हुई भस्म के समान पवित्र हो गया था। और मन से? मन से तो वह पवित्र थी ही।

अत मे मैंने हाथ लगाया। उस भस्ममयी-मूर्ति को भंग किया। अपने हृदय मे अभग-मूर्ति निर्माण कर उस भस्ममयी-मूर्ति को मैंने छिन्न-भिन्न किया। इस नश्वर-मूर्ति-द्वारा यदि किसी के हृदय मे हम अनश्वर मूर्ति निर्माण कर सकते तो कितना अच्छा होता! अस्तु। मैंने माता की अस्थियाँ एकत्रित की। मगलसूत्र में का मणि भी उसमे मिल गया। उसे सौभाग्य-दायक समझ कर काका साहब ने अपनी पत्नी (काकी) के गले में पहनाने के लिए ले लिया।

सब कार्य-विधि समाप्त होने पर स्नान कर के हम घर लौट आये। एक-एक कर के दिन बीतने लगे। पुरुषोत्तम के मुँह से एक-एक नई बात सुनने को मिल रही थी। मानो वह माता की स्मृतियो का गरुड़-पुराण ही मुझे सुना रहा था; और मै उसे भक्ति-पूर्वक सुन रहा था। पडोसिन राधाबाई, इन्दुमति आदि ने भी कई बाते सुनाईं। माता की कष्ट-कथा सुनते-सुनते मेरा जी भर आता।

माता के पिण्डदान का दिन आ पहुँचा। उस दिन मेरे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि "माता के पिण्डो को कौआ झट् से छूता है या नही, उसकी कोई इच्छा तो शेष नही रहा गई है? क्योकि यदि पिण्डो को कौआ स्पर्श न करे, तो ऐसा माना जाता है कि मृत-प्राणी की आत्मा को शाति नही मिली। हम लोग नदी पर गये और पिण्ड तैयार किये। सब कार्य यथाविधि समाप्त होने के बाद वे पिण्ड हमने कुशा पर रख दिये। किन्तु दैवयोग से उस दिन एक भी कौआ नदी पर नही दिखाई दिया। भट्टजी ने "काँव-काँव" कर के कौओ को बुलाया। अत मे एक कौआ आता दिखाई दिया। काका ने कहा "देखो वह दूसरा भी आ गया" हमे संतोष हुआ। पिण्ड छोड कर हम अलग हठ गये। किन्तु कौए आकर पिण्ड के पास बैठ कर भी उसे छूते नही थे। अब चिता हुई कि, क्या किया जाय! वे पिण्ड के आसपास चक्कर तो लगाते, परन्तु उसे छूते नही थे। मुझे बड़ा दुख हो रहा था। मैने कहा "माँ, यदि तेरी इच्छा है तो मै विवाह करूगा, वैरागी नही बनूगा" फिर भी कौए ने पिण्ड को स्पर्श नही किया। तब चचा ने कहा "हम दादा से अन्तर—भेदभाव नही रखेगे! भाभी! हम उनके साथ उसी प्रेमभाव से बरतेगे।" फिर भी कौए ने उन्हे नही छुआ। पिण्ड को उठा कर मै इधर-उधर भी गया। मेरा जी विकल हो उठा। मै रूआ-सा हो गया। क्योकि जब पिण्ड से कौआ स्पर्श नहीं करता तो कुश का कौआ बना कर उसे छुआ देते है; परतु बाद को गाँव में इसकी चर्चा चल पडती है। मुझे बहुत बुरा लगा और इस लिए मैने कहा "पिण्डों को घर ले जाने से सभव है कि वहा कौआ स्पर्श करे; अतः अभी कुश का कौआ मत बनाइये।"

इस प्रकार भारी हृदय से पिण्ड उठा कर हम घर आये; और आँगन के किनारे केल के वृक्ष के पास पिण्ड रख दिये। वहा कितने ही कौए इकट्ठे हो गये, परतु पिण्डो को किसी ने नही छुआ।

अंत में दादी ने बाहर आकर कहा "यशोदे! तू जरा भी चिंता मत कर। पुरुषोत्तम को मैं सम्हालूगी। उसका सब कुछ मैं ही करूंगी।" दादी के मुँह से इस प्रकार आश्वासन-सूचक शब्द सुनते ही तत्काल कौए ने पिण्ड को छू लिया।

मेरी आँखो मे आँसू आ गये। मौसी अकेली ही पहले चली गई थी; इस लिए छोटा पुरुषोत्तम अब घर मे दादी के पास रहने को था। वह जरा नटखट था। इस लिए उसकी उपेक्षा होगी, उसे पिताजी क्रुद्ध हो कर मारेंगे, इसी एक बात की माता को चिन्ता थी। धन्य माते! तेरा कितना अटल प्रेम! उस प्रेम का कोई नाप-तौल ही नहीं। वह आकाश से भी अधिक विशाल और समुद्र से भी अधिक गहरा है। ईश्वर कितना प्रेममय हो सकता है, इसकी कल्पना ससार मे एकमात्र माता के प्रेम से ही की जा सकती है। ससार को अपने प्रेम की कल्पना कराने के लिए ही इस माता को वह जगन्मता भेजती है।

मित्रो! मेरी माँ चली गई। उसका जीवन समाप्त हो गया, किन्तु उसकी चिन्ता समाप्त नही हुई थी। जब तक अपने सब बच्चे सुखी नही हो जाते, तब तक माता को सुख नहीं हो सकता। माता की किसी एक भी सतान के नेत्रो से जब तक आँसू टपकते और मुँह से "हाय-हाय" निकलती रहती है, जब तक उसके अन्न-वस्त्र का प्रबंध नही होता, और ज्ञान (विद्या-बुद्धि) की प्राप्ति नही हो जाती, तब तक उसकी चिंता दूर नही होती।" 'सब भाई परस्पर प्रेम-पूर्वक रहेंगे, एक दूसरे की सहायता करेंगे, ऊंच-नीच का भाव नहीं रखेंगे और एक-दूसरे को बढा कर, उसका पालन-पोषण करेंगे और हँसा-खिला कर सुखी करेंगे' इस बात का जब-तक माता को विश्वास नही हो जाता; तब तक उसे सुख-शांति नही मिल सकती, उसे मोक्ष नही मिल सकती; तब तक वह भी रोती ही रहेगी! तब तक उसकी चिंता-रूपी चिता धधकती ही रहेगी।

---

४३ माता का स्मृति-श्राद्ध

मित्रो ! आज मुझे अंतिम स्मृति सुनाना है । यह स्मृति श्राद्ध आज मैं समाप्त करने वाला हूं । मेरे हृदयाकाश मे तो स्मृतियों के अनेक तारे चमक रहे है; किन्तु मैंने उनमें से केवल मुख्य-मुख्य नक्षत्रो का ही तुम को दर्शन कराया है । आज बचा हुआ केवल एक मुख्य तारा—शुक्र का तारा—तुम्हे दिखलाना है ।

मेरी माता पर स्त्री-पुरुषो का तो प्रेम-स्नेह था ही; किन्तु पशु-पक्षी भी उससे प्रेम करते थे । श्यामा गाय पर माता का कितना प्रेम था; और गाय का माता पर कितना स्नेह था यह पहले बतलाया जा चुका है । अब केवल बिल्ली की ही कहानी सुनाना शेष है । बीच में एक जगह मैं उसका उल्लेख कर चुका हूं । बिल्ली का नाम मथी था । वह माता की प्यारी बिल्ली थी । हमेशा माँ की थाली के पास बैठ कर भोजन करती थी । दूसरों का परोसा हुआ भात वह नही खाती थी । जब माता भोजन करने बैठती, तभी वह आकर पास मे बैठ जाती थी ।

मथी हमेशा ही माता के साथ रहती; और उसके आसपास चक्कर लगाती रहती थी । यहा तक कि माता के शौचादि के लिए जाने या पानी भरने के लिए कुए पर जाते समय भी वह साथ ही रहती थी । माता के पैरो मे पूछ की फटकारे देती हुई वह नाचती रहती । इस प्रकार उस बिल्ली की मेरी माता के प्रति अनन्य ममता-माया थी । वह माँ से बहुत हिली हुई थी । ज्यो-ज्यो माता की बीमारी बढती गई, त्यो त्यो-मथी ने भी खाना-पीना कम कर दिया । क्योकि माता के हाथ का परोसा हुआ दूध-भात उसे नहीं मिलता था । दूसरे लोगो ने दूध, दही और घी मिला कर भी उसे भात दिया, परन्तु वह उसमे से दो-एक ग्रास खा कर बाहर चली गई । जब कि माता उसे केवल भात (चावल) ही परोसती थी; फिर भी उसमें उसे घी-दूध सब कुछ मिल जाता था । किन्तु दूसरो के घी में भी उसे रस-स्वाद का अनुभव नही होता था ।

जिस दिन माता का स्वर्गवास हुआ, उस दिन वह बराबर "म्याऊँ,

म्याँऊ" करती रही। मानो उसकी घरोहर को कोई उठा ले गया, उसके घी-दूध की सरिता को किसीने छीन लिया। उस दिन से मथी बिल्ली ने भी अन्न-जल त्याग दिया। जिस कोठरी मे माता ने शरीर त्यागा था, वहां दस दिन तक मृतात्मा के लिए नित्य ही दूध-पानी रखा जाता था। किन्तु मथी ने उसे भी छुआ तक नही। वह दिन-रात उसी कोठरी मे वैठी रहती थी। फिर तो उसने म्याऊँ-म्याऊँ करना भी बद कर दिया था। उसने अनशन के साथ ही मौन-व्रत भी ले लिया था। इस प्रकार तीसरे दिन ठीक उसी स्थान पर जहा कि माता ने प्राणत्याग किया था, उस बिल्ली ने भी शरीर छोड़ दिया। मानो वह माता के पीछे-पीछे ही चली गई। माता के प्रेम के विना जीना उसे विषमय प्रतीत हुआ। हमारे प्रेम की अपेक्षा माता पर उस बिल्ली का प्रेम ही अधिक था। उसकी दशा देख कर हमें अपने प्रेम-भाव के प्रति लज्जा प्रतीत हुई। मैंने मन ही मन कहा "माँ! मै किस मुँह से कहूं कि मेरा ही तुझ पर अनन्य प्रेम है? वह तो इस बिल्ली के प्रेम के सम्मुख पासग भी नही ठहरेगा!"

मित्रो! ऐसी स्नेहमयी मेरी माता थी। संसार में ऐसी माता बड़े भाग्य से मिलती है। मेरी माता ने मुझे सब कुछ दिया। मुझमें जो कुछ भी अच्छाई और पवित्रता है, वह सब उसीकी है। वह पुण्यमयी माता तो चली गई, परंतु भारत-माता की सेवा के लिए मेरा निर्माण कर गई। एक जापानी माता ने अपने हृदय में छुरी मारने के पहले अपने लड़के नाम के एक चिट्ठी लिख दी थी कि "मेरे कारण तू युद्ध में नही जा रहा है, अर्थात् मेरे मोह में तू फँस गया है, इस लिए तेरे मार्ग की इस बाधा को मैं खुद ही दूर कर देती हू"। कदाचित् मेरी माता को भी अपनी दिव्यदृष्टि से यही वात दिखाई दी हो कि, श्याम मेरे मोह के चक्कर मे पड जायगा और मेरी ही—इस साढेतीन हाथ के शरीर की ही—वह पूजा करता रहेगा, इसलिए वह चलवसी हो! उसने सोचा होगा कि वह अपने अन्य देशवन्धु-भगिनियो की सेवा से दूर रहेगा, और मातृमोह के कारण वह स्वाधीनता के युद्ध में भाग नही ले सकेगा, इस लिए माता ने अपने आप को हटा कर दूर कर लिया हो! या वह यह सोच कर चली गई कि अब समस्त भारतीय माताएँ ही श्याम की माता वनें और उसे ये अनेक माताएँ प्राप्त हो!

किन्तु जाते हुए भी माता मुझे इन अगणित माताओं को देख सकने की दिव्य-दृष्टि दे गई। अब तो मैं जहां-तहां अपनी माताओं को ही देखता हूं। उत्तम की माता मेरी माता है; और दत्तू की माता भी मेरी ही माता है। गोविन्द की माता भी मेरी ही माता है और वसंत की माता भी मेरी ही माता है। कृष्ण की माता भी मेरी ही माता है और सुभान की माता भी मेरी ही माता। इस प्रकार जितनी भी माताएँ हैं, वे सब मेरी ही माताएँ हैं। जिस माता ने मुझे यह सब देखने के लिए दिव्यदृष्टि प्रदान की; और मुझे यह दृष्टि प्राप्त कराने के लिए उसने अपना जर्जर देहमय पर्दा भी दूर कर दिया, उस माता की महानता का मैं कहां तक वर्णन करूं? इस कार्य के लिए यह जीभ असमर्थ है। वह प्रेम, वह कृतज्ञता, वह कर्तव्य-बुद्धि, वह सहनशीलता, वह मधुरता, मेरी प्रत्येक कृति में प्रकट हो; और माता की सेवा करते-करते, इस विराट् और विशाल माता की सेवा करते-करते अपनी अल्प शक्ति के अनुसार, अपने गुणधर्म के अनुसार सेवा करते-करते एक दिन मथी बिल्ली की तरह मेरा जीवन भी सफल हो। मेरी माता का जीवन जैसा सफल हुआ, उसी प्रकार उसके श्याम का भी हो।

— समाप्त —